ॐ

"शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' एवं भासरचित 'दरिद्रचारुदत्तम्' का तुलनात्मक अध्ययन"

(A Comparative Study of MRCCHAKATIKAM of Sudraka and DARIDRACHARUDATTAM of Bhasa)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि
के लिये प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ० वी० के० सिंह
उपाचार्य संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रस्तुतकर्त्री
रेनू सिंह

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

1993

क्षीरिण्यः सन्तु गावो, भवतु वसुमती सर्वसम्पन्नसस्या,

पर्जन्यः कालवर्षी, सकलजनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः।

मोदन्तां जन्मभाजः, सततमभिमता ब्राह्मणाः, सन्तु सन्तः

श्रीमन्तः, पान्तु पृथ्वीं प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपाः।।

— मृच्छ० १०.६१

पुरोवाक्

काव्य का अन्यतम प्रयोजन है – 'सद्यः परिनिर्वृति' अर्थात् पाठक अथवा दर्शक को रसानुभूति। किसी भाव विशेष-का चित्र मनस्पटल पर जितनी शीघ्रता एवं तीव्रता से उभरता है उस भाव विशेष की अनुभूति भी उसी अनुपात मे होती है। इस यथार्थ दृष्टि कोण को ध्यान मे रखकर ही श्रव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य की महत्ता स्वीकार की गई है – काव्येषु नाटकं रम्यम्। नाटकों में जिस प्रकार का विम्ब अभिनेताओं द्वारा उपस्थित किया जा सकता है वैसा विम्व (श्रव्यकाव्य में) केवल शब्दो के माध्यम से उपस्थित कर पाना अतीव कठिन है। यदि शब्द चित्र उभार भी दिया जाय तो उसे मनस्पटल पर देखने के लिए सुविज्ञ हृदय की अपेक्षा होती है। इस प्रकार श्रव्य काव्य सर्वसाधारण को ग्राह्य नही हो पाता जबकि आङ्गिक अभिनय की प्रधानता के कारण दृश्यकाव्य सर्वजन सुलभ है। कालिदास के शब्दो मे नाटक विभिन्न रुचि वालो का एक मान्य मनोरञ्जन है – 'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्' (मालविकाग्निमित्रम्)। चरित्र-चित्रण, कथावस्तु, संवाद, रस आदि सभी तत्त्वों का समावेश नाटक में पात्रो के माध्यम से होता है। अभिनय में भाव स्वयं मूर्त रूप में उपस्थित हो जाता है। इसमें जीवन की वैविध्यपूर्ण घटनाओं का अंकन होता है। जिससे प्रत्येक दर्शक अपनी भावना के अनुकूल फल प्राप्त करता है। इसी कारण आचार्य भरत ने इसे सार्ववर्णिक पञ्चम वेद कहा है। यदि सार्वजनीन होने के कारण नाटक रमणीय माना गया है तो उस (दृश्यकाव्य) के दशधा भेदों में 'प्रकरण' को और अधिक लोकप्रिय होना चाहिए क्योंकि इसकी कथावस्तु का केन्द्र बिन्दु जनसाधारण होता है, इसकी घटनाएँ जीवन के यथार्थ क्रिया कलापों से अधिक जुड़ी होती है। सस्कृत के प्रकरणो में 'मृच्छकटिकम्' अग्रगण्य है। कला

स्नातकोत्तरार्ध साहित्य वर्ग मे अध्ययन के समय मै इससे विशेषरूप से प्रभावित हुई। फलतः मेरी सहज अभिरुचि एतद्विषयक अनुसन्धान में हुई। गुरुवर्य डॉ० वी०के०सिह जी ने ''शूद्रक विरचित 'मृच्छकटिकम्' एवंम् भासरचित दरिद्रचारुदत्तम् का तुलनात्मक अध्ययन'' विषय देकर मेरे मनोरथ के पूर्ण होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अस्तु!

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कुल पांच अध्यायों में सविभक्त है। प्रथम अध्याय मे शोध विषय नाटक से सम्बद्ध सामान्य जानकारी दी गई है। द्वितीय अध्याय मे विवेच्य कृतियो 'दरिद्रचारुदत्तम्' तथा 'मृच्छकटिकम्' – का विशद परिचय दिया गया है। तृतीय अध्याय मे दोनो कृतियों का साम्य विश्लेषण, चतुर्थ अध्याय मे विरुद्धाश परिशीलन तथा उपसहार भूत पंचम अध्याय मे अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट मे दोनो कृतियो के सुभाषित, संकेताक्षर सूची तथा अधीत ग्रन्थ सूची निबद्ध है।

शोधरत होने के पूर्व ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश हो चुका था। फलतः शोधयात्रा गृहस्थ जीवन की जटिलताओं के कारण अनेकशः बाधित हुई। गुरुप्रवर डॉ० सिंह ने अतिव्यस्त होने पर भी मेरी शोध विषयक समस्याओं को सुलझाने मे जो अभिरुचि दिखाई, निराशा के क्षणों मे जो प्रेरणा दी उसी का परिणाम है कि यह शोधकार्य पूरा हो सका। एतदर्थ मै उनके प्रति आजीवन ऋणी हूँ।

मैं उन समस्त गुरुजनो तथा मनीषियों के प्रति श्रद्धानत हूँ जिन्होने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मेरे शोधककार्य में सहयोग दिया। आत्मीयजनो को उनके स्नेह एवं सहयोग के लिए साधुवाद देते हुए मै विशेष रूप से अपने जीवन साथी श्री आशीष कुमार सिह के श्रीचरणो में अपना श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ जिन्होंने मुझे शोध हेतु प्रतिपल जागरूक बनाये रखा। मै विभिन्न पुस्तकालायो के उन समस्त अधिकारियों एव कर्मचारियो के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होने

निर्बाध रूप से शोध सामग्री उपलब्ध कराई।

अन्त मे आशा एव विश्वास है कि विज्ञ परीक्षकगण प्रमादवश हुई परिहार्य तथा टंकण विषयिणी अपरिहार्य त्रुटियों को क्षमा करते हुये इस शोध प्रबन्ध का मूल्याङ्कन करेंगे।

रेनू सिंह

[रेनू सिह]

प्रयाग

१५ दिसम्बर १९९३

“‘शूद्रक विरचित ‘मृच्छकटिकम्’ एवं भास रचित ‘दरिद्रचारुदत्तम्’ का तुलनात्मक अध्ययन’’

अनुक्रम

पुरोवाक्

विषय प्रवेश

- नाटकों का उद्भव एवं विकास
- नाट्य साहित्य का दशधा विभाग
- प्रमुख नाट्यशास्त्रीय मान्यताएँ
- भास एवं शूद्रक का परिचय

नाटकों का उद्भव एवं विकास

भारतीय साहित्य-शास्त्रियों ने काव्य के दो भेद किए है – दृश्य एवं श्रव्य काव्य[1]। श्रव्यकाव्य के अर्न्तगत महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य, कथा आख्यायिका आदि आते है और दृश्यकाव्य के अन्तर्गत नाटक को लिया जाता है। श्रव्यकाव्य अपनी भावगत तथा अभिव्यक्तिपरक दुरुहताओं के कारण सर्वजनबोध्य नही होता जबकि दृश्यकाव्य इन्द्रिय-प्रत्यक्ष (चाक्षुष-प्रत्यक्ष) के कारण सर्वजन सबोध्य होता है। श्रव्यकाव्य का आस्वादन सुशिक्षित, रसिक एव विदग्ध व्यक्ति ही कर सकता है जबकि दृश्यकाव्य का प्रणयन लोकरजनार्थ होता है[2]। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने नाटक के महत्त्व का विस्तार से इस प्रकार प्रतिपादन किया है —

अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि।।
ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्य दुःखादिर्तस्य च।
अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्विग्नचेतसाम्।।
लोकवृत्तानुकरण नाट्ययेतन्मया कृतम्।
दुःखार्ताना श्रमार्ताना शोकार्ताना तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजनन काले, नाट्यमेतन्मया कृतम्।।
धर्म्य यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।।

– नाट्यशास्त्र १/११०, १११, ११२, ११४, ११५

अर्थात् नाटक में केवल धर्म और देवो की ही चर्चा नही होती है, अपितु विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें जीवन की सभी घटनाओं का चित्रण रहता है, यथा – धर्म, मनोरजन, हास्य, युद्ध, श्रृंगार, श्रम आदि।

---

१ सा० द० ६ - १ ''दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्य द्विधा मतम्।
दृश्य तत्राभिनेय तद्रुपारोपात्तु रुपकम्।।''

२. कालिदास ''देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्त क्रतुं चाक्षुष
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्य भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्।।''

प्रत्येक दर्शक अपनी भावना के अनुकूल फल प्राप्त करता है। नाटक के द्वारा दर्शको मे उत्साह की वृद्धि होती है। अपढ़, सुपढ़ हो जाते है और सुपढ़ विशेषज्ञ हो जाते है, यह धनियों के लिए मनोरंजन, दुःखितो के लिए आश्वासन, व्यवसायियो के लिए आय का साधन और व्याकुलों के लिए शान्तिप्रद है। इसमें विविध जीवन-चर्याओं का निरुपण रहता है। यह बड़े से लेकर छोटे तक सभी के लिए हितोपदेशक, मनोरजक और सुखप्रद है। इससे सभी का दुःख दूर हो जाता है, चाहे वह दुःखित हो, थका हो, विकल हो या साधु हो। इससे मनुष्य की धर्म, यश, स्वास्थ्य-लाभ, ज्ञान-वृद्धि और आचार-लाभ प्रभृति सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती है।

दृश्यकाव्य मे अभिनय की प्रधानता होती है। अभिनय को ध्यान मे रखकर ही दृश्यकाव्य को 'नाटक' कहा गया है। यह शब्द सस्कृत की 'नट्' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ 'अभिनय' करना है। नाटक की परिभाषा **'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'** 'अवस्था का अनुकरण ही नाट्य है' कहकर दी गयी है। यह अनुकरण कायिक, वाचिक एव आहार्य तीन प्रकार का होता है। अभिनय के इन तीन विभागों के अर्न्तगत मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक सभी प्रकार की अवस्थाएँ समाहित हो जाती हैं। इन अवस्थाओं के अभियनगत - प्रत्यक्ष से अशिक्षित तथा शिक्षित सामान्य और शिष्ट दोनो वर्गों के मनुष्यो का मनोरजन होता है। इसी कारण अति प्राचीनकाल से ही लोक-जीवन में नाटको का अत्यधिक महत्त्व रहा है।

उद्भव

नाटकों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में **''मुण्डेमुण्डे मतिर्भिन्ना ''** के अनुरूप अनेक मुखो से अनेक प्रकार की चर्चा चली है 'नित्य नया बहता नीर' समाज के सरित्प्रवाह को गतिमान बनाये रखता है। जैसे-जैसे नए भावों की जागृति होती है, वैसे-वैसे ही नाटक के रूप का नूतन उद्भावन होता रहा है। प्रकृति-यौवन का श्रृंगार बासी फूल नही कर पाते, बहुत कुछ वैसे ही विचारो के बहते नीर को लेकर आगे बढ़ते हुए नाटक को भी पुराना बाना नही रुचता। पुरातन को अन्तराल में संजोए हुए नूतन की ओर अग्रसर होना नाटक का अपना गुण विशेष रहा है। परम्परागत वाद,

धार्मिक भावनावाद एवं लौकिक लीलावाद नाटकों की उत्पत्ति के प्रमुख तीन वाद है, जिनका विवरण निम्नवत् है —

परम्परागतवाद : भरत मत

एक युग था जब दैवी उत्पत्तिवाद में बड़ा विश्वास था, जिसके अनुसार राज्य आदि की उत्पत्ति के समान नाट्य-कला का आविर्भाव भी देवलोक से हुआ है। देवों और दानवों के मनोविनोद के लिए यश, शुभार्थ, पुण्य और बुद्धि-वैशद्य के लिए ब्रह्मा ने नाट्य-रचना की। इस सर्वजन ग्राह्य सार्ववर्णिक पञ्चम वेद नाट्य-रचना को देखकर मन कष्ट-कण्टकों की चुभन को भूल जाय, सभी इसमें आनन्द ले सकें, यही सोचकर ऋग्वेद से संवाद, साम से गीत, यजुष् से अभिनय और अथर्व से रस को चुनते हुए पञ्चम नाट्य वेद की रचना की।[३]

इस तार्किक युग मे तर्कों की तीरो के मार से जहाॅ के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगने लगा हो ईश्वरीय सत्ता के समक्ष मानव की सत्ता आगे आने लगी हो तो यह स्वाभाविक है एक दल इस बात को न स्वीकारे, इस पर आस्था न रखे। इस सबसे और कुछ हुआ हो या न हुआ हो पर इतना अवश्य उभरकर आया कि नाट्य वेद का आर्विभाव वेदों के बाद हुआ और भिन्न वेदों से अपने लिए आवश्यक उपाधान चुनकर अपने स्वरूप को शहद की तरह ऐसे विचित्र स्वाद योग्य बनाया जिससे मधुमक्षिका वृत्ति ने अत्यन्त उपादेय, नवीन स्वाद अनास्वादित नाटक रूप मधु - को इन्द्रादि प्रमुखो के निवेदन –

न वेद व्यवहारोऽयं सम्भाव्यः शूद्र जातिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्।।

पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी विनोदार्थ सार्ववर्णिक पञ्चम वेद स्वरूप नाटक सामने आया।

---

३. नाट्यशास्त्र १.१७ ''जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।''

धार्मिक भावनावाद

इस वाद के अन्तर्गत वीर पूजावाद, मेपोलवाद और कृष्णोपासनावाद मत आते हैं।

वीर पूजावाद

जाति, देश और धर्म के लिए जो बलि चढ़ गए **''हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्''** भावना से अभिभूत उन मृतात्माओं के प्रति श्रद्धा अथवा **''जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्''** जीत गए हैं, अब ये धरती का भोग करेंगे, रूप में वीर पूजा करने के लिए उत्सव मनाना भारतीय प्राचीन प्रचलन है। इसी भावना के मूल मे नाटक की उत्पत्ति के दर्शन प्रो० रिजवे ने किए है पर यह मत सर्वजन ग्राह्य न हो सका। प्रथम तो प्राच्य एव पाश्चात्य विद्वान् इस सिद्धान्त से सहमत नहीं। द्वितीय संस्कृत के अधिकांश नाटकों में वीरता की अपेक्षा प्रेम-प्रदर्शन का बाहुल्य है।

मेपोलवाद

डॉ० कीथ प्राकृतिक परिवर्तनो को जन साधारण के समक्ष मूर्त रूप देने की अभिलाषा को ही नाटकों के जन्म का कारण मानते है – विदेशों में मई मास आनन्द और उत्सवो का मास होता है। भारतीय ऋतुराज वसन्त की तरह विदेशों मे मे मास की ऋतु सुहावनी और मनभावनी होती है। प्रसन्न और उल्लासित जन समूह यत्र-तत्र एक बॉस के नीचे एकत्र होकर सामूहिक नृत्य करते है जिसे 'मे पोल' नृत्य कहते हैं। भारतीय इन्द्र ध्वज भी कुछ इसी प्रकार का उत्सव है जिससे कुछ लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं कि नाटकों की उत्पत्ति का मूल देश और विदेश मे उत्सव है क्योकि **''उत्सव प्रिया हि मानवाः''** उक्ति इसी ओर संकेत कर रही है।

कृष्णोपासनावाद

रथ यात्रा, रासलीला, नृत्य, गीत, वाद्य-संगीत तत्त्व कृष्णोपासना के मुख्य अंग हैं ये ही तत्त्व नाटक के लिए भी हितकर रहे है अतः नाटकों के मूल मे

कृष्णोपासना है, दूसरे नाटकों में शौरसेनी प्राकृत का उपयोग हुआ है, जो शूरसेन देश की भाषा है। अतः नाटको की उत्पत्ति शूरसेन प्रदेश मे कृष्णोपासना के सहारे हुई, ऐसा कुछ लोग मानते है।

प्रथम तो इसका कोई प्रमाण नहीं, द्वितीय अन्य देवों की उपासना की उपेक्षा है अतः यह मत विशेष ग्राह्य न हो सका। यह बात दूसरी है – ''चरित्र **गीतिर्नवराष्ट्र चेतना प्रसूतिः**'' के अनुरूप पूर्वजों का स्मरण, उनके प्रति श्रद्धा का अभिव्यञ्जन, विभिन्न उत्सवों और पर्वों पर मनोरञ्जन एवं देवी देवताओं की उपासना का नाटकों के उद्भव एवं विकास मे कुछ न कुछ योगदान अवश्य है।

लौकिक लीलावाद

लौकिक लीलावाद के अन्तर्गत स्वागवाद, पुत्तलिकावाद, छायानाटकवाद, यूनानीप्रभाववाद एव ऋग्सवाद सूक्तवाद मत आते है –

स्वांगवाद

प्रो० हिलब्राण्ट तथा स्टेनकोनो भारत मे नाटकों का विकास एव उद्भव लोकप्रिय स्वॉगों से मानते है। ये स्वांग रामायण और महाभारत की कथाओं से लेकर तैयार किए गए है। परन्तु यह मत अपने आपमें ही भ्रामक है कि बिना नाटको के पूर्व-विकास के उन पर भरे जाने वाले स्वॉग सम्भव नहीं। प्रो० हिलब्राण्ट द्वारा दी गयी युक्तियाँ अवश्य बलवती है। उनमें नाट्य विकास के आदि सूत्र खोजे जा सकते है —

१. नाटकों में गद्य पद्य का मिश्रण।

२. संस्कृत और प्राकृत दोनो का प्रयोग।

३. सादगी से पूर्ण रंग-मंचों की स्थापना।

४. नाटक में विदूषक जैसे लोक-प्रियपात्र का प्रवेश।

प्रो० हिलब्राण्ट की उपर्युक्त मान्यताओं में प्रथम तीन का सम्बन्ध

तो नाट्य विकास के पारम्परिक कारणो से जुड़ जाता है परन्तु विदूषक का विकास लौकिक लीला के आधार पर मानना ठीक नहीं। विदूषक का विकास 'महाव्रत' जैसे धार्मिक संस्कार में 'शूद्रपात्र' की आवश्यकता से माना जाता है।

पुत्तलिकावाद

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक प्रसिद्ध फ्रासीसी विद्वान् डॉ० पिशेल है। उनका मत है कि नाटको मे स्थापक तथा सूत्रधार आदि शब्द देखकर यह सम्भावना की जा सकती है कि नाटकों का विकास पुत्तलिका नृत्य से हुआ होगा। महाभारत, कथासरित्सागर तथा बालरामायण में पुत्तलिका, पुत्रिका, दारुमयी आदि नाम मिलने से उन्हे अपना मत प्रतिपादन करने मे बल मिला।

परन्तु यह सिद्धान्त निराधार है। एक तो पुत्तलिका नृत्य ऐतिहासिक रूप से नाटकों से अर्वाचीन है। दूसरे पुत्तलिका नृत्य स्वयं ही नाटकों पर आधारित है। इस नृत्य में होने वाले दरबारो आदि का संयोजन इस पर पड़ने वाले नाटकों के प्रभाव का द्योतन करता है। इसके अतिरिक्त रस-पेशल नाटकों का इस रसविहीन जड़ नृत्य से सम्बन्ध भी अस्वाभाविक सा लगता है। आज कल होने वाले 'पुत्तलिका' नृत्य में अधिकतर मुसलमानी दरबारों का ही वर्णन रहता है। इसके अन्तर्गत धार्मिक भावोद्रेक करने की क्षमता भी नही होती। अतः इसका उद्भव मुसलमानो की दरवारी संस्कृति के उद्भव के साथ जोड़ा जा सकता है।

छाया नाटकवाद

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक डॉ० लूडर्स है। पतजलि के महाभाष्य में एक स्थल पर आये हुए 'छाया' शब्द के अयथार्थ अर्थावधारण के आधार पर उन्होने अपने इस मत की स्थापना की। परन्तु बिना नाटकों के विकास के उनका छायाकरण सम्भव नहीं। ये छायानाटक पर्दे के पीछे प्रकाश व्यवस्था करके छाया के रूप में दिखाये जाते है। इनमें पात्रों द्वारा किया गया सांकेतिक अभिनयमात्र निहित होता है। नाटको के लिए सवाद और एतदर्थ भाषा - संयोजन एक आवश्यक तत्त्व है जो छायानाटकों

की प्रकृति के विरुद्ध है। अतः नाटकों की उत्पत्ति और विकास में यह सिद्धान्त शताश भी योग नही देता।

यूनानी प्रभाववाद

प्रो० वेवर और प्रो० विण्डिज का मत है कि भारतीय नाटकों का जन्म यूनानी प्रभाव से हुआ है। सस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त 'यवनिका' शब्द इसका आधार है परन्तु यह मत राजनीति से प्रेरित अधिक है तथ्यों पर आधारित कम। भारतीय नाटक सुखान्त है, दुःखान्त नगण्य, इसके विपरीत यूनानी नाटक प्रायः दुःखान्त है, सस्कृत के नाटकों मे अन्विति त्रय का एक तरह से सर्वथा अभाव सा ही है जबकि यूनानी नाटकों में उसका (अन्विति त्रय का) पालन अनिवार्य ही है। पर्दे के लिए यवनिका शब्द का प्रयोग 'यवन' से यवनिका, यवनी शब्द निर्माण के कारण यूनानी प्रभाव का भ्रम चल पड़ा है। दूसरे यवन देश में नाट्य के लिए पर्दे की चाल ही नहीं थी। इस सम्बन्ध में आचार्य बलदेव उपाध्याय[४] का मत निम्नवत् है –

''परदे के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले 'जवनिका' शब्द की व्युत्पत्ति 'जु' धातु से है। 'जु' धातु धातुपाठ में परिगणित न होकर ३।२।१५० सूत्र (जू चङ्क्रम्य....) में महर्षि पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। इसका अर्थ है गति तथा वेग। अतः 'जवनिका' का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ होगा – वह आवरण, जिसमे दौड़कर लोग चले जायँ अथवा वह वस्तु जो वेग से सम्पन्न हो या जिसे गति प्राप्त हो, अर्थात् जो इधर-उधर हटाई जा सके। 'जवनी' तथा 'जवनिका' दोनों का एक ही अर्थ होता है। इन दोनों में 'जवनिका' का प्रयोग अत्यन्त लोकप्रिय है, 'जवनी' का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत ही न्यून है, परन्तु आवरण के अर्थ में प्रयोग दोनो का ही होता है। 'जवनिका' का प्रयोग 'नाट्यशास्त्र' (५/११) 'दशरूपक' जैसे शास्त्रीय ग्रन्थों, 'भर्तृहरिशतक' तथा 'शिशुपालवध' (४/५४) जैसे प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थों तथा 'हरिवंश' (२/८८) और 'भागवत' (१/८/१६) जैसे पुराणों मे समभावेन उपलब्ध होता है।

इन निर्देशों मे से प्रथम दो में तो 'जवनिका' शब्द का प्रयोग

---

४ सस्कृत साहित्य का इतिहास - आचार्य बलदेव उपाध्याय पृष्ठ - ४७२ – ४७४

नाटकीय आवरण के लिए हुआ है और अन्तिम चार सामान्य परदे के अर्थ मे। सर्वत्र जकारादि 'जवनिका' का ही प्रयोग मिलता है, यकारादि का नही। ऐसी दशा मे परदे के अर्थ मे 'यवनिका' शब्द का प्रयोग कथमपि न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता। एक प्रबल प्रमाण और भी है। 'यवनिका' के पक्षपाती भी परदे के अर्थ में 'यवनी' शब्द का प्रयोग कथमपि न्याय्य नहीं मानते। 'यवनी' का अर्थ है यवन जाति की स्त्री, और इसी अर्थ में इसका प्रयोग कालिदास ने भी किया है (रघु० ४/६१), परन्तु परदे के अर्थ में 'जवनिका' के समान 'जवनी' का प्रयोग भी मिलता है और यह होना भी चाहिए, क्योकि वस्तुतः ये दोनो शब्द एक ही धातु से निष्पन्न होते है। 'जवनिका' में स्वार्थे कन् की अधिकता है, परन्तु स्वार्थ मे कन् के प्रयोग की सत्ता होने के कारण अर्थ मे तनिक भी अन्तर नही है।

श्री गोवर्धनाचार्य ने अपनी विख्यात 'आर्या-सप्तशती' मे 'जवनी' का प्रयोग परदे के अर्थ में शोभन प्रकार से किया है –

"व्रीडाप्रसरः प्रथमं तदनु च रसभावपुष्टचेष्टेयम्।
जवनी- विनिर्गमादनु नटीव दयिता मनो हरति।।"

भारतीय नाट्यकला पर यूनानी प्रभाव का पक्षपाती कोई भी विद्वान् इस आर्या में 'जवनी' के स्थान पर 'यवनी' का परिवर्तन कभी नहीं कर सकता। यदि 'यवनिका' का प्रयोग न्याय्य होता तो परिवर्तन सिद्ध करने में व्याकरण कभी व्याघातक न होता। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि परदे के लिए उचित तथा प्रयुक्त शब्द 'जवनिका' ही है, 'यवनिका' नहीं।

इस झमेले का गूढ़ कारण भी खोजा जा सकता है। राजशेखर का सुप्रसिद्ध 'सट्टक' 'कर्पूरमञ्जरी' है। समग्र रूप से प्राकृत भाषा में निबद्ध नाटिका को ही 'सट्टक' कहते हैं। इस सट्टक के अवान्तर अङ्को के नाम है 'जवनिकान्तरम्'। मेरी समझ मे इस नाम के सस्कृतीकरण ने ही विद्वानों को भ्रम में डाल दिया है। सट्टक मे सब कुछ प्राकृत भाषा मे है। तब अंक का यह नामकरण भी प्राकृत मे ही निबद्ध होगा, यह कल्पना कुछ अनुचित नही है। वररुचि के 'आदेर्यो जः' (प्राकृतप्रकाश) सूत्र

के अनुसार सस्कृत शब्दों का आदिम यकार प्राकृत में जकार हो जाता है। इसी नियम को ठीक-ठीक न समझने के कारण भ्रान्ति का उद्गम हुआ है। जब सस्कृत आद्य-यकार का प्राकृत में जकार होता है, तब प्राकृत का आदिम जकार संस्कृत मे यकार हो ही जाएगा। अतः 'जवनिकान्तरम्' का रूप होगा 'यवनिकान्तरम्' और इस प्रकार नाटकीय परदे के अर्थ मे 'यवनिका' शब्द विराजने लगा। भ्रान्ति यही है। 'आदेर्यो जः' नियम का विपर्यय संस्कृत में सर्वत्र उचित नहीं माना जा सकता। यही कारण है कि पाश्चात्त्य विद्वानों को 'जवनिकान्तरम्' के संस्कृतीकरण ने धोखे में डाल दिया।''

ऋग्संवाद सूक्तवाद

प्रो० मैक्समूलर, प्रो० सिल्वा लेवी, प्रो० फॉन श्रोएदर एव डॉ० हर्टल आदि प्रमुख विद्वानो की मान्यता है कि ऋग्वेद मे अनेक संवाद सूक्त है जिनके आधार पर सस्कृत के नाटको की उत्पत्ति हुई और जिनमें यत्र-तत्र अभिनयात्मकता के दर्शन किए जा सकते है।

१. इन्द्र-मरुत्-संवाद (ऋग्० १-१६५, १-१७०)
२. अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (ऋ० १- १७६)
३. विश्वामित्र-नदी-संवाद (ऋ० ३-३३३)
४. वशिष्ट-सुदास-संवाद (ऋ० ७- ८३)
५. यम-यमी-संवाद (ऋ० १०-१०)
६. इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि-संवाद (ऋ० १०-८६)
७. पुरुरवा-उर्वशी-संवाद (ऋ० १०-६५)
८. सरमा-पणि-संवाद (ऋ० १०-१०८)

प्रो० ओल्डेनबर्ग, विन्डिश और पिशेल का मत है कि ये सवादात्मक सूक्त नाटकीय थे।

इस प्रकार किसी एक वाद मे नाटक की उत्पत्ति नही खोजी जा सकती तदपि नाटक मे विभिन्न तत्वो-नृत्य, गीत, संवाद आदि का अन्वेषण इनमे किया

जा सकता है। परम्परावाद, धार्मिक भावनावाद (वीर पूजा, मे पोलवाद, ऋतूत्सव, कृष्णोपासना) स्वांग, पुत्तलिकाओं का नृत्य वैदिक अनुष्ठान, संवाद आदि सिद्धान्त और उनमें यत्र-तत्र बिखरे हुए तत्व नाटक के मूल प्रेरक है। इन्ही सब स्थानो मे आवश्यक वैशिष्ट्य को समेटते हुए नाट्य-कला की उत्पत्ति को अतीत में ढूंढ़ने का सफल प्रयास किया जा सकता है। सारे लोक-साहित्य और मतो की अभिनेयात्मक विशेषताएं समेटकर सर्वजन ग्राह्य नाट्यवेद की उत्पत्ति खोजी जाय तो शायद हितकर रहे।

विकास

महाकवि भास के समय से संस्कृत नाट्य परम्परा का प्रारम्भ माना जाता है परन्तु इनके पूर्व भी नाटको की परम्परा थी, जिनके प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में बहुतायत से प्राप्त हो जाते है। ऋग्वेद से ही हमें नाट्य के अस्तित्व का पता चलने लगता है। सोम के विक्रय के समय यज्ञ में उपस्थित दर्शको के मनोरंजनार्थ एक प्रकार का अभिनय होता था। ऋग्वेद के संवाद सूक्त भी नाटकीयता का द्योतन करते है। यजुर्वेद में 'शैलूष ' शब्द आया है और यह नट (अभिनेता) वाची शब्द है। सामवेद तो मधुर गीतो का भण्डार ही है। इस प्रकार नाटक के लिए आवश्यक तत्त्व गीत, नृत्य, वाद्य सभी का प्रचार वैदिक युग में था। परन्तु यह नाटकों की आदिम अवस्था थी। इतना तो निश्चित ही है कि भारतीय नाट्य परम्परा के मूल उद्गम ग्रन्थ वेद ही है।

रामायण-काल मे यह कला सुविदित थी। वहाँ 'शैलूष', 'नट' तथा 'नर्तक' आदि का स्पष्ट उल्लेख है। एक जगह वाल्मीकि कहते भी हैं – "जिस जनपद में राजा नहीं रहता उसमें कही 'नट', 'नर्तक' प्रसन्न नही दिखाई देते।" रामायण मे नाटक के प्रदर्शन का भी सकेत मिलता है।[५] महाभारत मे 'नट', 'नर्तक', ' गायक',

---

५. रामा० १.४.६ "रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम्।।"

रामा० २.६७.१५ "नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटनर्तकाः।।

२.६९.४ "वादयन्ति तथा शान्ति लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च।।"

२.८३.१५ "शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति"।

'सूत्रधार' आदि का स्पष्ट उल्लेख है। महाभारत के खिल भाग 'हरिवंश' में 'रामचरित' के नाटक के रूपमेंदिखायी जाने की बात कही गयी है।[६]

महर्षि पाणिनि 'शिलालिन्' और 'कृशाश्व' द्वारा लिखे गए दो नट-सूत्रों का उल्लेख करते है।[७] इन उल्लेखों को देखते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि पाणिन् के समय तक नाट्यकला अवश्य ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी रही होगी। उपर्युक्त दोनो विद्वानो द्वारा लिखे गए नटसूत्र अभिनेताओं को अभिनय की शिक्षा देने के लिए लिखे गए रहे होंगे। पाणिनि के पश्चात् महाभाष्यकार पतञ्जलि ने तो 'कंसवध' और ' बलिबन्ध' नामक नाटकों का स्पष्ट ही सकेत किया है।[८] उनका कथन है कि 'कंसवध' नाटक मे कस के अनुयायी काला मुख बनाकर अभिनय करते और कृष्ण के भक्त अनुयायी मुँह को लाल रग से रंगकर अभिनय करते थे। इस प्रकार पतञ्जलि जिनका समय द्वितीय शताब्दी ई० पू० है, के समय तक नाटकों की रचना और उनका अभिनय प्रसिद्धि पा चुका था।

नाटकों के साहित्यिक अभ्युत्थान और उनके द्रुत विकास में भरत मुनि के नाट्यशास्त्र का अद्भुत योगदान रहा। नाट्यशास्त्र ३६ अध्यायों में विभक्त है। लगभग ७०० पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ में नाट्य-संबन्धी सभी विषयो का विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन है। इसका समय २०० ई०पू० के लगभग माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि ई०पू० तृतीय या चतुर्थ शताब्दी में भारतीय नाट्य-कला अपनी उन्नत व्यवस्था मे थी।

इसी तरह बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों और वात्स्यायन के कामसूत्र मे भी

---

६. महा० १.५१.१५ ''इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा।''
२.१२.३६ ''नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः।
२ . १५ . १३ ''आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः।''
एवं हरिवंश पर्व ६१ से ६७ अध्याय पर्यन्त।

७. अष्टा० ४.३.११० ''पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।''
४.३.१११ ''कर्मन्दकृशाश्वादिनिः।''

८. महाभाष्य ३.२.१११ ''ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कसं घातयन्ति, प्रत्यक्ष च बलिं बन्धयन्तीति।''

नाटकों और नटो का उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन (दूसरी शताब्दी ई०) ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि नट नागरिको को नाटक दिखावे और दूसरे दिन नागरिक चाहें तो फिर नाटक देखे, नहीं तो नटों को विदा करें।

''कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभेरन्। यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा।

— कामसूत्र १.४.२८ से ३१

कुशीलव शब्द से भी ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम अभिनय कार्य राम के पुत्र कुश और लव ने किया था। अतः उनके अनुकरण और उनकी स्मृति मे अभिनेता के लिए कुशीलव नाम चल पड़ा।

भारतीय नाटककारों मे सबसे प्राचीन रचनाए महाकवि भास की प्राप्त होती है। तत्पश्चात् कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, भवभूति, श्री हर्षवर्द्धन, भट्टनारायण, अश्वघोष, मुरारि, राजशेखर, दिड्नाग, कृष्णमिश्र एव जयदेव आदि नाटककारों के नाटक है। जिनका संक्षिप्त-परिचय इस प्रकार है –

महाकवि भास

सस्कृत के प्रथम नाटककार महाकवि भास के जीवन-चरित के विषय में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है। महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना में (प्रथितयशसां भाससौमिल्ल०) के द्वारा भास को सादर स्मरण किया है,[९] अतः वे कालिदास से पूर्ववर्त्ती एवं प्रसिद्ध नाटककार थे। अन्तरंग और बहिरंग दोनो प्रमाणों के आधार पर भास का स्थितिकाल चौथी या पॉचवी शताब्दी ई०पू० निश्चित होता है।[१०] इनके नाम से संम्प्रति १३ नाटक उपलब्ध होते है। सन् १९०६ ई० में महामहोपाध्याय श्री टी०गणपति शास्त्री ने ट्रावनकोर राज्य से इन्हें प्राप्त किया था। इनको प्रकाश मे लाने का श्रेय उनको ही है। भास के नाटको को कथास्रोत की दृष्टि से चार भागों मे बॉटा जा सकता है —

९. ''प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रदीनां प्रबन्धनतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवैः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।''

१० पाण्डेय एव व्यास – 'सस्कृत साहित्य की रूपरेखा' पृष्ठ – ७९।।

(क) उदयन-कथा-मूलक – १. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, २. स्वप्रवासवदत्ता

(ख) महाभारत-मूलक – ३. ऊरुभग, ४. दूतवाक्य, ५. पञ्चरात्र, ६. बालचरित, ७. दूतघटोत्कच, ८. कर्णभार, ६. मध्यमव्यायोग।

(ग) रामायण-मूलक – १०. प्रतिमानाटक, ११. अभिषेकनाटक।

(घ) कल्पना-मूलक – १२. अविमारक, १३. चारुदत्त।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे चार अंक हैं। इसमें उदयन-वासवदत्ता के प्रेम और विवाह का वर्णन है। मन्त्री यौगन्धरायण के द्वारा उदयन को राजा प्रद्योत के यहॉ से छुड़ाने तथा उसकी नीतिमत्ता का वर्णन है। स्वप्नवासवदत्तम् में छः अंक हैं। मन्त्री यौगन्धरायण का 'वासवदत्ता अग्नि मे जलकर मर गई' इस प्रवाद को फैलाकर उदयन का पद्मवती से विवाह कराना तथा उदयन के अपहृत राज्य को पुनः प्राप्त कराने का वर्णन है। ऊरुभङ्ग एक एकांकी नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकारस्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा को भंग करके उसके मारने का वर्णन है। दूतवाक्यम् भी एकांकी नाटक है। महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पांडवों की ओर से सन्धि-प्रस्ताव लेकर दुर्योधन की सभा में जाना और विफल-मनोरथ लौटाने का वर्णन है। पंचरात्रम् नाटक मे तीन अंक है। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा मॉगी कि पाण्डवो को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन ने कहा कि यदि पॉच रात्रि के अन्दर पाण्डव मिल जाऍगे तो ऐसा कर दूँगा। द्रोण के प्रयत्न से पाण्डव मिलते है और आधा राज्य प्राप्त करते है।

बालचरितम् नाटक में पाँच अंक हैं। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से कंसवध तक की कथा वर्णित है। दूतघटोत्कच एकाकी नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूत बनाकर धृतराष्ट्र के पास भेजना और दुर्योधन द्वारा उसका अपमान। दुर्योधन कहता है कि – ''मै इसका उत्तर बाणों से दूॅगा। कर्णभार भी एकांकी नाटक है। इसमें कर्ण का ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को दान में कवच और कुण्डल देने का वर्णन है। मध्यमव्यायोग भी एकाकी नाटक तथा व्यायोग है। मध्यम-पांडव भीम के द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण-पुत्र को बचाने का वर्णन

है। भीम अपने पुत्र घटोत्कच को देखकर आनन्दित होता है तथा पत्नी हिडिम्बा से उसका पुनर्मिलन होता है। प्रतिमानाटकम् में सात अंक हैं। राम-वन-गमन तक की रामायण की कथा संक्षिप्त रूप से वर्णित है। अभिषेकनाटकम् मे छः अंक हैं। इसमे रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्ध काण्ड तक की सारी कथा संक्षेप मे दी गयी है। अन्त में रावण-वध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक का वर्णन है। अविमारक नाटक में छः अंक हैं। इसमें राजकुमार अविमारक का राजा कुन्तिभोज की पुत्री राजकुमारी कुरंगी के साथ प्रणय-विवाह वर्णित है। चारुदत्तम् नाटक में चार अंक है। इसमें ऐश्वर्यहीन पर चरित्रवान् विप्र चारुदत्त और गुणग्राहिणी वाराङ्गना वसन्तसेना की प्रेमलीला वर्णित है। यह नाटक अपूर्ण है। सम्भवतः यह नाटक भास की अन्तिम कृति है, जिसको वे मृत्युपर्यन्त पूर्ण नहीं कर सके हैं।

महाकवि कालिदास

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वोत्कृष्ट नाटककार माने जाते है। उनका स्थितिकाल प्रथम शताब्दी ई०पू० में उज्जयिनी के परमार-वंशी सम्राट विक्रमादित्य के राज्यकाल में माना गया है। इनकी लेखनी से तीन नाटकरत्न मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् एव अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रसूत हुए। मालविकाग्निमित्रम् के पॉच अंकों में शुङ्गवशीय नरेश अग्निमित्र तथा मालविका की प्रणय-कथा वर्णित है। विक्रमोर्वशीयम् पॉच अको का एक 'त्रोटक' (उपरूपक) है। इसमें राजा पुरुरवा तथा उर्वशी अप्सरा की प्रणय-कथा वर्णित है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक में सात अंकों में दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, वियोग तथा पुनर्मिलन की कथा वर्णित है।

शूद्रक

'मृच्छकटिक' के रचयिता राजा शूद्रक का प्रामाणिक जीवन-वृत्त अप्राप्य है। इसकी (मृच्छकटिक) [11] प्रस्तावना में शूद्रक का परिचय तीन श्लोको मे दिया गया है – ये श्लोक भी पर्याप्त विवाद के कारण है।" यह १० अंकों का एक

---

११ मृच्छ० १, ३, ४, ५

प्रकरण है, जिसका विस्तृत विवरण ''भास एवं शूद्रक का परिचय'' तथा द्वितीय अध्याय ''मृच्छकटिकम्'' शीर्षक मे किया जाएगा।

विशाखदत्त

विशाखदत्त के समय के विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वान इनको चन्द्रगुप्त द्वितीय[१२] का समकालीन कवि, कुछ अवन्तिवर्मा[१३] का समकालीन और कुछ (प्रो० याकोबी आदि) मुद्राराक्षस मे आए चन्द्रग्रहण की तिथि के आधार पर ८६० ई० के आसपास मानते है। इनके समय का निर्णय बहुत कुछ उसके भरत-वाक्य पर आश्रित है।[१४] मुद्राराक्षस सात अंकों का राजनीति-विषयक नाटक है। इसमें मुद्रा (अगूठी) के द्वारा राक्षस को वश में करने का वर्णन है, अतः इसका नाम मुद्राराक्षस पड़ा।

भवभूति

पूर्वसीमा और अपरसीमा निर्धारित करने के पश्चात् भवभूति का समय लगभग ६८० ई० से ७५० ई० तक मानना उचित है।[१५] मालतीमाधव, महावीरचरित एव उत्तररामचरित भवभूति के तीन नाटक उपलब्ध होते है। मालतीमाधव दस अंकों का प्रकरण नाटक है, जिसमें मालती और माधव तथा मकरन्द और मदयन्तिका के प्रणय और परिणय का वर्णन है। महावीरचरित्र के सात अकों में राम के विवाह से लेकर राम-राज्याभिषेक तक रामायण की कथा वर्णित है। उत्तररामचरित नाटक में सात अंको में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है, जिसमे सीता-परित्याग, राम-विलाप, लव-कुश-प्राप्ति और राम के द्वारा निर्दोष सीता के स्वीकार किए जाने का वर्णन है।

---

१२. ३७५ ई० से ४१३ ई०

१३. ५८२ ई०

१४. मुद्रा० ७-१६ ''वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटि प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना सश्रिता राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु मही पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।। ''

१५ डॉ० कपिलदेव द्विवेदी – ''सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास'' पृष्ठ ३६७।।

हर्ष

इनका समय (राज्यकाल) ६०६ ई० से ६४८ ई० तक) माना जाता है। प्रियदर्शिका, रत्नावली एव नागानन्द इनकी तीन प्रसिद्ध रचनाएँ है। **प्रियदर्शिका** चार अंकों की नाटिका है, जिसमें राजा उदयन और प्रियदर्शिका (आरण्यिका) के प्रणय और परिणय का वर्णन है। **रत्नावली** भी चार अंकों की नाटिका है, जिसमें राजा उदयन और सिहल देश की कुमारी सागरिका (रत्नावली) के प्रणय और परिणय का वर्णन है। **नागानन्द** पॉच अंकों का नाटक है। इसमें जीमूतवाहन नामक विद्याधर-राजकुमार का अपनी बलि देकर शंखचूड़ नामक सर्प को गरुड़ से बचाने का वर्णन है।

भट्टनारायण

इनका समय आठवी शदी का उत्तरार्ध स्वीकार किया जाता है। इनकी एकमात्र नाट्यकृति 'वेणीसहार' है, जिसमें छः अंकों में भीम के द्वारा द्रौपदी के वेणीसहार (वेणी को सँवारने या बॉधने) का वर्णन है,अतः नाटक का नाम वेणीसहार पड़ा। इसमे द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए भीम प्रतिज्ञा करता है कि वह दुःशासन की छाती का खून पिएगा और दुर्योधन की जॉघ तोड़ेगा। दोनो प्रतिज्ञाएँ पूरी होने पर वह द्रौपदी की वेणी बॉधता है।

अश्वघोष

अश्वघोष प्रथम बौद्ध नाटककार माने जाते है। ये सम्राट कनिष्क (७८ ई० - १२० ई०) के राजगुरू और आश्रित राजकवि थे। अतः इनका समय प्रथम शताब्दी ई० मानना उचित है। सन् १६१० में मध्य एशिया के तूरफान नामक स्थान में अश्वघोष के तीन नाटक प्रो० ल्यूडर्स द्वारा पाये गए। इनमे से एक की पुष्पिका सुरक्षित मिली है, जिसमें लेखक का नाम सुवर्णाक्षी-पुत्र अश्वघोष लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ 'शारिपुत्रप्रकरण' है। तीनो नाटकों में केवल 'शारिपुत्रप्रकरण' ही काम चलाऊ मिला है – यह नौ अंकों का प्रकरण नाटक है जिसमें मौद्गलायन और शारिपुत्र नामक दो युवको के बुद्ध के उपदेश से प्रभावित होकर, बौद्ध धर्म मे दीक्षित होने का वर्णन

है।

मुरारि

इनका समय ८०० ई० के लगभग माना जाता है। 'अनर्घराघव' इनकी एकमात्र कृति प्राप्त होती है, जो सात अंकों का नाटक है। इसमें रामायण की कथा वर्णित है। विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँगते हैं। यहाँ से लेकर रामराज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है।

राजशेखर

राजशेखर कन्नौज के प्रतिहार राजा निर्भयराज (८७३ से ६०७ ई०) और उसके पुत्र महीपाल (६१४ ई०) के आश्रित कवि थे। कर्पूरमञ्जरी में उन्होने अपने को निर्भय का गुरू बताया है। अतः इनका समय १० वी शताब्दी ई० का प्रथम चरण (६०० ई० के लगभग) सिद्ध होता है। बालरामायण, बालभारत (प्रचण्डपाण्डव), विद्धशालभंजिका, एव कर्पूरमंजरी राजशेखर के चार नाटक प्राप्त होते है। बालरामायण दस अंकों का एक महानाटक है, जिसमें रामकथा का वर्णन है। इसमें रावण को एक प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है और उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई है। बालभारत के दो अंक प्राप्त होते है, इसमें द्रौपदी-स्वयंवर, द्यूत और द्रौपदी-चीरहरण की घटनाएँ वर्णित हैं। विद्धशालभंजिका चार अंकों की एक शास्त्रीय नाटिका है, जिसमे रत्नावली आदि के तुल्य राजकीय प्रणय-क्रीडा वर्णित है। कर्पूरमञ्जरी चार अकों का 'सट्टक' नामक रूपक है। इसकी कथा रत्नावली के तुल्य राजपरिवार की प्रणय-क्रीडा से सम्बद्ध है।

दिङ्नाग

इनका समय १००० ई० के लगभग माना जाता है। दिङ्नाग का छः अकों का नाटक 'कुन्दमाला' मद्रास से १६२३ ई० मे प्रकाशित हुआ है। इसमे राम के द्वारा सीता के परित्याग से लेकर राम-सीता मिलन तक की घटना का वर्णन है।

कृष्णमिश्र

ये जेजाकभुक्ति के राजा कीर्तिवर्मा के शासन काल मे हुए थे। इस राजा का १०६८ ई० का एक लेख प्राप्त हुआ है। अतः इनका समय ११०० ई० के लगभग है। इनका एकमात्र रूपकात्मक नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' प्राप्त होता है। यह अद्वैत वेदान्त-विषयक नाटक है। इसमे छः अंक है। इसमें वर्णन है कि पुरुष मति, विवेक, श्रद्धा, उपनिषद् आदि के सहयोग से अविद्या आदि के अन्धकार को पार करके विष्णुभक्ति की कृपा से अपने वास्तविक स्वरूप 'विष्णु' पद को प्राप्त करता है।

जयदेव

इनका समय १२०० ई० के लगभग माना जाता है। जयदेव का एक नाटक ''प्रसन्नराघव'' प्राप्त होता है। जिसमें सात अंकों में सीता-स्वयंवर से लेकर रावण-वध के बाद राम के अयोध्या लौटने और राज्याभिषेक का वर्णन है।

उपर्युक्त नाटककारो के अतिरिक्त संस्कृत में रूपक के विविध भेदो पर अन्य कई नाटककारों ने रचनायें लिखीं, जिनमें कुछ नाटककारों के नाममात्र ही ज्ञात है, कुछ के नाटक लुप्तप्राय, अज्ञात या अप्रकाशित है, एवं कुछ सुप्रचलित, अप्रचलित और उद्धरणों आदि मे निर्दिष्ट है। जिनका विस्तृत विवरण डॉ० कपिलदेव द्विवेदी[१६] ने इस प्रकार दिया है —

(क) सामान्य नाटककार

	नाटककार	नाटक	समय	विशेष
	ईसा पूर्व			
१.	वररुचि	उभयाभिसारिका	चौथी शती ई०पू०	भाण

१६. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृष्ठ ४४२-४५३।।

प्रथम शताब्दी ई०

२.	ईश्वरदत्त	धूर्तविट सवाद	प्रथम शता०	भाण
३.	बोधायन	भगवदज्जुक	प्रथम शता०	प्रहसन
४.	अज्ञात	वीणावासवदत्तम्	प्रथम शता०	उदयन-वासवदत्ता, चार अंक
५.	अज्ञात	दामक	प्रथम शता०	प्रहसन, कर्णकथा

चतुर्थ शता०ई०

६.	(अज्ञात स्त्री कवि)	कौमुदीमहोत्सव	३४० ई०	चन्द्रगुप्त द्वितीय, पॉच अंक

सातवीं शता०ई०

७.	महेन्द्रविक्रम वर्मा	मत्तविलास	६१० ई०	प्रहसन, काची-वर्णन
८.	चन्द्र (चन्द्रक)	लोकानन्द	६५० ई० लगभग	बौद्धनाटक
६.	श्यामिलक	पादताडितक	सातवीं पूर्वार्ध	भाण, ब्राह्मण-वेश्या-कथा
१०.	शक्तिभद्र	आश्चर्यचूडामणि	७०० ई०	रामकथा, सात अक
		उन्मादवासवदत्त	७०० ई०	वासवदत्ता-कथा

आठवीं शता०ई०

११.	यशोवर्मा	रामाभ्युदय	७३३ ई० लगभग	राम-कथा, छः अक
१२.	अनंगहर्ष (मात्र-राज, मात्राराज)	तापसवत्स राज	८०० ई० लगभग	उदयन वासव दत्ता छः अंक

१३.	मायुराज	उदात्तराघव	८०० ई० लगभग	राम कथा
१४.	कुलशेखरवर्मन्	सुभद्राधनञ्जय	८०० ई० लगभग	सुभद्राहरण, पाँच अंक
		तपतीसंवरण	८०० ई० लगभग	संवरण-तपती-कथा, छः अक

नौवीं शता० ई०

१५.	हनुमान्	महानाटक	८५० ई० लगभग	रामकथा, नौ अंक
१६.	दामोदरमिश्र	हनुमन्नाटक	८५० ई०	राम कथा, चौदह अंक
१७.	शिवास्वामी	(स्फुट पद्य प्राप्य)	८५० ई०	
१८.	भीमट	स्वप्नदशानन, प्रतिज्ञा, चाणक्य,५	६०० ई०	
१६.	क्षेमीश्वर	चण्डकौशिक	६०० ई०	हरिश्चन्द्र कथा, पाँच अंक
		नैषधानन्द	६०० ई०	नलकथा, सात अक

दशवीं शता० ई०

२०.	(अज्ञात)	तरंगदत्त	दशवीं शताब्दी	धनिक द्वारा उद्धृत
२१.	(अज्ञात)	पुष्पदूषितक	दशवीं शताब्दी	धनिक द्वारा उद्धृत
२२.	(अज्ञात)	पाण्डवानन्द	दशवीं शताब्दी	
२३.	(अज्ञात)	चलितराम	दशवी शताब्दी	

ग्यारहवीं शता० ई०

२४.	क्षेमेन्द्र	चित्रभारत,	१०५० ई०	महाभारत कथा
		कनकजानकी	१०५० ई०	रामकथा

२५.	बिल्हण	कर्णसुन्दरी	१०८० ई०	कर्णाटकुमारी नाटिका, चार अंक

बारहवीं शता० ई०

२६.	शंखधर कविराज	लटकमेलक	बारहवीं पूर्वार्ध	प्रहसन
२७.	यशश्चन्द्र	मुद्रितकुमुदचन्द्र	बारहवीं पूर्वार्ध	कुमुदचन्द्र-पराजय
२८.	कंचनाचार्य	धनञ्जयविजय	बारहवीं पूर्वार्ध	अर्जुन-विजय-कथा
२६.	रामचन्द्र	नलविलास निर्भयभीम, सत्यहरिश्चन्द्र कौमुदीमित्रानन्द आदि	बारहवीं पूर्वार्ध	नल-कथा, सात अक
३०.	विग्रहराजदेव	हरकेलि-नाटक	११५३ ई०	शिव-अर्जुन-युद्ध
३१.	सोमदेव	ललित-विग्रहराज	बारहवीं उत्तरार्ध	
३२.	वत्सराज	कर्पूरचरित, किरातार्जुनीयम् हास्यचूडामणि, रुक्मिणी हरण, त्रिपुरदाह, समुद्रमन्थन,	बारहवीं उत्तरार्ध	भाण, व्यायोग, प्रहसन, ईहामृग डिम, समवकार
३३.	सुभट	दूताङ्गद	बारहवीं उत्तरार्ध	छायानाटक, अंगद कथा

तेरहवीं शता० ई०

३४.	मदन	पारिजात-मंजरी	तेरहवीं पूर्वार्ध	अर्जुनवर्मा-प्रणय-कथा
३५.	जयसिह सूरि	हम्मीर-मदमर्दन	१३२० ई०	हम्मीर-मर्दन, पॉच अंक

३६.	रुद्रदेव (राजा)	उषर्गोदिय ययाति-चरित	तेरहवी उत्तरार्ध	उषा-अनिरुद्ध ययाति-शर्मिष्ठा
३७.	प्रह्लादन	पार्थ-पराक्रम	१३०० लगभग	व्यायोग, अर्जुनकथा
३८.	मोक्षादित्य	भीम-विक्रम	१३०० लगभग	भीमकथा, व्यायोग
३९.	रामभद्र मुनि	प्रबुद्धरौहिणेय	१३०० लगभग	रौहिणेय-कथा, छः अंक
४०.	रविवर्मा	प्रद्युम्नाभ्युदय	१३०० लगभग	प्रद्युम्न-प्रभावती, पॉच अक
४१.	विद्यानाथ	प्रतापरुद्रियकल्याण	१३०० लगभग	प्रतापरुद्र कथा
४२.	यशःपाल	मोहपराजय	तेहरवीं उत्तरार्ध	रूपकात्मक नाटक

चौदहवीं शता० ई०

४३.	नरसिह	कादम्बरी-कथा	१३५० ई०	कादम्बरी-कथा
४४.	विश्वनाथ	सौगान्धिकाहरण	चौदहवीं पूर्वार्ध	व्यायोग, महाभारत-कथा
४५.	ज्योतिरीश्वर	धूर्तसमागम	चौदहवी पूर्वार्ध	प्रहसन
४६.	भास्कर	उन्मत्तराधव	१३५० ई०	रामकथा, एकाकी
४७.	वेदान्तदेशिक (वेंकटनाथ)	संकल्प-सूर्योदय	चौदहवीं पूर्वार्ध	रूपकात्मक, दस अक
४८.	विरुपाक्ष	उन्मत्तराघव नारायण-विलास	चौदहवीं उत्तरार्ध	रामकथा
४९.	मणिक	भैरवानन्द	चौदहवीं उत्तरार्ध	भैरव-मदनवती-कथा
५०.	उद्दण्ड (उद्दण्डी)	मल्लिकामारुत	चौदहवी उत्तरार्ध	प्रकरण, दस अक
५१.	काशीपति	मुकुन्दानन्द	चौदहवीं उत्तरार्ध	भाण

कविराज

पन्द्रहवीं शता० ई०

५२.	वामनभट्ट बाण	पार्वती-परिणय, कनकलेखा-कल्याण, श्रृंङ्गार-भूषण	पन्द्रहवीं पूर्वार्ध	नाटक, पाँच अंक नाटिका, चार अंक भाण
५३.	व्यास रामदेव	रामाभ्युदंय पाण्डवाभ्युदय सुभद्रा-परिणय	पन्द्रहवी पूर्वार्ध	रामायण-कथा छायानाटक, महाभारत-कथा
५४.	गगाधर	गगादास-प्रताप-विलास	१४५० ई०	गंगादास-कथा
५५.	हरिहर	भर्तृहरिनिर्वेद	पन्द्रहवी पूर्वार्ध	भर्तृहरि-वैराग्य, पाँच अंक
५६.	जीवराम याज्ञिक	मुरारि-विजय	१४८५ ई०	भागवत-कथा
५७.	रूपगोस्वामी	विदग्ध-माधव, ललितमाधव, दानकेलि-कौमुदी	१५०० ई०	नाटक, सात अंक कृष्णकथा, प्रकरण, दस अंक, कृष्णकथा, भाण
५८.	गोकुलनाथ	मुदितमदालसा, **अमृतोदय**	१५०० ई० लगभग	नाटक, सात अंक **रूपकात्मक**

सोलहवीं शता० ई०

५९.	बाल कवि	रन्तुकेतूदय, रविवर्माविलास	१५३७ ई० लगभग	केरलराज रविवर्मा
६०.	लक्ष्मण माणिक्यदेव	कुवलयाश्वचरित, विख्यात विजय	सोलहवीं उत्तरार्ध	मदालसा-प्रणय नकुल-कौरव-युद्ध

६१.	विलिनाथ	मदनमंजरी-महोत्सव	सोलहवीं उत्तरार्ध	चन्द्रवर्मा-पराजय
६२.	श्रीनिवास दीक्षित	भैमीपरिणय भावनापुरुषोत्तमं	१५७० ई०	नल-कथा रूपकात्मक
६३.	शेषकृष्ण	कंसवध	१६०० ई०	कंसवध
६४.	कवि कर्णपूर	चैतन्य चन्द्रोदय	सोलहवीं उत्तरार्ध	प्रतीकात्मक, दस अंक
६५.	जगदीश्वर भट्टाचार्य	हास्यार्णव	सोलहवीं उत्तरार्ध	प्रहसन, दो अंक

सत्रहवीं शता० ई०

६६.	यज्ञनारायण दीक्षित	रघुनाथ-विलास	१६३० ई०	तंजौर राजा रघुनाथ
६७.	जगज्ज्योतिर्मल्ल	हरगौरी-विवाह	सत्रहवीं पूर्वार्ध	संगीतप्रधान
६८.	गुरुराम	मदन-गोपाल-विलास	१६३० ई०	भाण
		सुभद्रा-धनजय		नाटक, पॉच अक
		रत्नेश्वर प्रसादन		नाटक, पाँच अक
६९.	राजचूडामणि दीक्षित	आनन्दराघव, कमलिनीकलहंस, श्रृगारसर्वस्व-भाण	सत्रहवीं पूर्वार्ध	
७०.	नीलकठ दीक्षित	नलचरित	१६५० ई०	नलकथा, छः अंक
७१.	वेंकटाध्वरी	प्रद्युम्नानन्द	१६५० ई० लगभग	प्रद्युम्न-कथा, छः अक
७२.	रुद्रदास	चन्द्रलेखा	१६५० ई० लगभग	सट्टक
७३.	महादेव	अद्भुत-दर्पण	१६५० ई० लगभग	रामकथा, दस अक
७४.	वेदकवि या	विद्या-परिणय,	सत्रहवीं उत्तरार्ध	रूपकात्मक, सात अङ्क

	(आनन्दराय मखिन्)	जीवानन्दन		सात अक , रूपकात्मक
७५.	रामभद्र दीक्षित	जानकी-परिणय, श्रृंगार-तिलक		१७०० ई०
७६.	नल्ल कवि (भूमिनाथ)	सुभद्रा-परिणय श्रृगारसर्वस्व-भाण चित्तवृत्ति कल्याण, जीवन्मुक्तिकल्याण		रूपकात्मक
७७.	कवितार्किक	कौतुकरत्नाकर	सत्रहवीं शता०	प्रहसन
७८.	सामराज दीक्षित	धूर्तनर्तक, श्रीदामचरित	सत्रहवी शता०	प्रहसन, श्रीदामन् चरित
७६.	सठकोप	वसन्तिकापरिणय	सत्रहवी शता०	नरसिह-प्रेमकथा
८०.	कुमारताताचार्य	पारिजात-नाटक	सत्रहवीं शता०	पारिजातहरण, पॉच अंक
८१.	रामानुज	वसुलक्ष्मीकल्याण	सत्रहवी शता०	रगनाथ-वसुलक्ष्मी
	अट्ठारहवीं शता० ई०			
८२.	भूदेव शुक्ल	धर्मविजय	१७३७ ई०	रूपकात्मक, पॉच अंक
८३.	विश्वेश्वर	रुक्मिणी-परिणय, नवनाटिका, श्रृंगारमंजरी	अट्ठारहवीं पूर्वार्ध	नाटक नाटिका सट्टक
८४.	शकर दीक्षित	प्रद्युम्न-विजय	अट्ठारहवी पूर्वार्ध	
८५.	जगन्नाथ	रतिमन्थन, वसमुती-परिणय	अट्ठारहवीं पूर्वार्ध	

८६.	जगन्नाथ	सौभाग्य महोदय	अट्ठारहवी पूर्वार्ध	आभूषण पात्र है।
८७.	मलारी आराध्य	शिवलिंग सूर्योदय	अट्ठारहवीं पूर्वार्ध	शैव धर्म
८८.	देवराज	बालमार्तण्ड-विजय	अट्ठारहवी उत्तरार्ध	
८९.	वरदाचार्य	वसन्ततिलक	अट्ठारहवीं उत्तरार्ध	(अम्म भाण)
९०.	घनश्याम	मदन-सजीवन नवग्रह चरित, आनन्द-सुन्दरी, डमरुक	अट्ठारहवीं उत्तरार्ध	भाण सट्टक सट्टक प्रहसन
९१.	रामवर्मन्	रुक्मिणी-परिणय श्रृंगार-सुधाकर	अट्ठारहवीं उत्तरार्ध	कृष्ण-कथा
९२.	विश्वनाथ	मृगांकलेखनाटिका	अट्ठारहवीं उत्तरार्ध	नाटिका
९३.	कृष्णदत्त	कुवलयाश्वीय	अट्ठारहवी शता०	मदालसा-प्रणय, सात अक
		पुरजन-कथा	अट्ठारहवी शता०	भागवत कथा, पॉच अंक
९४.	वेंकट सुब्रह्मण्य	वसुलक्ष्मी-कल्याण	अट्टारहवीं शता०	
९५.	पेरु सूरि	वसुमंगल	अट्ठारहवी शता०	प्रणय-कथा
९६.	रामदेव	विद्यामोदतरंगिणी	अट्ठारहवीं शता०	रूपकात्मक
९७.	विट्ठल	आदिलवश-कथा	अट्ठारहवीं शता०	छायानाटक, आदिलवंश
९८.	मथुरादास	वृषभानुजा	अनिर्णीत	नाटिका
९९.	गोपीनाथ चक्रवर्ती	कौतुभ-सर्वस्व	अनिर्णीत	प्रहसन
१००.	नीलकण्ठ	कल्याण-सौगधिक	अनिर्णीत	
१०१.	नरसिंह	शिवनारायणभज-	अनिर्णीत	आध्यात्मिक

	महोदय		
१०२. लोकनाथ भट्ट	कृष्णाभ्युदय	अनिर्णीत	
१०३. कृष्णावधूत	सर्वविनोद	अनिर्णीत	
घटिकाशतक			
१०४. कृष्ण मिश्र	वीर-विजय	अनिर्णीत	
१०५. शंकर	शारदा-तिलक	अनिर्णीत	
१०६. रामकृष्ण	गोपालकेलि-क्रीडा	अनिर्णीत	
१०७. माधव	सुभद्राहरण	अनिर्णीत	

उन्नीसवीं शता० ई०

१०८. राम	मन्मथोन्मथन	१८२०	डिम
१०९. कोटिलिंगपुर-राजकुमार	रससदन-भाण	१८५०	भाण
११०. पद्यनाम	त्रिपुरविजय	१९वीं पू०	व्यायोग, शिवकथा
१११. बल्लिशाय कवि	ययातितरुणनन्दनम्	१९वीं पू०	ययातिकथा
	रोशनानन्दन	१९वी पू०	अनिरुद्ध-रोशना, पॉच अक
११२. विरार राघव	रामराज्याभिषेक,	१९वीं पू०	रामकथा, सात अंक
	वालिपरिणय	१९वीं पू०	वालि-कथा
११३. रामचन्द्र	श्रृंगारसुधार्णव	१९वीं पू०	भाण
११४. शकरलाल	सावित्रीचरित,	१९वीं उ०	सावित्री-कथा
महामहोपाध्याय	ध्रुवाभ्युदय,		ध्रुवकथा
	पार्वती-परिणय आदि		पार्वती-विवाह

११५. ईचम्वदी	श्रृगारतरंगिणी	१६वी उ०	—
श्रीनिवासाचारी	उषा-परिणय		उषा-विवाह
११६. सोंठी भद्रादि रामशास्त्री	मुक्तावल	१६वी उ०	—
११७. वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य	चैत्रयज्ञ	१६वीं उ०	दक्षयज्ञ, पाँच अंक
११८. पेरी काशीनाथ शास्त्री	चांचालिकारक्षणम् यामिनीपूर्ण तिलक	१६वी उ०	
११६. श्री निवासाचारी	ध्रुवचरित	१६वी उ०	ध्रुव-कथा
	क्षीराब्धिशयनम्		—
१२०. पचानन	अमरमंगल	१६वीं उ०	अमरसिह-चरित
१२१. मूलशंकर	छत्रपति-साम्राज्य	१६वीं उ०	शिवाजी-चरित, दस अक
मणिकलाल	प्रताप-विजय	१६वीं उ०	महाराणा प्रताप, नौ अक
याज्ञिक	सयोगिता-स्वयवर	१६वी उ०	पृथ्वीराज चौहान
१२२. अम्बिकादत्त व्यास	सामवतम्	१६ वीं उ०	सामवती-सुमेधाविवाह
१२३. आर०कृष्णमाचारी	वासन्तिकस्वप्न	१८६२ ई०	मिड् समर नाइट ड्रीम का अनुवाद
१२४. चोक्कनाथ	सेवन्तिका परिणय	अनिर्णीत	पॉच अक
१२५. धर्मसूरि	नरकासुर-विजय	अनिर्णीत	व्यायोग

बीसवीं शता०ई०[१७]

१२६. हरिदास सिद्धान्त	शिवाजी-चरित		शिवाजी-चरित,

१७ २०वी शताब्दी के नाटकारों के विवरण के लिए द्रष्टव्य– श्रीमती डॉ० उषा सत्यव्रत कृत Sanskrit Dramas of the Twentieth Century भाग १, १६७१।

			दस अक
वागीश	बगीय-प्रताप, मेवाड-प्रताप, आदि	२०वीं पू०	बगीय-चरित, आठ अंक महाराणा प्रताप
१२७. लक्ष्मण सूरि	दिल्ली - साम्राज्य	१६१२ ई०	–
१२८. मथुराप्रसद दीक्षित, महामहोपाध्याय	वीरप्रताप, शंकरविजय, पृथ्वीराज, गांधी-विजय, भारत-विजय, भक्त-सुर्दशन	२०वी०पू०	राणा प्रताप, दार्शनिक ऐतिहासिक दुःखान्त, गाधी-चरित, भारत-स्वाधीनता, स्वाधीनता, सात अंक दुर्गा-महत्व
१२६. एस०एन० ताड़पत्रीकर	विश्वमोहन	१६५१ ई०	'गोएथेज पोस्ट पर आश्रित'
१३०. नीर्पजे भीम भट्ट	काश्मीरसधान-समुद्यम	१६५४ ई०	कश्मीर-समस्या, एकांकी
१३१. वाई० महालिग शास्त्री	कलिप्रादुर्भाव	१६५६ ई०	रुपकात्मक, कलिकथा
१३२. सदाशिव दीक्षित	सरस्वती, पाणिनि, कुसंगति	२०वीं उ०	भारतीय संस्कृति एकांकी
१३३. डॉ० यतीन्द्र विमल चौधरी	निष्किंचन-यशोधर, महिमामय-भारत, भारत-हृदयारविन्द भारत-भास्कर, १२		सात अक भारत-वर्णन भारत-वर्णन भारत-वर्णन
१३४. जीवन लाल पारीख	छायाशाकुन्तल	२०वी उ०	संक्षिप्त शाकुन्तल एक अंक
१३५. पिलाई	भीम-पराक्रम	२०वीं उ०	भीम-चरित

१३६.	के०एस० रामास्वामी	रति-विजय	२०वीं उ०	—
१३७.	वेलणकर	या चिन्तयामि, तमसो मा ज्योति-र्गमय, प्राणाहुती	२०वी उ०	
१३८.	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	परिवर्तनम्	२०वी उ०	सामाजिक-परिवर्तन

(ख) रूपकात्मक नाटक

१.	अश्वघोष	शारिपुत्र-प्रकरण	प्रथम श०ई०	पात्र – बुद्धि, कीर्ति, धृति
२.	कृष्ण मिश्र	प्रबोधचन्द्रोदय	११०० ई०	पात्र – मति, दंभ, श्रद्धा आदि
३.	यशः देव	मोहपराजय	१३ वीं उ०	पात्र – विवेक, शान्ति, कृपा आदि
४.	वेदान्तदेशिक	संकल्पसूर्योदय	१४वीं पू०	दस अक, शान्त रस
५.	गोकुल नाथ	अमृतोदय	१५०० ई० लगभग	पात्र – मीमांसा, श्रुति
६.	श्रीनिवास दीक्षित	भावना-पुरुषोत्तम	१५७० ई०	—
७.	कणपूर (गोस्वामी परमानन्द)	चैतन्य चन्द्रोदय	१६वी उ०	
८.	वेद कवि (आनन्द राय मखिन्)	विद्या-परिणय, जीवानन्दनम्	१७वी उ०	विद्या-जीवात्मा, सात अक जीवमोक्षवर्णन
९.	नल्ल कवि (नल्लाह वरी)	चित्तवृत्तिकल्याण जीवन्मुक्तिकल्याण	१७०० ई०	— —
१०.	भूदेव शुक्ल	धर्म-विजय	१७३७ ई०	धर्ममहत्व, पॉच अंक

११.	रामदेव	विद्यामोदतरगिणी	१८वीं श०	विद्या-महत्व
१२.	वाई०महालिंग शास्त्री	कलिप्रादुर्भाव	१९५६ ई०	कलि-प्रारम्भ-चर्चा

(ग) नाटक की अन्य विधाएँ

छाया नाटक

सुभट दूतागद	१२वीं उ०	अंगद कथा	
व्यास रामदेव	सुभद्रा-परिणय, रामाभ्युदय, पाण्डवाभ्युदय	१५वी पू०	महाभारत-कथा रामकथा महाभारत-कथा
विट्ठल	आदिल-वशकथा	१८वी श०	आदिल-वंश
शंकर लाल	सावित्रीचरित	१८२२ ई०	

रेडियो रूपक

वेलणकर	प्राणाहुती (हुतात्मा दधीचि, रानी-दुर्गावती)	१९६३ई० १९६४ई०	दिल्ली से प्रसारित दिल्ली से प्रसारित

अनूदित रूपक

आर०कृष्णमाचारी	वासन्तिक-स्वप्न	१८९२ ई०	मिड्समर नाइट्स ड्रीम का अनुवाद
अनन्त त्रिपाठी शर्मा	द्वादशी रात्रि, यथा ते रोचते	१९६५ ई०	ट्वेल्थ नाइट एजयू लाइकइट

अनेकार्थक रूपक

कृष्णानन्दवाचस्पति	अन्तर्व्याकरण-नाट्य-परिशिष्ट	१८६४ ई०	व्याकरण और दर्शनपरक दो अर्थ वाले पद्य

नाट्य साहित्य का दशधा विभाग

ऐन्द्रिय माध्यम के आधार पर साहित्यशास्त्र में दृश्य एवं श्रव्य काव्य के दो भेद बताए गए है। रूपक का सम्बन्ध काव्य के प्रथम भेद से है, इसकी निष्पति 'रूप्' धातु मे 'ण्वुल्' प्रत्यय के योग से हुई है। कही-कही 'रूप' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है किन्तु इन दोनो 'शब्दो' मे प्रत्यय भेद के अतिरिक्त कोई भेद नही है। उक्त दोनो शब्द साहित्य मे नाट्य के वाचक है। प्राचीन काल से ही 'रूप' एवं 'रूपक' नाट्य के अर्थ में प्रयुक्त होते आये है। 'दशरूप' शब्द नाट्यशास्त्र[1] में नाट्य की दस विधाओं के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। दशरूपक[2] मे रूपक को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि रूप का आरोप होने के कारण नाट्य को रूपक की सज्ञा प्रदान की जाती है। विश्वनाथ[3] ने भी दशरूपककार के ही शब्दो को कुछ परिवर्तन के साथ दुहराया है। नाट्यदर्पणकार के अनुसार रूपित किए जाने के कारण ही नाटक आदि को रूप अथवा रूपक की संज्ञा में अभिहित किया गया है। नाटक आदि रूपक वाचिक, आङ्गिक, सात्त्विक और आहार्य अभिनयों के द्वारा प्रदर्शित किए जाते है, जिनके प्रदर्शन मे आङ्गिक अभिनय का अत्यधिक महत्त्व है। इसकी संख्या के विषय मे आचार्यो मे मतवैभिन्य है यद्यपि नाट्यशास्त्र में रूपक के दस भेद बताए गए है, तथापि भरतमुनि ने दस शुद्ध रूपको के निरुपण के साथ ही साथ नाटक तथा प्रकरण के संकर से जन्य दो अन्य (नाटी एवं प्रकरणी) संकीर्ण रूपको का भी उल्लेख किया है –

अनयोश्च बन्धयोगादेको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः।
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटी संज्ञाश्रिते काव्ये।।

— नाट्य० १८, ५७।।

---

१ नाट्यशास्त्र "दशरूपविधाने तु पाठ्य योज्य प्रयोक्तृभिः।"

२ दशरूपक, प्रथम प्रकाश, ७ "रूपं दृश्यतयोच्यते। रूपक तत्समारोपात्।"

३. साहि० षष्ठ परिच्छेद दृश्यश्रव्यत्त्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयम् तद्रूपातुरूपकम्।।

काव्यानुशासनकार[४] एव नाट्यदर्पणकार [५] ने रूपक के बारह भेदो का वर्णन किया है। साहित्यदर्पणकार ने रूपक के दस[६] और उपरूपक के अट्ठारह[७] भेद किए है। यहाँ पर नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अक, वीथी और प्रहसन इन दस भेदो का वर्णन ज्यादा युक्तिसगत है –

१. नाटक

नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानो ने बहुत विचार-विमर्श किया है। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने नमनार्थक नट् धातु से भी नाटक शब्द की व्यत्पत्ति मानी है।[८] परन्तु नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र इस व्युत्पत्ति से सहमत नही है।[९] इनके अनुसार नर्तनार्थक नट् धातु से नाटक शब्द बना है।[१०] यही मत समस्त विद्वानो को मान्य है। इसे ही नाट्यरूप भी कहा जाता है। तथा इसे ही 'रूपक' की भी संज्ञा प्रदान की गयी है। जैसे रूपक अलंकार में मुख पर चन्द्रमा का आरोप कर दिया जाता है, वैसे ही नटपद रामादि पात्रों की अवस्था का आरोप कर दिया जाता है। इससे स्पष्ट है कि एक ही अर्थ में नाट्य, रूप तथा रूपक इन तीन शब्दों का प्रयोग किया

---

४. काव्यानुशासन, अष्टम् अध्याय ''पाठ्य नाटकप्रकरणनाटिकासमवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्कप्रहसनभाणवीथीसट्टकादि।''

५. नाट्यदर्पण, चतुर्वर्गफला नित्य जैनी वाचमुपास्महे।
रूपर्द्वादशभिर्विश्वं यया न्याय्ये धृतं पथि।।

६. साहि० ६.३ नाटकमथ प्रकरण भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।

७. साहि० ६.४, ५, ६ नाटिका त्रोटक गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च।।
अष्टादश प्राहुरूपकाणि मनीषिणः।
विना विशेष सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम्।।

८. अभिनवभारती, १८ अध्याय 'नृपती नामेव नाटकन्नाम तच्चेष्टितं प्रह्वीभावदायक भवति।

९ नाट्यदर्पण 'अभिनवगुप्तस्तु नमनार्थस्यापि नटेर्नाटक शब्दं व्युत्पादयति, तत्र तु घटादित्वेन ह्रस्वाभावश्चिन्त्यः।'

१० नाट्यदर्पण, पृष्ठ २५ ''नाटकमिति नाटयति विचित्रं रञ्जनाप्रवेशेन सभ्याना हृदय नर्तयति इति नाटकम्।''

जाता है।

सम्पूर्ण त्रैलोक्यभावो का अनुकरण नाट्य है।[11] धनञ्जय ने भी दशरूपक के प्रारम्भ मे 'अवस्था का अनुकरण नाट्य है' बताया है।[12] नाट्यदर्पणकार ने नाटक का निम्नस्वरूप प्रस्तुत किया है –

ख्याताद्यराजचरितं धर्मकामार्थसत्फलम्।
साङ्कोपायदशासन्धि, दिव्याङ्गं तत्र नाटकम्।

नाटक मे प्रसिद्ध भूतकालीन नेता के चरित्र का वर्णन रहता है। वर्तमान चरित्रों का अभिनय नाटक-लक्षण के विरुद्ध है। नाटक की रचना प्रसिद्ध चरित्रो के आधार पर होती है। वर्तमान चरित्र इस श्रेणी में नही आते है। अतएव वर्तमान चरित्रों का अभिनय करना सगत नहीं है। पुनश्च नाटक का नेता वर्तमान होने पर तत्त्कालप्रसिद्धि की बाधा से रसहानि हो सकती है और पूर्वमहापुरुषों के चरितो मे अश्रद्धा भी।[13]

सामान्यतया कर्मों का फल तत्काल ही नही मिल जाता है, कुछ समय के बाद ही फल-प्राप्ति सम्भव है। वर्तमान के अभिनय मे यदि धर्म आदि कर्मों का फल उसी समय दिखलाया जाय तो अभिनय व्यर्थ है।[14]

भरतमुनि के सिद्धान्त तथा नाटककारों के व्यवहार दोनो के अनुसार नाटकों में धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित एवं धीरप्रशान्त इन चारो प्रकार के नायको का चित्रण किया जा सकता है। नाटक की नायिका दिव्या भी हो सकती है क्योंकि प्रधान मानवरूप नायक के चरित्र में उसके चरित्र का अन्तर्भाव हो जाता है। नाटक का चरित

११ भरतनाट्यशास्त्र, १.१०४ 'त्रैलोकस्यास्य सर्वस्य नाट्यभावानुकीर्तनम्।

१२. दशरूपक प्रथम प्रकाश, 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्।'

१३. नाट्यदर्पण पृष्ठ २५ 'वर्तमाने च नेतरि तत्कालप्रसिद्धि बाधया रसहानिः स्यात्, पूर्वमहापुरुष चरितेषु च अश्रद्धानं स्यात्।'

१४ दशरूपक – लक्षणयुक्तिविरोधात्। तत्र हि किञ्चित् प्रसिद्धचरितं, किञ्चिदुत्पाद्य चरितमिति वक्ष्यते। न च वर्तमानचरितनुकारो युक्तो, विनेमाना तत्र राग – द्वेषमध्यस्थतादीना तन्मयीभावाभावे प्रीतेरभावेन व्युत्पत्तेरण्यभावात्। वर्तमानचरिते च धर्मादिकर्मफल सम्बन्धस्य प्रत्यक्षत्वे प्रयोगवैयर्थ्यम्। (अभिनवभारती, प्रथम अध्याय)।

कविबुद्धिकल्पित नही होना चाहिए, किन्तु किञ्चित् रञ्जक कल्पना कर लेने पर कोई दोष नही है। नाटक अंक, उपाय, दशा और संधियों से युक्त रहता है। मानव स्वाभावों के आधार पर ही नाट्य की रचना की जाती है। इसलिए लोग अपने-अपने कार्यों मे सलग्न रहते हुए भी अपने-अपने शिल्प, व्यवसाय आदि से सब कुछ नाट्य मे पा सकते है। इसलिए कामुक, विदग्ध, सेठ, विरागी एवं शूर आदि सभी नाटक मे आनन्द प्राप्त करते है। कथा आदि के द्वारा भी श्रोता गण आनन्दित होते है परन्तु अंक, उपाय, संधि आदि वैचित्र्य के अभाव के कारण कथा आदि उतने रञ्जक नहीं है, जितना कि नाट्य।

साहित्यदर्पण में नाटक का लक्षण इस प्रकार किया गया है –

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसंधिसमन्वितम्। विलासद्धर्यादिगुणवद्युल्कं नानाविभूतिभिः।।
सुःखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्। पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः पर्रिकीर्तिताः।।
प्रख्यातवशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्। दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः।।
एक एवं भवेदङ्गी श्रृङ्गारो वीर एव वा। अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुत।।
चत्वारः पञ्चवा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः। गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्।।
— साहि० ६.७ - ११।।

अर्थात् नाटक का वृत्त (कथा) ख्यात अर्थात् रामायणादि इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिए। जो कथा केवल कविकल्पित है, इतिहास सिद्ध नहीं वह नाटक नहीं हो सकती। नाटक में विलास समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन होना चाहिए। सुख और दुःख की उत्पत्ति दिखाई जाय और अनेक रसों से उसे पूर्ण होना चाहिए। इसमें पॉच से लेकर दस तक अंक होते है। पुराणादि प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान् कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष नाटक का नायक होता है। यहॉ 'धीरोदात्त' पद धीरोद्धत, धीरललितादिका भी उपलक्षण है। श्रृंगार या वीर इनमें कोई एक रस यहाँ प्रधान रहता है – अन्य सब रस अङ्गभूत रहते हैं। इसे निर्वहण सन्धि में अत्यन्त अद्भुत बनाना चाहिए। इसमें चार या पॉच पुरुष प्रधान कार्य के साधन में व्यापृत रहने चाहिए। और गौ के अग्र भाग के समान

इसकी रचना होनी चाहिए।

२. प्रकरण

नाट्यदर्पणकार के अनुसार 'प्रकरण' उसे कहते हैं, जहाँ नेता, फल वा आख्यान वस्तु व्यस्त रूप से या समस्तरूप से कल्पित होते है।[१५] इसका नाटक से मुख्य भेद कथावस्तु के स्वरूप के विषय में है। नाटक की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है, जबकि प्रकरण की कथावस्तु में कल्पना का प्राधान्य रहता है। नाटक और प्रकरण का द्वितीय भेद यह है कि नाटक राजचरित पर अवलम्बित होता है। इसके विपरीत प्रकरण वणिक्, विप्र अथवा सचिव के चरित्रों के आधार पर निर्मित होता है। पुनश्च नाटक में दिव्य पात्र भी नायक के सहायक के रूप में उपस्थित हो सकते है किन्तु प्रकरण में दिव्य पात्रों का प्रवेश नही हो सकता है। दिव्यपात्र सुखप्रधान होते है। जबकि प्रकरण के पात्र दुःखाद्य होते है। इसीलिए इसमे दिव्य पात्रों का प्रवेश उचित नहीं माना गया है।

सचिव धीरोदात्त नायक माना जाता है एवं विप्र तथा वणिक् धीरप्रशान्त कोटि में आते है। अतएव प्रकरण का नायक धीरोदात्त भी हो सकता है एवं धीरप्रशान्त भी।[१६] प्रकरण में कञ्चुकी प्रभृति भृत्यवर्ग पात्रों का निबन्धन नहीं किया जाता है क्योंकि इसमे राजवर्ग का अभाव रहता है। कञ्चुकी के स्थान पर दास, अमात्य के स्थान पर श्रेष्ठी एवं विदूषक के स्थान पर विट का निबन्धन रहता है। इसमें दुःख दीप्त रहता है।[१७] नायक, वस्तु व फल के कल्पित एवं अकल्पित होने से प्रकरण के सात भेद होते है –

१. नायक कल्पित होता है, शेष दो अकल्पित होते है।

२. फल कल्पित होता है, शेष दो अकल्पित होते है।

---

१५. नाट्यदर्पण 'प्रकर्षेण क्रियते कल्प्यते नेता फल वस्तु वा व्यस्त-समस्ततयाऽत्रेति प्रकरणम्।'

१६ नाट्यदर्पण 'अयं वणिग् – विर्पयोमर्हध्यपात्यपि धीरोदात्त –धीरप्रशान्तौ प्रकरणे नेतारौं भवतः।

१७ नाट्यदर्पण, प्रकरणं वणिग् विप्र-सचिव-स्वाम्यसंकरात्।
मन्दगोत्राङ्गनं दिव्यानाश्रितं मध्यचेष्टितम्।।
दासश्रेष्ठि-विटैर्युक्तं, क्लेशाढ्यं......।

३. कथावस्तु कल्पित होती है, अन्य दो अकल्पित होते है।

४. नायक और फल कल्पित होते है, कथावस्तु अकल्पित होती है।

५. नायक और वस्तु कल्पित होते है, फल अकल्पित होता है।

६. फल और वस्तु कल्पित होते है, नायक अकल्पित होता है।

७. नायक, वस्तु और फल सभी कल्पित होते है।

इसमें गार्हस्थ्योचित् पुरुषार्थसाधक वृत्त में कुलजा स्त्री को नायिका के रूप में चित्रित किया जाता है। इसके विपरीत जहॉ गार्हस्थ्य धर्मोचित पुरुषार्थ का वर्णन न हो वहाँ वेश्या को नायिका के रूप में चित्रित किया जाता है। यदि नायक 'विट' हो तो कुलजा एवं वेश्या दोनो ही का नायिका के रूप मे निबन्धन हो सकता है। परन्तु प्रधानता वेश्या की ही होती है।

उक्त प्रकार का प्रकरण फल, अंक, उपाय, दशा, सधि, सन्ध्यङ्ग, प्रवेशक, विष्कम्भक, अङ्कावतार, अकमुख, चूलिका, वृत्तिभेद एवं रस आदि में नाटक के समान ही होता है। क्लेश का प्राचुर्य होने से इसमे कौशिकी वृत्ति की प्रधानता नही पायी जाती है।

प्रकरण में नायक के वृत्त के अनुसार ही सामाजिक व्युत्पाद्य होते है। इसमें, वणिक्, अमात्य एवं विप्र आदि के उचित धर्म, अर्थ एवं कामरूप त्रिवर्ग की प्राप्ति, इसको प्राप्त करने के लिए अपेक्षित स्थिरता एवं धैर्य आदि आपत्ति काल मे मूढ़ता, कुलस्त्रियों का आचार, वेश्याओं के भली प्रकार सम्भोग का चातुर्य, हृदय में वश करने के प्रयोग, नायक-नायिकाओं को परस्पर अपराग के कारण, चतुर नायक तथा उत्तम, मध्यम एवं अधम प्रकृति की नायिकाओं के स्वरूप का और सामादि उपायों के प्रयोग का उपदेश सामाजिकों को दिया जाता है।

३. भाण

नाट्यदर्पण के अनुसार 'भाण' रूपक में आकाशोक्ति से नायक अपने

या दूसरे के वृत्त को कहता है – 'भण्यते व्यामोक्त्या नामकेन स्वपरवृत्तं प्रकाश्यतेऽत्रेति भाणः।'' आत्मभूतशसी एव परसश्रय वर्णन इसके दो भेद है। 'विट' के अतिरिक्त इसमें दूसरा पात्र नही होता है, अतएव उक्ति-प्रत्युक्ति, सम्बोधन एवं श्रृगार रस-सूचक सौभाग्य आदि का सन्निवेश इसमे आकाशभाषित से किया जाता है। विट, धूर्त और वेश्या आदि के वृत्त से युक्त यह रूपक साधारण लोगों के मनोरंजन का कारण होता है। इसमें शौर्य और सौभाग्य के वर्णन की अधिकता रहती है। अतएव वीर एव श्रृंगार रस का प्राधान्य होना स्वाभाविक ही है। कहीं-कहीं हास्य रस का भी सन्निवेश कर दिया जाता है। गेयपद, स्थित पाठ्य, पुष्पगण्डिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ, सैन्धव नामक द्विगूटक, उत्तमोत्तमक, उक्त और प्रयुक्त इन दश लास्याङ्गो का भी प्रयोग इसमें किया जाता है। केवल एक विट ही वेश्या आदि अथवा अपने चरित को आकाशोक्ति के द्वारा, अगविकारों के द्वारा सामाजिक को अवगत कराता है।[१८] अतएव वर्णन की अधिकता होने के कारण भारतीवृत्ति की प्रधानता रहती है। वीर एव श्रृंगार रस की प्रधानता होने पर भी वाचिक अभिनय की ही प्रधानता रहती है, सात्विक और आङ्गिक अभिनयों की नहीं है। क्योकि इसमे आकाशोक्ति से ही वृत्त का कथन होता है। भाव प्रकाशनकार के मतानुसार भाण में केवल श्रृंगार रस का होना आवश्यक है। इनके अनुसार इसमे अन्य रस का निबन्धन नहीं होना चाहिए। भाषा और कथावस्तु के माध्यम से इसके नौ भेद किए गए है –

१. शुद्ध उद्धत

२. शुद्ध ललित

३. शुद्ध ललितोद्धत

४. संकीर्ण उद्धत

५. संकीर्ण ललित

६. संकीर्ण ललितोद्धत

७. चित्र उद्धत

---

१८. भावप्रकाश – नवम अधिकार

८. चित्र ललित

९. चित्र ललितोद्धत

साहित्यदर्पण[19] में भाण का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि धूर्तों के चरित से मुक्त अनेक अवस्थाओं से व्याप्त और एक ही अंक का भाण होता है। इसमें अकेला विट – जो निपुण और पण्डित होता है – रङ्ग में अपनी अनुभूत या औरो की अनुभूत बातो को प्रकाशित करता है। सम्बोधन और उक्ति प्रत्युक्ति 'आकाशभाषित' के द्वारा होती है। सौभाग्य और शौर्य के वर्णन मे वीर और श्रृगार रस का सूचन किया जाता है। यहॉ कथा कल्पित होती है और वृत्ति प्रायः भारती होती है। इसमे मुख और निर्वहण सन्धियॉ होती है तथा दसो लास्याङ्ग होते है।

४. व्यायोग

इसमे कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है। स्त्रियॉ थोड़ी होती है। गर्भ और विमर्श सन्धियो से हीन तथा बहुत पुरुषो पर आश्रित होता है। इसमे अङ्क एक ही होता है और युद्ध स्त्री के कारण नहीं होता। कैशिकी वृत्ति इसमें नही होती। दूसरा नायक प्रख्यात धीरोद्धत राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष होता है। हास्य, श्रृंगार, शात इनसे अन्य कोई रस यहॉ प्रधान होता है।[20]

५. समवकार

'समकीर्यन्ते बहवोऽर्था आस्मिन्निति समकारः' अथवा 'समवकीर्यन्ते कविभिर्निबन्ध्यन्ते इति समवकारः' अथवा 'सङ्गतैरवकीर्णैश्चार्थैः त्रिवर्गोपायैः पूर्वप्रसिद्धैरेव क्रियते निवध्यते इति समवकारः'। अर्थात् जिसमें अनेक प्रयोजन सम्यग्तया निबद्ध किए

१९. साहि० ६.२२७ – २३० ''भाणः स्याद् धूर्तचरितोनानावस्थान्तरात्मकः।।
एकाङ्क एव एवात्र निपुणः पण्डितो विटः।
रगे प्रकाशयेत्स्वेनानुभूतमितरेण वा।।
संबोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः।
सूचयेद्वीरश्रृगारौ शौर्यसौभाग्यवर्णनैः।।
तत्रेतिवृत्तमुत्पाद्यं वृत्तिः प्रायेण भारती।
मुखनिर्वहणे संघी लास्यागानि दशापि च।।

२० साहि० ६.२३४ – २४०

जाते है, वह समवकार है।

देवासुर सम्बन्धी पुराणेतिहासादि ख्यात वृत्त विमर्श नामक चतुर्थ वृत्ति को छोड़कर अन्य चार सन्धियाँ, तीन अंक, प्रथम अक में मुख, प्रतिमुख, द्वितीय अंक मे गर्भ सन्धि और तृतीय अक मे निर्वहण सन्धि का प्रयोग, धीरोदात्त स्वरूप प्रख्यात दिव्यादिव्य (देव मानव) द्वादश नायक और द्वादश नायकों मे प्रत्येक का फल पृथक्-पृथक् हो तो समवकार होता है। वीर रस प्रधान समवकार मे कैशिकी वृत्ति का स्वल्प प्रयोग एव अन्य वृत्तियों का प्रचुर प्रयोग, बिन्दु, प्रवेशक विहीन, वीथी के तेरह अंगो की योजना, षडक्षरा गायत्री, सप्ताक्षरा उष्णिक छन्दों का प्रारम्भ में प्रयोग, धर्म, अर्थ एवं काम त्रिविध श्रृंगार, स्वाभाविक, कृत्रिम (क्रियया निर्वृत्तः) और दैवज (दैवाज्ञातः) त्रिविध कपट एवं अचेतन, चेतन और चेतना चेतन त्रिविध विद्रव युक्त समवकार के प्रथम अङ्क की घटना बारह नाड़ी में, द्वितीय अक की घटना चार नाड़ी मे और तृतीय अंक की घटना दो नाड़ी में घटित होनी चाहिए।

६. डिम

डिम शब्द का अर्थ है – डिम्ब या विप्लव। डिम धातु के संघातार्थक होने से विप्लवादि प्रधान रूपक को 'डिम' की संज्ञा प्रदान की जाती है।[२१] रामचन्द्र गुणचन्द्र का डिम-लक्षण नाट्यशास्त्र के ही लक्षण के समान है। इनके अनुसार डिम का लक्षण इतिवृत्त पूर्वप्रसिद्ध होता है। यह शान्त, हास्य एवं श्रृंगार रस से रहित, विमर्श सन्धिविहीन शेष रसों और अन्य सन्धियों से युक्त रहता है। इसमे रौद्र रस का निबन्धन अङ्गीरूप मे होता है। चार दिन की घटना का वर्णन होने से इसमें चार अक ही पाये जाते है। प्रत्येक अंक में एक-एक सन्धियों का नियोजन रहता है। इस रूपक मे प्रथम अंक के पात्रों द्वारा ही द्वितीय अंक का प्रारम्भ होना चाहिए। इसमे विष्कम्भक एव प्रवेशक आदि अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग नही करना चाहिए। किन्तु युद्धादि के वर्णन मे चूलिका तथा अङ्कमुख इन दोनो अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग होता है।

डिम का नायक धीरोद्धत होता है। चार अंक वाले इस रूपक के

२१. नाट्यदर्पण – 'डिमो डिम्बो विप्लव इत्यर्थः, तद्योगादयं डिमः, डिमेः सङ्घातार्थत्वादिति।

प्रत्येक अंक में चार-चार नायक होने से कुल मिलाकर सोलह नायक माने गए हैं। इन समस्त नायकों के विभाव, अनुभाव एवं फल आदि का पृथक्-पृथक् ही वर्णन करना चाहिए। संग्राम आदि का वर्णन होने से डिम में उल्कापात, बज्रपात, सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण आदि का वर्णन रहता है।

७. ईहामृग

जिसमें मृग के समान केवल स्त्री के लिए ईहा (चेष्टा) होती है, वह ईहामृग कहलाता है – 'ईहा चेष्टा मृगस्येव स्त्रीमात्रार्थात्रेतीहामृगः।'[२२] इसमें स्त्री-निमित्तक चेष्टा का वर्णन किया जाता है एवं कथावस्तु प्रख्यात या कविकल्पित होती है। नायक दिव्यकोटि का होता है। यह दृप्त मानव पात्रों से भी युक्त रहता है। कवि आख्यानवस्तु के अनुसार अंकों की संख्या रखने में स्वतन्त्र है। एक दिन की घटना होने पर एक अंक, चार दिन की घटना का वर्णन होने पर चार अंक का नियोजन किया जाता है।[२३] किन्तु चार अंक होने पर उनकी कथा परस्पर सम्बद्ध होनी चाहिए, समवकार के समान असम्बद्ध नहीं। दिव्य नायक की स्त्री की इच्छा न होते हुए भी, प्रतिनायक उसका अपहरण करता है। 'अतएव इसमें दिव्या स्त्री के हेतु संग्राम का वर्णन होता है। इसमें प्रायः बारह नायक होते हैं। इसमें वीर और रौद्र रस का निबन्धन अंगी रस के रूप में किया जाता है। श्रृंगार रस का निबन्धन न होने के कारण वृत्तियों में कैशिकी वृत्ति प्रयोज्य नहीं है। इस रूपक में केवल रत्याभास का ही प्रदर्शन होता है क्योंकि प्रतिनायक नायक की स्त्री में अनुरक्त रहता है। गर्भ और अवमर्श सन्धियों के अतिरिक्त अन्य सन्धियों का नियोजन रहता है। फलतः प्रारम्भ और प्रयत्न अवस्था के बाद ही फलागम का वर्णन कर दिया जाता है।[२४]

---

२२. नाट्यदर्पण।

२३. नाट्यदर्पण 'ईहामृगः सवीथ्यङ्ग, दिव्येशो दृप्तमानवः।
एकाङ्कश्चतुरङ्को वा ख्याताख्यातेतिवृत्तवान्।।
दिव्यस्त्रीहेतुसंग्रामः.....।

२४. नाट्यदर्पण 'व्याजेनात्र रणाभावः, वधासन्ने शरीरिणि।
व्यायोगोक्ता रसाः सन्धि-वृत्तयोऽनुचिता रतिः।।'

८. अंक

जिनकी सृष्टि अर्थात् जीवन उत्क्रमणोन्मुख है, इस प्रकार की शोकग्रस्त स्त्रियों को 'उत्सृष्टिका' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ऐसी स्त्रियों की चर्चा करने वाला रूपकभेद 'उत्सृष्टिकाङ्क' कहलाता है।[२५] कोई मर्त्यपुरुष ही इसका नायक हुआ करता है।[२६] दुःखात्मक करुणरस का प्राधान्य होने के कारण इसमें दिव्य नायक नहीं होते हैं। क्योंकि दिव्यजनो के सुखप्रधान होने से उनके साथ दुःखात्मक करुणरस का सम्बन्ध नहीं होता है। इसके युद्ध का वृत्त प्रसिद्ध होता है, जो सम्भवतः महाभारत आदि से उद्धृत रहता है। धनञ्जय के अनुसार इसकी कथावस्तु तो प्रख्यात ही होती है किन्तु कवि अपनी कल्पना से उसको विस्तृत कर देता है।[२७] ख्यात युद्ध का वृत्त होने से इसमें बध एव बन्ध आदि के कारण इष्टवियोग आदि की प्रचुरता रहती है। अतएव करुण रस की भी प्रधानता स्वाभाविक ही है। शौर्यादि मद से अवलिप्त पात्रों द्वारा वाक्-युद्ध होता है जिनमें परस्पर एक दूसरे के दोषों का वर्णन होता है इसीलिए भारती वृत्ति की भी प्रधानता रहती है। इसमें भूमि-निपातन शिरस्ताडन एवं स्वकेशत्रोटन आदि नाना प्रकार की चेष्टाओं का प्रदर्शन होता है। बध एव बन्ध आदि के ही कारण स्त्रियों के दैवोपालम्भ, आत्मनिन्दा आदि पूर्ण परिदेवना का वर्णन रहता है। इसमें उत्तम और मध्यम पात्रों पर अनेक व्यसनो का पड़ना दिखाया जाता है। ये पात्र महाविपत्तियो में भी विषादरहित एवं स्थिर रहते हैं। अतएव आपत्ति में मनुष्य को घबड़ाना नहीं चाहिए एवं अपने चित्त को स्थिर रखना चाहिए; इस बात की शिक्षा देने के लिए स्त्रियों के विलापादि से पूर्ण कथा प्रस्तुत की जाती है।

एक दिन की घटना का वर्णन होने से इसमे एक ही अङ्क होता है। इसमे मुख और निर्वहण इन्हीं दो संधियों का नियोजन रहता है। दो ही सन्धियों का वर्णन होने से आरम्भ व्यवस्था के बाद फलागम का ही प्रदर्शन होता है।

---

२५. नाट्यदर्पण 'उत्क्रमणोन्मुखा सृष्टिर्जीवितं याषा ता उत्सृष्टिकाः शोचन्त्यः स्त्रियस्ताभिरङ्कितत्वादुत्सृष्टिकाङ्कः।

२६. नाट्यदर्पण 'उत्सृष्टिकाङ्कः पुस्वामी.....।

२७. दशरूपक, तृ०प्र० उत्सृष्टिकाङ्के प्रख्यातं वृत्तं बुद्ध्या प्रपञ्चयेत्।

६. वीथी

वक्रोत्ति मार्ग से जाने से वीथी के समान होने के कारण यह 'वीथी' है।[२८] यह रूपक भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसमें संध्यङ्गों की पंक्ति रहती है अतएव इस रूपक को 'वीथी' की संज्ञा प्रदान की जाती है। नाट्यदर्पणकार के अनुसार इसमें उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकृति के नायक होते है। शंकुक अधम प्रकृति को नायक मानने के पक्ष में नहीं है। किन्तु इनका यह मत युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि एक ओर तो वे कहते है कि अधम प्रकृति का नायक नहीं होना चाहिए एवं दूसरी ओर भाण एवं प्रहसन आदि में अधम प्रकृति के विट आदि को ही नायक बनाने का विधान करते है। अतएव वीथी मे, जो अधम प्रकृति को भी नायक होने की बात कही गई है, तर्कसंगत है।

इसमें एकदिवसप्रयोज्यवृत्त का प्रदर्शन होने से एक अंक होता है। कवि स्वेच्छा से एक या दो पात्रों का प्रयोग कर सकता है। इसमें जब एक पात्र का प्रयोग किया जाता है तब वह आकाशभाषित समन्वित होता है। जब दो पात्रों का प्रयोग किया जाता है, तब कथोपकथन, उक्ति-प्रत्युक्ति में एक विचित्रता होती है। मुख और निर्वहण इन्हीं दो संधियों का नियोजन रहता है। फलतः आरम्भ अवस्था के बाद फलागम का ही प्रदर्शन होता है। श्रृङ्गार एवं हास्य का अल्पमात्रा में निबन्धन होने से कैशिकी वृत्ति का भी अभाव रहता है।

पूर्वोक्त रूपक के समस्त भेदों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते है – प्रमुख तथा गौण। इन्हें हम क्रमशः पूर्ण निदर्शन तथा अपूर्ण निदर्शन की भी संज्ञा प्रदान कर सकते है। रूपको का विभाजन एक अन्य दृष्टि से भी किया जा सकता है। इस दृष्टि से रूपक को पुनः दो भागों में विभक्त कर सकते है – शौर्यपूर्ण एव सामाजिक। इनमें नाटक और प्रकरण मुख्य हैं। नाटिका, समवकार, डिम, व्यायोग, अङ्क तथा ईहामृग की गणना शौर्यप्रधान नाटक की अपेक्षा निम्नकोटि में होती है। प्रकरणी, प्रहसन, भाण तथा वीथी में सामाजिक प्रवृत्ति का उतना विकास नहीं होता है जितना प्रकरण में। शौर्यपूर्ण रूपक मे देवता एवं उनके कार्य-कलापों का चित्रण किया

२८. नाट्यदर्पण....वक्रोक्तिमार्गेण गमनाद् वीथीव वीथी।

जाता है। इसके विपरीत सामाजिक वर्ग में सामान्यजन एव उनके कार्यों का प्रदर्शन होता है।

१०. प्रहसन

प्रहसन का विषय केवल हास्य ही होता है। इस रूपक के द्वारा हास्य प्रदर्शित करके मूर्खों और स्त्रियों की नाट्य के विषय में अभिरुचि उत्पन्न की जाती है। प्रहसन के द्वारा पाखण्डी आदि के चरित को जानकार उनसे विमुख पुरुष फिर इन बञ्चकों के निकट नहीं आते। पात्रों के चित्रण के आधार पर नाट्यशास्त्र मे प्रहसन के दो भेद गिनाए गये है – शुद्ध प्रहसन में भगवत, तापस एवं विप्र आदि का चरित्र-चित्रण किया जाता है। प्रकीर्ण प्रहसन मे विभिन्न प्रकार के चरित्रों का चित्रण पाया जाता है।[२९] नाट्यदर्पणकार[३०] ने भी प्रहसन के दो भेद माने है – शुद्ध और संकीर्ण। शुद्ध प्रहसन में निन्द्य, पाखण्डी अथवा जातिमात्रोपजीवी ब्राह्मण आदि किसी एक का – अश्लीलता और ब्रीडाकारिता आदि से रहित वृत्त होता है – वर्णन रहता है एवं परिहास प्रधान वचनो का बाहुल्य रहता है। संकीर्ण प्रहसन में बहुत से चरित्रों का मिश्रण रहता है। इसमें स्वैरिणी, दास, वेश्या, शम्भली, धूर्त, वृद्ध, पाखण्डी, विप्र, भुजग एवं भट आदि पात्र विकृत वेष में आते है और विकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इन पात्रों का आचार भी विकृत होता है। प्रहसन में हास्य रस का प्राधान्य होने से लास्याङ्ग का अल्प प्रयोग ही होता है। श्रृंगार रस का निबन्धन न होने से इसमें कैशिकी वृत्ति का भी प्रयोग नहीं किया जाता है। इसमें केवल भारती वृत्ति ही प्रयुक्त होती है। भाषा के समान ही इसमें भी मुख और निर्वहण इन्हीं दो संधियों का प्रयोग किया जाता है।[३१]

---

२९ नाट्यशास्त्र – एकविंश अध्याय

३०. नाट्यदर्पण – निन्द्य-पाखण्डि-विप्रादेः अश्लीलासभ्यवर्जितम्।
परिहासवचः प्रायं शुद्धमेकस्य चेष्टितम्।।
सकीर्णमुद्धताकल्प-भाषाऽऽचार-परिच्छदम्।
बहूनां बन्धकी-चेट-वेश्याऽऽदीनां विचेष्टितम्।।'

३१. नाट्यदर्पण– हास्याङ्गि भाणसन्ध्यङ्ग-वृत्तिः।
हास्यरसप्रधान्येऽपि अत्र न कैशिकी वृत्तिः।
भारतीवृत्तिश्च्या निबन्धनीया।

प्रमुख नाट्यशास्त्रीय मान्यताएँ

विश्वनाथ कृत 'साहित्यदर्पण' एवं धनञ्जय कृत 'दशरुपक' प्रभृति ग्रन्थों में नाट्यशास्त्रीय मान्यताओं का विशद विवेचन किया गया है। सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है – वस्तु नेता और रस। 'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः।'[१] इसमें वस्तु का वर्णन विशेष महत्त्व रखता है। वस्तु को कथा, कथावस्तु, इतिवृत्त आदि नाम से अभिहित जाता है।

वस्तु के दो भेद वस्तु या कथावस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है –१. आधिकारिक, २. प्रासङ्गिक

'तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः।'[२]

इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्प्यते। आधिकारिकमेक स्यात्प्रासङ्गिकमथापराम्।।[३]

अर्थात् आधिकारिक वह कथावस्तु है जो मुख्य कथा होती है। अधिकार का अर्थ है – फल का स्वामित्व। अतः जो फल का स्वामी होता है अर्थात् नायक होता है, उससे सम्बद्ध कथानक आधिकारिक होता है। जैसे – मृच्छकटिक में चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रेम की कथा आधिकारिक (मुख्य) है।

१. दश० १.११।।

२. दश० १.११।।

३. सा० द० ६.४२।।

प्रासगिक वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। जैसे मृच्छकटिक में राजा पालक और आर्यक की कथा प्रासङ्गिक है। प्रासङ्गिक कथा के भी दो भेद है – १. पताका, २. प्रकरी। पताका उस कथा को कहते है जो नाटक में दूर तक चलती जाती है। इसका नायक दूसरा व्यक्ति होता है। वह मुख्य नायक का साथी होता है और गुणो मे उससे न्यून होता है। उसके कार्य का उद्देश्य कोई स्वतंत्र फल नहीं होता है। यथा – रामायण में सुग्रीव की कथा। छोटे-छोटे प्रसगों या कथानकों को प्रकरी कहते है। जैसे – रामायण में शबरी आदि की कथाएँ।[४]

सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है – १. प्रख्यात – जो इतिहास पर अवलम्बित हो। २. उत्पाद्य – कवि द्वारा कल्पित होता है यथा – शूद्रक का मृच्छकटिक ३. मिश्र– इसमें कुछ अंश इतिहास पर अवलम्बित होता है और अधिक अंश कविकल्पित होता है।[५]

पाँच अर्थप्रकृतियॉ — अर्थप्रकृतियॉ नाटकीय कथावस्तु के पॉच तत्त्व है। धनञ्जय और विश्वनाथ ने अर्थप्रकृति का अर्थ किया है – **प्रयोजनसिद्धिहेतवः** – जो प्रयोजन की सिद्धि में कारण हों। अर्थप्रकृतियाँ पाँच हैं

---

४. दश० १.१३ — 'सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।।
साoदo ६.६७, ६८ — ''व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्त पताकेत्यभिधीयते।
पताकानायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम्।।
गर्भे सधौ विमर्शे वा निर्वाहस्तस्य जायते।
प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता।।''

५ दश० १.१५, १६ — 'प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।
प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम्।।
मिश्र च सङ्करात्ताभ्या दिव्यमर्त्यादिभेदतः।
कार्य त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च।।''

– १.बीच, २. बिन्दु, ३.पताका, ४. प्रकरी, ५. कार्य। बीज – वह तत्त्व है जो वृक्ष के बीज की तरह प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही अनेक प्रकार से विस्तार हो। यह नायक के मुख्य फल का प्रमुख कारण होता है।[६] मृच्छकटिक के प्रथम अंक में शकार की इस उक्ति – ''एषा गर्भदासी कामदेवायतनात् प्रभृति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता' से वसन्तसेना का चारुदत्त के प्रति अनुराग प्रकट होता है। यही इस प्रकरण की कथावस्तु का बीज है। विन्दु – अवान्तर कथा में मूल कथा के टूट जाने पर जो उसे जोड़ता है और आगे बढ़ाता है, उसे बिन्दु कहते हैं।[७] मृच्छकटिक के द्वितीय अंक मे द्यूतकारों के वर्णन से मूलकथा विच्छिन्न होने लगती है : किन्तु कर्णपूरक से चारुदत्त का प्रावारक पाकर वसन्तसेना प्रसन्न होती है और मूल कथा का तांता जुड़ जाता है, यहाँ कर्णपूरक सम्बन्धी घटना बिन्दु है। पताका – वह प्रासङ्गिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है शर्विलक का वृत्त मूल कथा की पताका है। प्रकरी – वह प्रासङ्गिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती है भिक्षुक का वृत्तान्त प्रकरी है। कार्य – इसका अर्थ फल है। जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है जो साध्य होता है वह कार्य है। जैसे – रामायण में रावण का वध एवं चारुदत्त का वसन्तसेना को वधू रूप में स्वीकार करना मृच्छकटिक की कथावस्तु का कार्य है। यह फल धर्म, अर्थ, काम में से कोई भी हो सकता

---

६ दश० १.१७; सा०द० ६.६५, ६६।।

७. दश० १.१७ — स्वल्पोछिष्टस्तु तद्धेतुर्बीज विस्तार्यनेकधा।
अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।।

सा०द० ६.६६ — फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते।
अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।।

है। इसको ही मुख्य प्रयोजन, लक्ष्य आदि कहते हैं।[८]

पाँच अवस्थाएँ – नाटक में जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है उसकी प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाऍं कहते हैं। ये अवस्थाएँ उसकी गतिविधि को सूचित करती है। ये पॉच अवस्थाऍं है – १. आरम्भ, २. यत्न, ३. प्राप्त्याशा, ४.नियताप्ति, ५. फलागम।[९] **आरम्भ** – मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते है।[१०] मृच्छकटिक के प्रथम अक में 'आश्चर्य! जातीकुसुमवासितः प्रावारकः – 'मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य' इत्यादि से वसन्तसेना की उत्कृष्टता प्रकट होती है तथा - प्रविश गृहमिति प्रतोद्यमाना न चलति भाग्यकृतां दशामवेक्ष्य इत्यादि में चारुदत्त का औत्सुक्य प्रकट होता है। अतः यहाँ कार्य की आरम्भावस्था है। **यत्न** – फल की प्राप्ति के लिए नायक बड़े वेग से जो प्रयत्न करता है, उसे यत्न कहते हैं।[११] मृच्छकटिक में अलंकार न्यास से लेकर पञ्चम अङ्क के अन्त तक प्रयत्नावस्था है। **प्राप्त्याशा** जब अनुकूल परिस्थितियों

---

८ दश० १.१६
सा० द० ६.६६, ७० ''प्रकरीनायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम्।
अपेक्षित तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनः।।
समापनं तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति संमतम्।
अवस्थाः पञ्ज कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।।

९. दश० १.१६ 'अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्राख्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।।
सा० द० ६.७०, ७१ – आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।
भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये।।७१।।

१०. दश० १. २०
सा०द० ६.७१।। औत्सुक्यमात्रामारम्भः फललाभाय भूयसे।
प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।।

११. दश० १.२०
सा०द० ६.७२ प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।
उपायापायशकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः।।

के कारण फल प्राप्ति की सम्भावना होती है और विघ्नो के कारण वह असम्भव दीखती है, उस सन्दिग्ध अवस्था को प्रात्याश कहते है।[12] मृच्छकटिक में पष्ठ अक से लेकर दशम अङ्क मे वसन्तसेना की इस – आर्या एषा अहं मन्दभागिनी यस्याः कारणादेष व्यापाद्यते। उक्ति पर्यन्त प्रात्याशा नामक कार्यावस्था है। इसमें फल प्राप्ति के प्रति आशा और निराशा बनी रहती है। **नियताप्ति** – जब विघ्नों के हट जाने के कारण फल की प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है, उस अवस्था को नियताप्ति कहते है।[13] मृच्छकटिक के दशम अङ्क में 'का पुनस्त्वरति मेषांसपतता चिकुरभारेण' चाण्डाल की इस उक्ति से वसन्तसेना के आगमन की सूचना मिलती है तथा चारुदत्त की प्राणरक्षा होती है। फिर पालक के मारे जाने पर शकार भी शरण में आ जाता है और चारुदत्त धूता को अग्नि में कूदने से बचा लेता है। इस प्रकार समस्त विघ्न दूर होकर फलप्राप्ति का निश्चय हो जाता है। **फलागम** – जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है, उस अवस्था को फलागम कहते हैं।[14] जब शर्विलक यह घोषणा करता है कि राजा आर्यक वसन्तसेना को वधू पद से सुशोभित करते है यही फलागम की अवस्था है।

पाँच सन्धियाँ पॉचो अर्थप्रकृतियों को पॉचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती है, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये क्रमशः अर्थप्रकृति से अवस्था का

---

१२. दश० १.२१
सा०द० ६.७२ — उपायापायशङ्काभ्यां प्रात्याशा प्राप्तिसंभवः।
अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।।

१३. दश० १.२१;
सा० द० ६.७३ — अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता।
सावस्था फलयोगः स्याद्यः समग्रफलोदयः।।

१४. दश० १.२२
सा०द० ६.७३।। — समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः।
अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्था समन्वितः।।

सम्बन्ध करती है। सन्धियाँ पाँच है – १. मुख, २. प्रतिमुख, ३. गर्भ, ४. विमर्श, ५. उपसहृति या निर्वहण।[१५] **मुख** – बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख सन्धि होती है। मृच्छकटिक के प्रथम अंक में 'चतुरो मधुरश्चायमुपन्यासः' वसन्तसेना के इस स्वगत कथन पर्यन्त मुखसन्धि है। **प्रतिमुख** – बिन्दु और यत्न को मिलाकर प्रतिमुख सन्धि मृच्छकटिक के प्रथम अक में 'यद्येवमहमार्यस्यानुग्राह्या' वसन्तसेना की इस उक्ति से लेकर पञ्चम अंक के अन्त तक प्रतिमुख सन्धि है। **गर्भ** – पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर गर्भ-सन्धि। जहाँ पताका न हो, वहाँ पर प्राप्त्याशा पर ही अवलम्बित रहती है मृच्छकटिक के षष्ठ अंक के आरम्भ में दशम अक में चाण्डाल के हाथ से खड्ग छूट जाने के पश्चात् वसन्तसेना के 'आर्या एषा अह मन्दभागिनी' इत्यादि कथन तक गर्भसन्धि है। **विमर्श** – प्रकरी और नियताप्ति को विमर्श-सन्धि। इसको ही विमर्श और अवमर्श भी कहते है। जहाँ प्रकरी न हो वहाँ नियताप्ति पर ही निर्भर रहती है। दशम अंक में 'त्वरित का पुनरेषा' इत्यादि चाण्डाल की उक्ति से लेकर 'आश्चर्य! पुनरुज्जीवितोऽस्मि' – शकार की इस उक्ति तक विमर्श सन्धि है। **उपसंहृति** कार्य और फलागम को मिलाकर उपसंहृति - संधि। इसको ही निर्वहण-सन्धि भी कहते है। संधियो को कथा का स्थूल भाग कहा जा सकता है। इसके आधार पर ही नाटक का विभाजन किया जाता है।[१६] मृच्छकटिक के दशम

---

१५. दश० १.२४ — मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।
मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।।

सा०द० ६.७५ — अन्तरैकार्थसंबन्धः संधिरेकान्वये सति।
मुंख प्रतिमुख गर्भो विमर्श उपसंहृतिः।।

१६ दश० १.२२, २३ — समग्रफलसपत्तिः फलयोगो यथोदितः।
अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्था समन्विताः।।
यथासख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च सधयः।
अन्तरैकार्थसबन्धः संधिरेकान्वये सति।।

सा०द० ६.७४ — यथासख्यमवस्थाभिराभिर्योगात्तु पञ्चभिः।
पञ्चधैवेतिवृत्तस्य भागाः स्युः, पञ्च संधयः।।

अक मे 'नेपथ्ये कलकलः' रो अन्त तक उपसंहृति सन्धि है।

मुख सन्धि में बीज की उत्पत्ति का वर्णन होता है। प्रतिमुख में बीज का कुछ प्रकट होना दिखाया जाता है। गर्भ में बीज का नष्ट होना और उसके लिए पुनः अन्वेषण का वर्णन होता है। विमर्श में गर्भ की अपेक्षा बीज अधिक प्रकट होता है, परन्तु शाप या क्रोध आदि के कारण उसमें विघ्न दिखाया जाता है। उपसंहृति में बिखरे हुए अर्थों को एकत्र किया जाता है और मुख्य फल का वर्णन होता है।[१७]

अर्थप्रकृतियो आदि को निम्नलिखित रूप में रखकर सरलता से समझा जा सकता है। प्रथम से प्रथम का, द्वितीय से द्वितीय का, इस प्रकार इनका सम्बन्ध है —

अर्थप्रकृतियाँ	अवस्थाएँ	सन्धियाँ
१. बीज	आरम्भ	मुख
२. बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
३. पताका	प्रात्याशा	गर्भ
४. प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
५. कार्य	फलागम	उपसंहृति

कथावस्तु के दो विभाग – रंगमंच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथावस्तु के दो विभाग किए गए हैं — १. सूच्य, २. दृश्यश्रव्य। **सूच्य** – कुछ वस्तुएं नीरस होती है या रंगमंच पर उनका प्रदर्शन उचित नहीं है। ऐसी वस्तुओं की केवल सूचना दे दी जाती है। **दृश्यश्रव्य** – जो वस्तुएँ वस्तुतः दर्शनीय

१७ दश० १.२४, ३०, ३६, ४३, ४८; सा०द० ६.७५-८१।।

और श्रवणीय है, उनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं को जिन उपायों से सूचित किया जाता है, उन्हें अर्थोपक्षेपक (अर्थ-वस्तु, उपक्षेपक - सूचक) कहते है। वे पाँच हैं – १. विष्कम्भक – भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रो के द्वारा दी जाती हैं। इनकी भाषा संस्कृत होती है। २. प्रवेशक – भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रो के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा प्राकृत होती है। ३. चूलिका – पर्दे के पीछे बैठे हुए पात्रो के द्वारा वस्तु या घटना की सूचना देना। जैसे – नेपथ्य से कथन। ४. अंकास्य– अंक की समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा अगले अंक में आने वाली घटना की सूचना देना। ५. अंकावतार– अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।[१८]

कथावस्तु के तीन विभाग – कथावस्तु को सुनने या सुनाने की दृष्टि से तीन विभाग किए गए है – १. सर्वश्राव्य या प्रकाश – जो बात सबको

---

१८. दश० १.५६ - ६३,
साο दο ६.५४-६०

अर्थोपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भकप्रवेशकौ।
चूलिकाकावतारोऽथ स्यादकमुखमित्यपि।।
वृत्तवर्तिष्यमाणाना कथाशानां निदर्शकः।
साक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावकस्य दर्शितः।।
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्या सप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात्स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः।।
प्रवेशकोऽनुदातोक्तया नीचपात्रप्रयोजितः।
अकास्यान्तर्विज्ञेयः शेष विष्कम्भके यथा।।
अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका।
अङ्कान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः।।
यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः।
यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्कानां सूचनाखिला।।
तदङ्कमुखमित्याहुर्बीजार्थख्यापकं च तत्।
अङ्कान्तपात्रैर्वाङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।।

सुनाने के योग्य है। इसको ही प्रकाश भी कहते है। २. अश्राव्य या स्वगत – जो बात सुनाने के योग्य न हो और मन ही मन कही जाए। ३. नियतश्राव्य – जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग है (क) जनान्तिक – हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पायें। (ख) अपवारित– मुँह फेर कर किसी दूसरे पात्र की गुप्त बात कहना। इसके अतिरिक्त एक और भेद आकाशभाषित है जो ऊपर मुँह करके स्वयं ही अकेले बात करता है।[१६]

२. नेता

रूपकों का दूसरा भेदक नेता है। नेता शब्द के साथ नायक का सारा परिकर आ जाता है। नायिका, नायक के साथी, नायिका की सखियाँ आदि, प्रतिनायक और उसके साथी-सभी 'नेता' के अङ्ग माने जाते हैं। नाटकादि

---

१६ दश० १.६४-६७ सर्वेषा नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च।
सर्वश्राव्य प्रकाश स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम्।।
द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्माख्य जनान्तमपवारितम्।
त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्।
रहस्य कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम्।।
कि ब्रवीष्येवमित्यादि बिना पात्रं ब्रवीतियत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम्।।

सा०द० ६.१३७-१४० अश्राव्य खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।।
सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्तद् भवेदपवारितम्।
रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते।।
त्रिपताककरेणान्यान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रण यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम्।।
कि ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थ तत्स्यादाकाशभाषितम्।।

के इतिवृत्त का नायक वही बन सकता है, जिसमें विनीतत्वादि अनेक गुण[२०] विद्यमान हों। नायक को नाट्यशास्त्र मे चार प्रकार का माना है। यह प्रकार-भेद नायक की प्रकृति के आधार पर किया गया है। ये चारों प्रकार के नायक 'धीर' तो होते ही है, धीरत्व के अतिरिक्त इनमें अपनी-अपनी प्रकृतिगत विशेषता पाई जाती है। नायक का पहला प्रकार 'ललित' या धीरललित है; दूसरा 'शान्त' या धीरशान्त (धीरप्रशान्त), तीसरा 'उदात्त' या धीरोदात और चौथा 'उद्धत' या 'धीरोद्धत'।[२१] इनके उदाहरण क्रमशः वत्सराज उदयन, चारुदत्त, राम तथा भीमसेन दिये जा सकते है।

नायक का एक दूसरे ढग का वर्गीकरण भी किया जाता है। वह वर्गीकरण उसके प्रेमव्यापार एवं तत्सम्बन्धी व्यवहार के अनुरूप होता है। प्रेम की अवस्था में नायक के दक्षिण, शठ, धृष्ट तथा अनुकूल ये चार रूप देखे जा सकते है।[२२] ये रूप अपनी परिणीता पत्नी के प्रति किये गये उसके व्यवहार में पाये जाते है। दक्षिण नायक एक से अधिक प्रियाओं को एक ही तरह से प्यार करता है। रत्नावली नाटिका वत्सराज उदयन दक्षिण नायक है। शठ नायक अपनी ज्येष्ठा नायिका के साथ बुरा वर्ताब तो नहीं करता, पर उससे छिप-छिप कर दूसरी नायिकाओं से प्रेम करता है। धृष्ट नायक धोखेबाज है, वह ज्येष्ठा नायिका की पर्वाह नहीं करता, कभी-कभी खुलेआम भी दूसरी नायिका-कनिष्ठा से प्रेम करता है। एक

---

२०. दश० २.१, २ — नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुर्चिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।

२१. दश० २.३ — भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्।

२२ दश० २.७ — दक्षिणेऽस्यां सहृदयः गूढविप्रियकृच्छठः।
व्यक्ताङ्गवैकृतो धृष्टोऽनुकूलस्त्वेकनायिकः।।

ही नायक में भी तीनो अवस्थाएँ मिल सकती है। रत्नावली का उदयन वैसे कई स्थान पर दक्षिणरूप में, कई स्थान पर शठरूप में तथा कई स्थान पर धृष्टरूप में सामने आता है। फिर भी उसमें प्रधानता दक्षिणत्व की ही है। अनुकूल नायक सदा एक नायिका के प्रति आसक्त रहता है। उत्तररामचरित के रामचन्द्र अनुकूल नायक है, जो केवल सीता के प्रति आसक्त है।

नायक के अन्तर्गत आठ प्रकार के सात्त्विक गुणो की स्थिति होना आवश्यक है। ये गुण है – शोभा, विलास, माधुर्य, गाभीर्य, स्थैर्य, तेज, लालित्य तथा औदार्य।[२३]

नायक का शत्रु प्रतिनायक होता है। यह धीरोद्धत प्रकृति का होता है। जैसे महावीरचरित तथा वेणीसंहार में, रावण तथा दुर्योधन प्रतिनायक हैं। वे राम तथा युधिष्ठिर की फलप्राप्ति में बाधक होते हैं। नायक का साथी पताकानायक, पीठमर्द कहलाता है। यह बुद्धिमान होता है तथा नायक से कुछ ही गुणों में न्यून रहता है। पीठमर्द सदा नायक की सहायता करता है। रामायण का सुग्रीव, तथा मालतीमाधव का मकरन्द 'पीठमर्द' है। नायक के दूसरे सहायक भी होते है। नायक के राजा होने पर राज्यकार्य, तथा धर्मकार्य में उसके सहायक मन्त्री, सेनापति, पुरोहित आदि होते हैं। प्रेम के समय राजा या नायक के सहकारी विदूषक तथा विट होते हैं।[२४]

विदूषक संस्कृत नाटक का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। वैसे तो वह नाटक में हास्य तथा व्यग्य की रचना कर नाटकीय मनोरजन का साधन बनता है,

---

२३. दश० २.१० शोभा विलासो माधुर्य गाम्भीर्य स्थैर्यतेजसी।
ललितौदार्यमित्यष्टौ सात्त्विकाः पौरुषा गुणाः।।

२४. दश० २.८, ९।।

किन्तु उसका इससे भी अधिक गभीर कार्य है। वह राजा के अन्तःपुर का आलोचक भी बनकर आता है। कभी-कभी वह अपने संवाद में ऐसा संकेत करता है, जो उसकी तीक्ष्णबुद्धि का संकेत कर देता है, वैसे मोटे तौर पर वह पेटू तथा मूर्ख दिखाई पड़ता है। विदूषक ब्राह्मण जाति का होता है, उसकी वेशभूषा, चाल-ढाल, व्यवहार तथा बातचीत का ढंग हास्यजनक होता है। वह ठिगना, खल्वाट तथा दंतुल होता है। विदूषक प्राकृत भाषा का आश्रय लेता है। संस्कृत नाटको में वह मोदकप्रिय तथा अपने पेटूपन के लिये मशहूर है। विदूषक राजा (नायक) का विश्वासपात्र व्यक्ति होता है, जिसे राजा अपनी गुप्त प्रेम-मन्त्रणा तक बता देता है। वह कभी-कभी राजा के गुप्त प्रेम-व्यवहार में सहायक भी होता है। शकुन्तला का विदूषक तथा मृच्छकटिक का मैत्रेय इसके उदाहरण है। व्यंग्य, हास्य तथा आलोचक-प्रवृत्ति की दृष्टि से विदूषक की तुलना शेक्सपियर के 'फालस्टाफ' (Falstaff) से की जा सकती है। किन्तु विदूषक में कुछ भिन्नता भी है, कुछ निजी व्यक्तित्व भी है, जो 'फालस्टाफ' के व्यक्तित्व से पूरी तरह मेल नही खाता। विदूषक के अतिरिक्त विट भी राजा या नायक का नर्मसुहृत् होता है। विट किसी न किसी कला मे प्रवीण होता है, तथा वेश्याओं के व्यवहारादि का पूरा जानकार होता है। भाण नामक रूपक मे विट प्रधान पात्र भी होता है, जहाँ वह अपने अनुभव सुनाता है। कालिदास व भवभूति में विट नहीं है। हर्ष के नागानन्द में तथा मृच्छकटिक में विट का प्रयोग पाया जाता है।

राजा के और भी कई सहायक होते है दूत, कुमार, प्राड्विवाक आदि, जिनका प्रयोग नाटककार आवश्यकतानुसार किया करते है।

नाटकादि रूपक में नायिका का भी ठीक उतना ही महत्व है, जितना नायक का, विशेष करके श्रृङ्गार रस के रूपकों में। नाटिका में तो नायिका

का विशेष व्यक्तित्व है। नायिका का वर्गीकरण तीन प्रकार का होता है। पहले ढंग का वर्गीकरण उसके तथा नायक के सम्बन्ध पर आधृत होता है। दूसरे ढंग का वर्गीकरण एक ओर उसकी उम्र और अवस्था, दूसरी ओर नायक के प्रतिकूलाचरण करने पर उसके प्रति नायिका के व्यवहार के आधार पर किया जाता है। तीसरा वर्गीकरण उसकी प्रेमगत दशा के वर्णन से संबद्ध है। जिसका वर्णन निम्नवत् है –

नायिका को मोटे तौर पर तीन तरह का माना जा सकता है[२५]

१. **स्वकीया** — नायक की स्वयं की परिणीता पत्नी; जैसे उत्तररामचरित की सीता २. **अन्या** – वह नायिका जो नायक की स्त्री नही है। अन्या या तो किसी व्यक्ति की अनूढा कन्या हो सकती है, या किसी की परिणीता पत्नी। अनूढा कन्या का रूप हम शकुन्तला, मालती या शागरिका में देख सकते है। परस्त्री या अन्य पत्नी का नायिका के रूप में प्रयोग नीति व धर्म के विरुद्ध होने के कारण नाटकादि में नही बताया जाता। ३. **सामान्यता** – साधारण स्त्री या गणिका। कई रूपकों में विशेषतः प्रकरण प्रकरणिका तथा भाण में गणिका भी नायिका के रूप में चित्रित की जा सकती है। मृच्छकटिक की नायिका वसन्तसेना गणिका ही है।

अवस्था के अनुसार नायिका – १. मुग्धा, २. मध्या तथा ३. प्रौढा या प्रगल्भा। **मुग्धा** – नायिका प्राप्तयौवना होती है, वह बड़ी भोली, प्रेम-कलाओं से अज्ञात, तथा प्रेमक्रीडा से डरी-सी रहती है। वह नायक के समीप अकेली रहने मे डरती है, तथा नायक के प्रतिकूलाचरण करने पर उस पर क्रोध नहीं करती, बल्कि स्वयं ऑसू गिराती है। **मध्या** – नायिका सम्प्राप्ततारुण्यकामा होती है; उसमें कामवासना उद्भूत हो जाती है। नायक के प्रतिकूलाचरण करने पर वह क्रुद्ध होती

२५. दश० २.१५ स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।

है। ऐसी दशा में उसके तीन रूप होते है– १. धीरा, २. अधीरा, ३. धीराधीरा। धीरा मध्या प्रतिकूलाचरण वाले नायक को श्लिष्ट वाक्यों के द्वारा उपालंभ देती है। अधीरा कटु शब्दों का प्रयोग करती है। धीराधीरा मध्या एक ओर रोती है, दूसरी ओर नायक को व्यंग्य भी सुनाती है। इस प्रकार मध्या तीन प्रकार की होती है। प्रोढा – या प्रगल्भा नायिका प्रेमकला में दक्ष होती है, प्रेमक्रीड़ा में वह कई प्रकार के अनुभव रखती है। कृतापराधप्रिय के प्रति उसका आचरण मध्या की भाँति ही तीन तरह का हो सकता है। अतः वह तीन प्रकार की होती है : – १. धीरा, २. अधीरा, ३. धीराधीरा। धीरा प्रौढा प्रिय को कुछ नहीं कहती, वह केवल उदासीन वृत्ति धारण कर लेती है। इस प्रकार वह नायक की कामक्रीडा में हाथ नहीं बँटाती और उसमें बाधक-सी होकर अपने क्रोध की व्यञ्जना करती है। अधीरा प्रौढा नायक को डराती, धमकाती और यहाँ तक कि मारती-पीटती भी है। धीराधीरा प्रौढा मध्या धीराधीरा की भाँति ही व्यंग्योक्ति का प्रयोग करती है। इसके साथ ही मध्या तथा प्रौढा के तीन-तीन भेदों का फिर से ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा के रूप में वर्गीकरण किया जाता है। ज्येष्ठा नायिका नायक की पहली, तथा कनिष्ठा उसकी अभिनव प्रेमिका होती है। उदाहरण के लिए रत्नावली नाटिका में वासवदत्ता ज्येष्ठा है; सागरिका कनिष्ठा। इस प्रकार मध्या के ६ भेद तथा प्रौढा के भी ६ भेद हो जाते है। मुग्धा नायिका केवल एक ही तरह की मानी जाती है। उसे इन भेदों में मिला देने पर इस वर्गीकरण के अनुसार नायिका के तेरह भेद होते है।

नायिका का तीसरा वर्गीकरण उसकी दशा को उपस्थित करता है। इसके अनुसार नायिका आठ तरह की होती है – १. स्वाधीनपतिका, २. वासकसज्ज़ा, ३. विरहोत्कण्ठिता, ४. खण्डिता, ५. कलहान्तरिता, ६ . विप्रलब्धा,

७. प्रोषितप्रिया तथा ८. अभिसारिका।[२६] स्वाधीन पतिका का नायक सर्वथा उसके अनुकूल होता है, जैसे वह उसके अधीन होता है। वासकसज्जा नायिका नायक के आने की राह में सजधज कर बैठी रहती है। नायक के आने के विषय में उसके हृदय में पूर्ण आशा होती है। विरहोत्कण्ठिता का नायक ठीक समय पर नहीं आता, अतः उसेक हृदय में खलबली मची रहती है, आशा तथा निराशा का एक संघर्ष उसके दिल में रहता है। खण्डिता का नायक दूसरी नायिका के साथ रात गुजार कर उसका अपराध करता है, और प्रातः जब लौटता है, तो परस्त्रीसम्भोग के चिन्हों से युक्त रहता है जिसे देखकर खण्डिता क्रुद्ध होती है। कलहान्तरिता नायिका कलह के कारण प्रिय से वियुक्त हो जाती है, तथा गुस्से में आकर प्रिय का निरादर करती है। विप्रलब्धा नायिका संकेतस्थल (सहेट) पर प्रिय से मिलने जाती है, पर प्रिय को नहीं पाती, वह प्रिय के द्वारा ठगी गई होती है। प्रोषितप्रिया का प्रियतम विदेश गया होता है। अभिसारिका नायिका सजधजकर या तो स्वयं नायक से मिलने जाती है या दूती आदि के द्वारा उसे अपने पास बुला लेती है।

नायक के गुणों की भाँति नायिका में भी गुणों की स्थिति मानी गई है। नायिका मे ये गुण भूषण या अलंकार कहलाते है, तथा गणना मे बीस हैं। इन बीस अलंकारों में पहले तीन शारीरिक हैं, दूसरे सात अयलज, तथा बाकी

---

२६. दश० २.२३-२७ "आसामष्टाववस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः।।
आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका।
मुदा वासकसज्जा स्वं मण्डयत्येष्यति प्रिये।।
चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कण्ठितोन्मनाः।
ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता।।
कलहान्तरिताऽमर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक्।
विप्रलब्धोक्तसमयमप्राप्तेऽतिविमानिता।।
दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया।
कामार्ताऽभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाऽभिसारिका।।"

दस स्वभावज है। ये है – भाव, हाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमति, विव्वोक, ललित तथा विहृत।[२७]

नायिकाओं मे राजा की पट्टराज्ञी महादेवी कहलाती है। यह उच्चकुलोत्पन्न होती है। राजा की रानियों में कई निम्नकुल की उपपत्नियाँ भी हो सकती है। इन्हें स्थायिनी या भोगिनी कहा जाता है। राजा के अन्तःपुर में कई सेवक होते है। कंचुकी इनमे प्रधान होता है। यह प्रायः वृद्ध ब्राह्मण होता है। कंचुरी के अतिरिक्त यहॉ बौने, कुबड़े, नपुंसक (वर्षवर), किरात आदि भी रहते है। अन्तःपुर में रानियों की कई सखियॉ, दासियॉ आदि भी वर्णित की जाती है।

इसी सम्बन्ध मे कई नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में पात्रों के नामादि का भी संकेत किया गया है, दशरूपक में इसका अभाव है। इनके मतानुसार गणिका का नाम दत्ता, सेना या सिद्धा में अन्त होना चाहिए, जैसे मृच्छकटिक में वसन्तसेना का नाम। दासदासियो के नाम ऋतुसम्बन्धी पदार्थों से लिये गये हों, जैसे मालतीमाधव में कलहस तथा मन्दारिका के नाम। कापालिकों के नाम घण्ट मे अन्त होते हों, जैसे मालतीमाधव का अघोरघण्ट।

नाटकादि में कौन पात्र किसे किस तरह सम्बोधित करे, इस शिष्टता का संकेत भी नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में मिलता है। सामन्तादि राजा को 'देव' या 'स्वामिन्' कहते है; पुरोहित या ब्राह्मण उसे 'आयुष्मन्' कहते है तथा निम्नकोटि के पात्र 'भट्ट' यूवराज भी 'स्वामी' कहा जाता है, तथा दूसरे राजकुमार 'भद्रमुख' कहे जाते है देवता तथा ऋषि-मुनि 'भगवन्' कहलाते है, तथा मन्त्री एवं ब्राह्मण 'आर्य' नाम से सम्बोधित किये जाते है। पत्नी पति को 'आर्यपुत्र' कहती है।

---

२७. दश० २.३० – ३३।।

विदूषक राजा या नायक को 'वयस्य' कहता है, वह भी उसे 'वयस्य' ही कहता है। छोटे लोग बड़े लोगों को 'तात' कहते हैं, बड़े लोग छोटे लोगों को 'तात' या 'वत्स'। मध्यवर्ग के पुरुष परस्पर 'हंहो' कह कर सम्बोधित करे, निम्न वर्ग के लोग 'हण्डे' कहकर। विदूषक महादेवी या उसकी सखियों को 'भवती' कहता है। सेविकाएँ महादेवी या रानियो को 'भट्टिनी' या 'स्वामिनी' कहती है। पति पत्नी को 'आर्या' कहता है। राजकुमारियाँ 'भर्तृदारिक शब्द से सम्बोधित की जाती है। गणिका अज्जुका, कुट्टिनी या वृद्धा को 'अम्बा' कहती है। सखियॉ परस्पर 'हला' कहती है, और दासियो को 'हञ्जा' कहकर सम्बोधित किया जाता है।

३. रस

भारतीय नाट्यशास्त्र में रसविवेचना का विशेष स्थान है। रस की व्यञ्जना करना, सामाजिकों के हृदय मे रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्य काव्य का प्रमुख लक्ष्य है। दृश्यकाव्य मे नटो का यही उद्देश्य है कि उनके अभिनय के द्वारा सामाजिकों में रसोद्बोध हो। काव्य के पठन, श्रवण या दर्शन से जिस आनन्द का अनुभव हमें होता है, वही आनन्द 'रस' कहलाता है। 'रस की निष्पत्ति, विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से होती है।' भरत मुनि के 'रस' की चर्वणा के साधनो के विषय में नाट्यशास्त्र में यही मत व्यक्त किया है — 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः।'

जूँकि सहृदय सामाजिकों के हृदय में 'भाव' रहता है। यदि आधुनिक मनोविज्ञान से सहायता ली जाय, तो स्पष्ट है कि 'भाव' मानव मानस के अर्धचेतन, या अवचेतन भाग में छिपा रहता है। 'भाव' की उद्भूति हमारे व्यावहारिक तथा लौकिक जीवन से ही होती है, भारतीय पण्डित के मत से वह पूर्वजन्म का लौकिक जीवन से भी हो सकता है। हम स्वयं अपने जीवन मे किसी से प्रेम करते

है, किसी के प्रति क्रोध, उत्साह, करुणा प्रदर्शित करते है; किसी शेर या सॉप को देखकर डरते हैं या किसी कोढ़ी के विकृत शरीर को देखकर जुगुप्सा का अनुभव करते है। यही नहीं, दूसरे लोगों को भी इस प्रकार के भाव प्रदर्शित करते देखते है। लौकिक तथा व्यावहारिक जीवन में, जब हम इस प्रकार के अनुभव बार-बार प्राप्त करते हैं, तो उनका प्रभाव हमारे चेतन मन पर पड़ता हुआ धीरे-धीरे हमारे अचेतन मन के अन्तराल में अपना नीड बना लेता है। और जब हम काव्य-नाटकादि में सत्तत् भाव का चित्रण पढ़ते या देखते है, तो वह छिपा भाव उभर कर चेतन मन को लहरों में उतराता नजर आता है। यही भाव काव्य में वर्णित विभावादि के द्वारा पुष्ट होकर रस रूप में परिणत हो जाता है, वह चेतन और अचेतन मन को जैसे कुछ समय के लिए एक करके, उनके बीच की यवनिका को जैसे हटाकर हमें हृदय की उस चरम सोपान सीमा तक पहुँचा देता है, जहाँ हम मनोराज्य में विचरण करते है, वहॉ आनन्द ही आनन्द है। और भारतीय रसशास्त्री के मत में यह आनन्द जिसे रस की सज्ञा दी गई है, लौकिक होते हुए भी अलौकिक है, दिव्य हैं, तथा 'ब्रह्मास्वादसहोदर' है।

पर 'रस' के साधन, 'भाव' को 'रस' रूप में परिणत करने वाले, ये विभावादि क्या है ? मान लीजिये, हम एक नाटक देख रहे हैं, कालिदास के शकुन्तला नाटक के प्रथम दृश्य को दिखाया जा रहा है। मञ्च पर दुष्यन्त आता है, वह आश्रम के पादपों को सीचती शकुन्तला को देखता है। शकुन्तला अपूर्व लावण्यवती है, घड़े को उठाकर नवमल्लिका को पानी पिलाते समय उसके अङ्गों का इस प्रकार का आकुञ्चन प्रसारण होता है कि वह उसके सौन्दर्य को बढ़ा देता है। भॅवरे के डर से उसका इधर-उधर दौड़ना, कॉपना, आँखें हिलाना और चिल्लाना भी दुष्यन्त को उनकी ओर और अधिक आकर्षित करता है। और आगे जाकर दुष्यन्त

तथा शकुन्तला के इसी अङ्क में परस्पर विदा होते समय शकुन्तला का दर्भ से पैर के क्षत होने का बहाना बनाना, या लताओं में आँचल के न उलझने पर भी उसे सुलझाने का उपक्रम करना, शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त के आकर्षण को परिपुष्ट रूप दे देता है। कण्व ऋषि के आश्रम का एकान्त उपवन तथा मालिनीतीर आदि भी दुष्यन्त के मानस मे शकुन्तला के प्रति 'रति' भाव को व्यक्त कर उसे 'श्रृंगार' के रूप में परिणत करने मे कारण होते है। इस प्रकार हम देखते है दुष्यन्त के मन मे 'रस' व्यक्त होता है, अतः दुष्यन्त 'श्रृगार' रस का आस्वादकर्ता है, वह 'रति' भाव का आश्रय है। इस भाव को 'रस' रूप में परिणत करने का प्रमुख साधन शकुन्तला है, किन्तु इसके साथ शकुन्तला की चेष्टाएँ तथा उस दृश्य के देश-कालादि भी सहायता करते है। ये दोनो विभाव कहलाते हैं। शकुन्तला दुष्यन्त के 'रति' भाव का आलम्बन है तथा देशकालादि इसके उद्दीपन। जब दुष्यन्त के मन में 'रति' भाव का अनुभव होने लगता है, तो उसके शरीर में कई चिन्ह उत्पन्न होते है, उसका चेहरा खिल उठता है, कभी उसकी आँखे बार-बार शकुन्तला की ओर अपने आप उठती हैं, वह फिर उन्हें समेटता है, इस प्रकार की दुष्यन्त की चेष्टाएँ 'अनुभाव' कहलाती है, क्योंकि ये 'रति' भावानुभूति के बाद पैदा होती है या उस 'भाव' का अनुभव सामाजिकों को कराती हैं। तीसरे साधन सञ्चारिभाव या व्यभिचारिभाव है। हम देखते है, शकुन्तला के प्रति 'इति' भाव उत्पन्न होने पर दुष्यन्त कभी सोचता है कि शकुन्तला ऋषिपुत्री है, अतः वह उसके द्वारा परिणययोग्य नही, वह निराशा तथा चिन्ता का अनुभव करता है। कभी उसे अपने मन पर विश्वास होता है, तथा शकुन्तला के विश्वामित्र-पुत्री वाले वृत्तान्त को सुनकर हर्ष तथा आशा होती है, इसके पहले ही उसमें उत्सुकता होती है। इस प्रकार ये सभी प्रकार की भावानुभूतियाँ वे अस्थायी भाव है, जो थोड़े समय तक रहते है और फिर लुप्त हो जाते हैं। एक क्षणिक भाव उठता है, लुप्त हो जाता है, दूसरा उठता है, लुप्त होता है, इस

प्रकार एक स्थायी भाव में कई छोटे भाव सचरण करते रहते है। ये भाव स्थायी भाव के सहकारी कारण है। इनकी स्थिति ठीक वैसी ही है, जैसे समुद्र मे तरङ्गो के उदय व अवसान की। स्थायी भाव समुद्र है, संचारिभाव तरङ्गें। चूॅकि ये भाव क्षणिक तथा अस्थिर है अतः ये संचारी या व्यभिचारी कहलाते हैं। संख्या में ये संचारी भाव तैतीस है।

'भाव' ही 'रस' का बीज है, रस का मूल रूप है। रस के अणु का 'न्यूक्लियस' (Mdens) यही 'भाव' है। भाव को क्षणिक संचारिभावों से अलग करने के लिए स्थायी भाव भी कहा जाता है। साहित्यशास्त्रियो ने आठ या नौ तरह के भाव माने है। धनंजय नाटक में आठ ही भाव मानते हैं। अभिनव व नवीन रसशास्त्रियों को नौ भाव अभीष्ट है। ये भाव है – रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, भय तथा शोक। इनके अतिरिक्त नवाँ भाव है, 'शम'। इन्ही भावो की परिणति क्रमशः आठ या नौ रसों में होती है – श्रृङ्गांर, वीर, वीभत्स, रौद्र, हास्य, अद्‌भुत, भयानक, करुण तथा नवें भाव 'शम' का रसरूप ' शान्त'। इन आठ रसों मे – शान्त की गणना न करने पर चार प्रमुख हैं, चार गौण। 'उपर्युक्त वर्णन मे प्रथम चार प्रमुख हैं, द्वितीय क्रमशः प्रथम चार मे से एक एक से उद्‌भूत माने जाते है। यथा हास्य को श्रृंगार से, अद्‌भुत को वीर से, भयानक को वीभत्स से तथा करुण को रौद्र से उद्‌भूत माना जाता है। इस प्रकार श्रृङ्गार – हास्य, वीर-अद्‌भुत, वीभत्स-भयानक, रौद्र-करुण इन रस-युग्मों की स्थिति हो जाती है। इनका सम्बन्ध मन की चार स्थितियों से लगाया जाता है। रसास्वाद के समय सामाजिक का मानस या तो विकसित होता है या फैलता है या क्षुब्ध होता है या उसमे विक्षेप की क्रिया होती है। इस प्रकार इन चार स्थितियों में से प्रत्येक का अनुभव ऊपर के एक एक रस-युग्म में क्रमशः पाया जाता है। यथा, श्रृङ्गार-हास्य

मे मानस विकसित होता है, उसमें मन का विकास पाया जाता है। इसी तरह वीर-अद्‌भुत मे मन के विस्तार, वीभत्स-भयानक में क्षोभ तथा रौद्र-करुण में विक्षेप की स्थिति रहती है।

रूपक के उपर्युक्त तीन भेदक तत्त्वों वस्तु, नेता एवं रस के अतिरिक्त नाटकादि रूपको मे नाटकीय वृत्तियॉ, संगीत, नृत्य, का भी प्रमुख स्थान है। दशरूपककार ने सगीत तथा नृत्य की विवेचना नहीं की है। भरत के नाट्यशास्त्र मे इन दोनो का क्रमशः वाचिक तथा आंगिक अभिनय के अन्तर्गत विवेचन किया गया है। दशरूपककार ने सात्त्विक अभिनय-रस का वर्णन किया है। नाटकीय वृत्तियो को एक ओर नायक का व्यापार बताया गया है, दूसरी ओर रसों से भी उसका सम्बन्ध स्थापित किया गया है। वृत्तियाँ चार है – कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी तथा भारती। भारती, दशरूपककार के मतानुसार शाब्दिक वृत्ति है, उसका प्रयोग विशेषतः आमुख या प्रस्तावना में पाया जाता है। कैशिकी वृत्ति का प्रयोग श्रृङ्गार रस के अनुकूल होता है। इसके चार अंग होते है – नम, नर्मस्फिञ्ज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ। सात्त्वती वृत्ति वीर, अद्‌भुत तथा भयानक के उपयुक्त होती है। इसका प्रयोग करुण तथा श्रृङ्गार मे भी किया जा सकता है। आरभटीवृत्ति का प्रयोग भयानक, वीभत्स, रौद्र रसों में होता है। निम्न तालिका से वस्तु आदि भेदों का परस्पर भेद स्पष्ट होता है –

१. नाटक – पञ्चसन्धियुक्त पौराणिक या ऐतिहासिक वस्तु, ५ से १० तक अङ्क, धीरोदात्त नायक, श्रृङ्गार या वीररस, कैशिकी या सात्त्वती वृत्ति।

२. प्रकरण – पञ्चसन्धियुक्त कल्पित वस्तु, ५ से १० तक अङ्क, धीरप्रशान्त नायक, श्रृङ्गार रस, कैशिकी वृत्ति।

३. **भाण** – धूर्तचरितविषयक कल्पित वस्तु, एक अङ्क, कलावित् विट नायक, एक ही पात्र की उक्ति-प्रत्युक्ति का प्रयोग, वीर तथा श्रृङ्गार रस।

४. **प्रहसन** – कल्पित वस्तु, एक अङ्क, पाखण्डी, कामुक, धूर्त आदि पात्र, हास्य रस।

५. **डिम** – पौराणिक वस्तु, चार अङ्क, विमर्श रहित चार सन्धियों में विभक्त वस्तु, धीरोद्धत नायक, हास्य तथा श्रृङ्गार से भिन्न ६ रस; सात्त्वती तथा आरभटीवृत्ति।

६. **व्यायोग** – प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु, गर्भ तथा विमर्श रहित तीन सन्धियॉ, एक अङ्क, धीरोद्धत नायक, हास्य तथा श्रृंगार से भिन्न ६ रस, सात्त्वती तथा आरभटी वृत्ति, – इस रूपक-भेद में स्त्री पात्र कम होते है, पुरुष पात्र अधिक।

७. **समवकार** – देव-दैत्यों से सम्बद्ध प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु, विमर्श सन्धि का अभाव बाकी चार सन्धियों की स्थिति, ३ अङ्क, धीरोदात्त तथा धीरोद्धत प्रकृति के १२ नायक; वीर रस, सात्त्वती तथा आरभटी वृत्ति।

८. **वीथी** – कल्पित वस्तु, एक अङ्क, श्रृङ्गारप्रिय नायक, श्रृङ्गांर रस, कैशिकी वृत्ति।

६. **अङ्क** – प्रसिद्ध पौराणिक वस्तु, एक अङ्क, प्राकृत पुरुष नायक, करुण रस सात्त्वती वृत्ति।

१०. **ईहामृग** – मिश्रित कथावस्तु, चार अङ्क, गर्भ व विमर्श से रहित तीन सन्धियाँ धीरोद्धत नायक, श्रृङ्गार रस।

❖❖❖

भास एवं शूद्रक का परिचय

भास

महाकवि भास संस्कृत साहित्य के प्रख्यात एव सम्मानित महाकवियों में से है। ''मालविकाग्निमित्रम्'' में कालिदास ने नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार[1] के मुख से स्पष्ट ही प्रश्न करवाया है कि प्रसिद्ध यश वाले भास, सौमिल्ल कविपुत्र आदि महाकवियो के प्रबन्धो का अतिक्रमण कर कालिदास की कृति का इतना अधिक सम्मान क्यो हो रहा है ? इस कथन से प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में भास के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय थे। कालिदास के बाद के कवियों ने भी भास के नाटकों का अत्यन्त सम्मान किया है। 'हर्षचरित' मे महाकवि बणभट्ट ने भास के नाटको की उकृष्टता बतलाते हुए कहा है कि भास ने सूत्रधार से आरम्भ किए गए, बहुत भूमिका वाले तथा पताका से शोभायमान देवकुलों की भाँति अपने नाटकों से साहित्य-जगत् में अच्छी प्रतिष्ठा पाई।[2] राजशेखर ने 'काव्यमीमाशा' मे भास के नाटकों में अग्नि-परीक्षा तथा 'स्वप्रवासवदत्तम्' को सर्वोत्तम नाटक माना है।[3]

'गउडवहो' नामक प्राकृतभाषा के महाकाव्य मे वाक्पतिराज ने 'जलणमित्ते' ज्वलनमित्र (अग्नि का मित्र) बताया है।[4] प्रख्यात आलंकारिक जयदेव ने भास को 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में कविताकामिनी का हास माना है।[5] उक्त विशेषणों

---

१. माल० ''प्रथितयशसां भाससौमिल्लककविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य कथ वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः''।

२. हर्ष० १.१५ सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।।

३ काव्यमीमाशा भास नाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षित्ते परीक्षितुम्।
स्वप्रवासदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।।

४ गउडबहो – भासम्मि जलणमित्ते कान्तीदेव तहावि रहुआरे।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारि अन्दे आ आणन्दो।।

५. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।

से स्पष्ट होता है कि अतीत काल मे सर्वसाधारण के बीच भास के रूपकों की अधिक ख्याति एवं प्रचार था और उनके वृहद् नाटक-चक्र में स्पप्रवासवदत्तम् प्रधान था।

एक प्रसिद्ध कवि होने पर भी सस्कृत-साहित्य में बहुत दिनो तक विद्वानो के मध्य भास का केवल नाम ही सुना जाता था। इनके स्थितिकाल, कृतित्व तथा जीवनवृत्त के विषय में लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। केवल अनेक संस्कृत काव्यो एव नाटको में उनका नामोल्लेख एव उद्धरण देकर ही अनुमान किया जाता था कि अतीत काल मे भास नामक कोई प्रख्यात नाटककार हुए है। ऐसी स्थिति अनेक काव्यों की है, जिनका केवल नाममात्र ही श्रवणगोचर होता है, परन्तु सौभाग्य की बात है कि १६१२ ई० में ट्रावनकोर के प० श्री टी गणपति शास्त्री ने स्वप्रवासवदत्तम् आदि तेरह नाटकों का अन्वेषण कर अनन्तशयनग्रन्थमाला में प्रकाशित कराया और उन्हें भास की असंदिग्ध कृति बतलाई। उसी समय से भास और उसके रूपको की चर्चा साहित्य संसार एव सहृदय विद्वानो में होने लगी। श्री शास्त्री जी द्वारा अनुसंधान किए गए तेरह नाटकों में केवल 'स्वप्रवासवदत्तम्' भासकृत हो सकता है, क्योंकि राजशेखर के पूर्वोक्त निर्देश के अतिरिक्त आचार्य अभिनव गुप्त ने भी 'अभिनवभारती' मे इस नाटक का उल्लेख किया है।[६] किन्तु शेष रूपको को भास की रचना स्वीकार करने में कोई भी उत्कृष्ट प्रभाव नहीं हैं, ऐसा कुछ विद्वानो का मत है, किन्तु शास्त्री जी ने इन नाटकों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए जो अकाट्य युक्तियॉ दी है, उनमें शंका का लेशमात्र भी कारण नही है।

समय – महाकवि भास के समय के विषय में अभी निश्चयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि भास कालिदास से पूर्ववर्ती है। कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्' मे भास का नाम बड़े ही सम्मानपूर्वक रूप से लिया है —

''प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः।।''

---

६. क्वचित् क्रीडा यथा वासवदत्तायाम्।

प्रस्तुत कथन में 'प्रथितयशसां' पद से ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में भास की कीर्तिव्याप्त थी। एतदर्थ कम से कम सौ वर्ष का अन्तर होना चाहिए। कालिदास का समय सामान्यतया प्रथम शताब्दी ई०पू० माना जाता है। अतः भास का समय द्वितीय शताब्दी ई०पू० से बाद का नहीं माना जा सकता है।

शूद्रक विरचित मृच्छकटिक प्रकरण भास के चारुदत्त का ही परिवर्धित रूप ज्ञात होता है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि भासकृत चारुदत्त अपूर्ण था। उसे शूद्रक ने पूर्ण एवं परिवर्धित किया।

प्रो० विन्सेट ए० स्मिथ के अनुसार शूद्रक का शासन-काल २०० - १६७ ई० पू० था। इस प्रकार 'मृच्छकटिक' द्वितीय या तृतीय शताब्दी ई०पू० की रचना है और 'चारुदत्त' की रचना इसके पूर्व अवश्य हो गयी रही होगी।

कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में प्रमाण रूप से एक श्लोक[७] उद्धृत किया है, जो भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में पाया जाता है। जिसके पूर्व लिखित 'अपीह श्लोकौ भवतः' कथन से स्पष्ट होता है कि ये श्लोक किसी अन्य कवि से उद्धृत किए गए हैं। इनमें से पूर्वोक्त श्लोक भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक के चतुर्थ अंक का द्वितीय श्लोक है। चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री चाणक्य था। चन्द्रगुप्त मौर्य ३२१ ई०पू० गद्दी पर बैठा था। भास का समय कौटिल्य से कम से कम ५० वर्ष पूर्व मानना चाहिए। इस प्रकार भास का समय ३७० ई०पू० से बाद का नहीं हो सकता है।

प्रतिमानाटकम् के पाँचवें अंक में महाकवि भास ने कुछ ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिसमें बृहस्पति के अर्थशास्त्र का उल्लेख है, किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र का नहीं।[८] इस आधार पर मनीषियों की धारणा है कि भास कौटिल्य से पूर्व हुए थे।

---

७. कौटिल्य अर्थशास्त्र १०.३ 'नवं शरावं सलिलै सुपूर्ण,
सुसंकृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद,
यो भर्तपिण्डस्य कृते न युध्येत्।।'

८. प्रतिमा० ५.८ ''रावणः-भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि। सागोपांग वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं, योशास्त्र, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्र, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्प च।''

यदि वह कौटिल्य के पश्चात् होते तो उनके अर्थशास्त्र का नामनिर्देश अवश्य करते। महाभारत के शान्ति पर्व मे अर्थशास्त्र के प्राचीन आचार्य वृहस्पति का उल्लेख है। कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र के प्रारम्भ में ॐ नमः शुक्र बृहस्पतिभ्याम् लिखकर बृहस्पति को अर्थशास्त्र का आचार्य माना है।

चूँकि स्वप्नवासवत्ता एवं प्रतिज्ञयौगन्धरायण दोनो नाटक ऐतिहासिक घटना पर निर्भर है। अतः भास की पूर्व सीमा भी इनके द्वारा निर्धारित की जा सकती है। कौशाम्बी के राजा उदयन, उज्ञयिनी के राजा प्रद्योत एवं मगध के राजा दर्शक इन तीन राजाओं का भास ने उल्लेख किया है, जिनका उल्लेख पुराणों, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में भी मिलता है। विष्णुपुराण और वायुपुराण की वंशावली के अनुसार उदयन और प्रद्योत समकालीन थे। बौद्ध और जैनग्रन्थों के अनुसार प्रद्योत और अजातशत्रु में दोनो बुध और महावीर के समकालीन थे।[९] वायु पुराण आदि से ज्ञात होता है कि दर्शक अजात शत्रु का उत्तराधिकारी था। भास ने प्रद्योत, दर्शक और उदयन को समकालीन चित्रित किया है। प्रो० विन्सेट ए० स्मिथ के अनुसार दर्शक और उसके उत्तराधिकारी का शासनकाल ४७५ ई० पू० से ४५० ई० पू० है।[१०] इससे यह स्पष्ट है कि प्रद्योत, दर्शक और उदयन ये तीनो ४७५ ई० पू० से ५४० ई० पू० के मध्य में समकालीन रहे हैं। अतः महाकवि भास का समय ४५० ई० से पहले नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार भास का समय ४५० ई० पू० के पश्चात् और ३७० ई०पू० से पूर्व सिद्ध होता है।[११]

जीवन - वृत्त

महाकवि भास संस्कृत के ऐसे नाटककार हैं, जिन्होने अपनी रचनाओं में अपने विषय में कुछ भी निर्देश नहीं किया है, अतः इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी प्राप्त करना कठिन है। भास के जीवन के सम्बन्ध में कुछ किम्वदन्तियाँ

---

९. Rhys David - Buddhist Inida (पृष्ठ - ३)।

१०. Early History of Inida. पृष्ठ ३८-३९।

११. सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डा० कपिलदेव द्विवेदी. पृष्ठ २८४।

प्रचलित है तथा इनकी कृतियो मे भी कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनसे उनके जीवन-वृत्त पर प्रकाश पड़ता है —

प्रचलित दन्तकथाएँ

भास के विषय में कई दन्तकथाएँ प्रचलित है। एक दन्तकथा में बताया गया है कि वे जाति के धोबी या धावक थे। इस तथ्य की पुष्टि आचार्य मम्मट के 'काव्य प्रकाश' मे अंकित **'काव्यं यशसेऽर्थकृते.......'** आदि श्लोक की **'श्री हर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्'** [१२] उल्लेख से की गयी है। इसमें बताया गया है कि श्री हर्ष की रत्नावली आदि नाटिकाओं के प्रणयन मे धावक कवि सहायक था और उसको धन दिया गया था। यद्यपि श्री हर्ष और धावक का समय भास के समय से बहुत उत्तरकालवर्ती है तथा यह धावक कवि कौन है, यह भी स्पष्ट नही हो पाया है, तो भी कतिपय विद्वान् भास की उपाधि धावक मानते है।

भास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में दूसरी दन्तकथा यह है कि भास जाति के धोबी थे और उन्हीं का नाम घटकर्पर था। समीक्षा करने पर यह दन्तकथा भी तथ्यशून्य है, 'क्योकि घटकर्पर कालिदास के समकालीन हैं। सम्राट विक्रम की राजसभा के नवरत्नों में कालिदास और घटकर्पर का नाम आता है अतएव भास एवं घटकर्पर की अभिन्नता स्वीकार नहीं की जा सकती।

तीसरी दन्तकथा मे कहा गया है कि एक बार व्यास और भास में प्रतिष्ठा के लिए झगड़ा हुआ। व्यास अपने को श्रेष्ठ एवं प्रतिभासम्पन्न कवि मानते थे एवं भास अपने को। निर्णयार्थ दोनो कवियों के ग्रन्थ अग्नि को अर्पित किए गए, व्यास के ग्रन्थों को अग्नि ने भस्म कर दिया, परन्तु भास के नाटकों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' अग्नि में भस्म न हो सका तथा उनके अन्य नाटक अग्नि में जलकर भस्म हो गए। इस किंवदन्ती की पुष्टि राजशेखर के निम्नलिखित कथन से भी होती है। राजशेखर ने वर्णन किया है कि अग्नि ने भास के अन्य नाटकों को तो भस्म कर दिया पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' को वह न जला सकी।

---

१२ काव्य प्रकाश, डा० आर०सी०द्विवेदी द्वारा सम्पादित, पद्य दो की व्याख्या।

भास नाटकचक्रेऽपि क्षेके क्षिप्ते परीक्षितुम्,
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।

प्रस्तुत पद्य की व्याख्या में यह स्वीकार किया जा सकता है कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक अत्यन्त उच्चकोटि का है इसे समय की अग्नि का प्रभाव स्पर्श नहीं कर सका और यह अपनी श्रेष्ठता के कारण आज भी विद्वानो को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है।

कृतियों के आधार पर भास का जीवन-वृत्त – शंकर के मत को उद्धृत करते हुए पुसालकर ने लिखा है कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'अविमारक' नाटकों के मंगलाचरण में प्रयुक्त 'त्वाम्' और 'ते' पद से यह ध्वनित होता है कि भास शासक नृपति थे। इन नाटकों के प्रथम अभिनय मे वे स्वय सम्मिलित रहे होंगे और उन्होंने उपस्थित सामाजिकों के लिए आशीर्वादार्थ 'त्वाम्' एवं 'ते' पदों का उपयोग किया होगा। प्रस्तुत सन्दर्भों में इन दोनो पदों का प्रयोग कवि की उपस्थिति के साथ उसके प्रशासक होने का भी सूचक है, अतः भास को शासक नृपति मानना अनुचित नहीं है।

'प्रतिज्ञा', 'पंचरात्र' और 'प्रतिमा' नाटकों के मंगलाचरण में भास राजा की उपस्थिति को निश्चित रूप से प्रतिपादित नहीं करते। वे सामाजिकों के कल्याण का आशीर्वाद 'वः पातु' पद द्वारा प्रदान करते हैं। अतएव इन नाटकों के मंगलश्लोकों से भास किसी राजसभा में निवास करने वाला राजकवि सिद्ध होता है। मंगलाचरण से यह भी ज्ञात होता है कि भास विष्णु भक्त थे और पंचरात्र दर्शन से सुपरिचित थे। उन्होंने राम और कृष्ण को अवतार के रूप में चित्रित किया है। स्पष्टतः नाटककार भास की वैदिक क्रियाकाण्ड के प्रति अपार आस्था थी। वह धर्मभीरू, सकल शास्त्र निष्णात, विनीत, प्रत्युत्पन्नभति, हास्य-प्रिय, शिष्ट, गुरुजनो के आज्ञाकारी एवं कुशल भाषणकर्त्ता थे।

भाग्य और पुरुषार्थ दोनों पर महाकवि भास का विश्वास है। एक ओर वे भाग्य का समर्थन करते है दूसरी ओर पुरुषार्थ का –

चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्ति। स्वप्न १.४

अर्थात् भाग्यदशा पहिए के आरों की भाँति ऊपर-नीचे होती रहती है।

न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि।। स्वप्न०१.११।।

अर्थात् भवितव्यता सिद्धों के सुपरीक्षित वचनो का उल्लंघन नही करती।

भास मनुष्य, स्वभाव और प्रकृति के पारखी है। इनकी कृतियों से यह ध्वनित होता है कि इनका पारिवारिक जीवन सुखी था ये कर्त्तव्यपरायण पुत्र, निष्ठावान पति, एवं संतानप्रिय पिता थे। अविभक्त परिवार के प्रति इनकी अपार आस्था थी। ये आशावादी व्यक्ति थे। न्याय और स्वतंत्रता के प्रेमी थे। राजकुलों से सम्बन्ध रहने के कारण राज प्रसाद और अन्तःपुरो के सजीव चित्रण में विशेष रुचि प्रदर्शित की गयी है। अमात्य, सेना, दूत, युद्ध आदि के चित्रणों से भी यह सिद्ध होता है कि भास का सम्बन्ध किसी राजकुल से अवश्य था। प्रतिज्ञायौगन्धरायण[१३] में पुरुषार्थ की महत्ता बतलाते हुए लिखा है कि उत्साही व्यक्ति के लिए इस विश्व में कोई भी असाध्य कार्य नहीं है।

इस प्रकार उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि महाकवि भास धर्मभीरु ब्राह्मण थे और वे किसी राजा की राजसभा में राजकवि के पद पर प्रतिष्ठित थे। ब्राह्मण धर्म और वैदिक संस्कृति के प्रति उनकी अपार निष्ठा थी। उनकी शिक्षा-दीक्षा किसी अच्छे गुरुकुल में सम्पन्न हुई थी। वे सद्‌गृहस्थ और सम्मिलित परिवार के सदस्य थे। माता-पिता, गुरुजन, बन्धु-बान्धव एवं पत्नी और सन्तान के प्रति भी वे उत्तरदायी थे।

भास के रूपकों के अध्ययन से इतना तो स्पष्ट है कि भास उत्तर भारत के निवासी थे। उज्ञयिनी और मगध इन दोनो से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। मगध यदि जन्मभूमि है तो उज्ञयिनी प्रवास-भूमि और उज्ञयिनी जन्मभूमि है तो मगध प्रवास-भूमि।

---

१३. प्रतिज्ञा० १.१२ — काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्,
भूमिस्तोय खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां,
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति।।

राजगृह और उज्ञयिनी ये दोनो ही स्थान भास के लिए विशेष सुपरिचित है। अतः दोनो में भौगोलिक महत्त्व की दृष्टि से उज्ञयिनी और सांस्कृतिक वर्णनो की प्रमुखता की दृष्टि से राजगृह भास की जन्म-भूमि सम्भाव्य है। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री[१४] के मतानुसार उज्ञयिनी जन्म-भूमि है और राजगृह कर्म-भूमि। भास चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा के अमात्य कवि थे।

कृतित्व

संप्रति भास के नाम से तेरह नाटक उपलब्ध होते हैं।[१५] सन् १६०६ ई० में महामहोपाध्याय श्री टी० गणपतिशास्त्री ने ट्रावनकोर राज्य से इन्हें प्राप्त किया था। इनको प्रकाश में लाने का श्रेय उनको ही है। इनके नाटकों को कथा-स्रोत की दृष्टि से चार भागों मे बॉटा जा सकता है –

(क) उदयन-कथा-मूलक	१. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, २.स्वप्नवासवदत्तम्
(ख) महाभारत-मूलक	३.ऊरुभंग ४.दूतवाक्य ५. पञ्चरात्र ६.बालचरित ७.दूतघटोत्कच ८. कर्णभार ६.मध्यमव्यायोग।
(ग) रामायण-मूलक	१०.प्रतिमानाटक ११.अभिषेकनाटक
(घ) कल्पना-मूलक	१२.अविमारक १३.चारुदत्त।

महामहोपाध्याय श्री टी० गणपति शास्त्री जी द्वारा अनुसन्धान किए गए उक्त तेरह नाटकों की प्रामाणिकता में मतवैभिन्य है। कुछ विद्वान् भासकृत प्रचलित नाटकों को उनकी वास्तविक कृति न मानकर उनके नाटकों का संक्षिप्त रूप मानते हैं। कुछ विद्वान उपलब्ध नाटकों के कुछ भाग को तो भास की रचना और कुछ अंश को किसी अन्य की कृति बतलाते हैं। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि भास के नाटक अपूर्ण अवस्था में मिले थे, संभव है किसी अन्य कवि ने उन्हें

---

१४. महाकवि भास, पृष्ठ, १७।।

१५ विस्तृत विवरण " नाटकों का उद्भव एव विकास" शीर्षक में किया गया है।

पूरा किया हो। कुछ विद्वान् 'स्वप्नवासवदत्ता' को तो भासरचित मानते हैं, पर शेष नाटकों को, जो भास के नाम पर प्रचलित है। उनकी कृति मानने के लिए कदापि सहमत नहीं है। परन्तु इन बातो का उचित उत्तर देने के लिए शास्त्री जी,[१६] श्री बलदेव उपाध्याय जी,[१७] तथा श्री कान्तानाथ जी तैलग[१८] आदि विद्वानो ने अनेक प्रमाण एवं युक्तियॉ प्रस्तुत की है। उनका कथन है कि नाटको के रचना-सादृश्य, भाषा-विन्यास तथा कुछ विशेषताओं आदि पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि इन तेरह नाटकों के निर्माता एक ही कवि है। इन विद्वानो ने प्रामाणिकता के पक्ष में जो युक्तियॉ एवं सम्मतियॉ दी है उनका सारांश निम्नवत् है —

१. भास के नाम पर प्रख्यात एवं प्रचलित सब नाटक **'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः'** से आरम्भ होते है। अनन्तर सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है और मगलगान करता है।

२. इनके नाटकों में सर्वत्र 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' प्रयोग किया गया है परन्तु न तो उनमें कवि का नामोल्लेख है और न नाटक का ही। ये विशेषताएं भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा की प्रसिद्धि होने से पूर्व की ओर सकेत करती है।

३. प्रत्येक ग्रन्थ की समाप्ति में भरत वाक्य के माध्यम से प्रार्थना में **'महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः'** या अन्य किसी तत्सम पद्य का प्रयोग किया गया है। नाटकों का आद्यन्त एक-सा है। अनेक नाटकों के प्रारम्भ में मुद्रालंकार के माध्यम से प्रमुख-प्रमुख पात्रों का नाम-निर्देश किया गया है।

४. भाषा, छन्द, पद्य, भाव, कल्पना और घटना आदि प्रायः सब नाटकों में समान है। अलंकार-शास्त्र के बहुत से रचयिताओं ने भी भास के

---

१६. महामहोपाध्याय श्री टी०गणपति शास्त्री कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि नाटको की भूमिका।

१७. श्री बलदेव उपाध्याय कृत 'संस्कृत साहित्य का इतिहास'।

१८. श्री तैलंगशास्त्रीकृत 'स्वप्नवासवदत्तम् की भूमिका'।

नाटको से पद्य उद्धृत करके अपने ग्रन्थों की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। वामन, दण्डी, आचार्य, अभिनवगुप्त आदि कवियो ने उनके किसी न किसी श्लोक आदि को उद्धरण की कोटि में रखा है।

५. भास के नाटकों में प्रयुक्त अनेक अपाणिनीय प्रयोग भी इनकी रचनाओं की प्रामाणिकता एवं प्राचीनता में सहयोग देते है। डा० मैक्स लीण्डेनेव आदि का कथन है कि प्रचलित नाटकों में भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में वर्णित नाटक के नियमों का उल्लघन किया गया है, यथा – ऊरुभङ्ग में दुर्योधन की मृत्यु मञ्च के ऊपर दिखलाना, 'प्रतिमानाटकम्' में राम के द्वारा बाली का वध रङ्गमञ्च के ऊपर दिखलाना आदि बाते शास्त्रीय परम्परा के विरुद्ध है। उक्त प्रथा उस युग की ओर संकेत करती है जबकि भरतमुनि का यह नाट्यशास्त्र साहित्य समाज में पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित एवं विकसित नहीं हो सका था। इस आधार पर यह भी कहना उचित होगा कि उक्त नाटकों का निर्माता एक ही कवि रहा होगा। और वह भास के अतिरिक्त दूसरा नही है।

शूद्रक

जीवन-वृत्त

संस्कृत के प्राचीन कवियों ने अपने जीवन के सम्बन्ध में प्रायः मौनावलम्बन ही किया है। इसी प्रकार मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक के सम्बन्ध में भी कोई विश्वसनीय जानकारी नहीं प्राप्त होती है। मृच्छकटिक की प्रस्तावना के अनुसार शूद्रक जाति का द्विज है। विद्वानो ने द्विज का अर्थ 'क्षत्रिय' किया है। यह बड़ा सुन्दर और सुडौल था, हाथी जैसी मतवाली चाल वाला तथा अत्यधिक शक्तिशाली था। ऋग्वेद, सामवेद, गणित आदि का विद्वान् था। शिव' की कृपा से उसने ज्ञान प्राप्त किया था। वह तपोनिष्ठ एवं समरव्यसनी था। बड़े-बड़े हाथियों से बाहुयुद्ध करने में प्रवीण था। उसने सौ वर्ष तथा दस वर्ष की आयु व्यतीत करके

पुत्र को राज्य सौप कर अग्नि में प्रवेश किया।[१९] प्रस्तावना मे शूद्रक को राजा भी बतलाया गया है।[२०] किन्तु इससे शूद्रक के देशकाल आदि के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

मृच्छकटिक का कर्ता दाक्षिणात्य (महाराष्ट्री) प्रतीत होता है। कुछ विद्वानो के अनुसार यह आन्ध्रवंश का आदिम राजा है। आन्ध्रवंश का राज्य दक्षिण मे ही था। अतः शूद्रक का दाक्षिणात्य होना सिद्ध होता है।

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति के किसी टीकाकार ने शूद्रक को 'राजा कोमतिः' लिखा है। एम०आर० काले के अनुसार मद्रास प्रदेश की एक व्यापारिक जाति आज भी **'कोमति'** (Comatı) कहलाती है। इससे ज्ञात होता है कि शूद्रक दाक्षिणात्य था। अन्तः साक्ष्यों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है –

१. मृच्छकटिक के प्रथम अंक में पैसे के अर्थ में नाणक शब्द का प्रयोग किया गया है।[२१]

२. मृच्छकटिक के द्वितीय अक मे नाटककार ने हाथी ने नाम के रूप में 'खुण्टमोडक' शब्द का प्रयोग किया है।[२२]

३. दशम अंक मे चाण्डाल ने दुर्गादेवी को सह्यवासिनी देवी के नाम से स्मरण किया है।[२३]

---

१९. मृच्छ० १.३, ४, ५ द्विरेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः।।
ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां,
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुर्षा चोपलभ्य।
राजान वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा,
लब्ध्वा चायुः शताष्द दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्नि प्रविष्टः।।
समरव्यसनी प्रमादशून्यः ककुद वेदविदां तपोधनश्च।
परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव।।

२०. मृच्छ० १.७।।

२१. मृच्छ० १.२३।।

२२ श्रृणोत्वार्या। यः स आर्यायाः खुण्टमोडको नाम दुष्टहस्ती।

४. षष्ठ अंक मे भास ने वीरण और चन्दनक के झगड़े के अवसर पर दाक्षिणात्य और कर्नाटकलह शब्दो का प्रयोग किया है।[२४] इसके साथ ही दक्षिण की कई भाषाओं के नाम भी गिनाये है। इनमे से अधिकाश दक्षिण मे बोली जाती है।[२५]

उपर्युक्त प्रभावों के आधार पर मृच्छकटिककार को दाक्षिणात्यों में भी महाराष्ट्र का होना स्वीकार किया जा सकता है।

मृच्छकटिक के पर्यालोचन से विदित होता है कि शूद्रक वैदिक धर्मानुयायी था। उसने ऋग्वेद और सामवेद का ज्ञान प्राप्त किया था। **'शम्भोः समाधिः** वः पातु'[२६] 'नीलकण्ठस्य कण्ठः'[२७] और 'जयति वृषभकेतुः'[२८] इत्यादि वाक्याशो से प्रतीत होता है कि मृच्छकटिक का कर्ता शिवजी का भक्त था। वह बड़ा विद्वान् था। इसकी विद्वत्ता तथा बहुज्ञता इनके नाटक से ही स्पष्ट हो जाती है। उसने विविध विषयों का अध्ययन किया था, जैसे - वेद, गणित, कला, हस्तशिक्षा आदि। कवि ने स्वयं को **'ककुदो वेदविदां'**[२९] कहा है। इसे ज्योतिष और धर्मशास्त्र का सम्यक् ज्ञान था। नवम अंक में **'अङ्गारक-विरुद्धस्य'**[३०] इत्यादि श्लोक तथा न्यायालय का दृश्य इस बात के प्रमाण है।

शूद्रक का साहित्यिक ज्ञान उच्चकोटि का था। इन्हें संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का प्रौढ़ ज्ञान था। जितनी प्राकृत भाषाओं का प्रयोग मृच्छकटिक नाटक में मिलता है, उतनी भाषाओं का अन्य नाटकों में नही मिलता। शूद्रक, छन्द और अलंकारों के भी पण्डित थे, नाट्यकला सम्बन्धी ज्ञान मृच्छकटिक की कथावस्तु से स्पष्ट हो जाता है।

२३ भगवति सहवासिनि, प्रसीद प्रसीद।

२४. वयं दाक्षिणात्य अव्यक्तभाषिणः। वही, श्लोक २० के बाद।

२५ वही

२६. मृच्छ० १.१।।

२७ मृच्छ० १.२।।

२८. मृच्छ० १०.४६।।

२९. मृच्छ० १.५।।

३०. मृच्छ० नवम अङ्क।

कृतित्त्व

इस समय शूद्रक की केवल एक कृति मृच्छकटिक ही उपलब्ध है। कुछ समय पहले **'पद्मप्राभृतक'** नामक एक भाण दक्षिण भारत में प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक श्री वल्लभदेव का कथन है कि यह मृच्छकटिक के कर्ता की ही रचना है किन्तु अभी इसके याथार्थ्य के विषय मे कुछ नहीं कहा जा सकता। श्री वल्लभदेव ने यह भी बतलाया है कि 'वत्सराजचरित' शूद्रक की तीसरी रचना है तथा सम्भवतः शूद्रक की चतुर्थ रचना 'कामदत्त' नामक एक प्रकरण ग्रन्थ है। इन ग्रन्थो के सम्बन्ध में अभी केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनके अनुशीलन से मृच्छकटिक कर्ता के जीवन एवं स्थिति काल पर विशेष प्रकाश पड़ सकेगा।

मृच्छकटिक के कर्ता के विषय में विवाद – मृच्छकटिक किसकी कृति है, इस विषय में विद्वानो में बड़ा मतभेद है। मृच्छकटिक की प्रस्तावना में राजा शूद्रक को इस नाटक का कर्ता बताया गया है तथापि कुछ समालोचक इस पर विश्वास नहीं करते। उन्होने इसके कर्ता के विषय में अपनी मान्यताओं के समर्थन में तर्क प्रस्तुत किए हैं। मृच्छकटिक के कतृत्व-विषयक मतभेदों को निम्न वर्गों में सन्निविष्ट किया जा सकता है –

१. मृच्छकटिक का कर्ता कोई अज्ञात कवि है – डा० सिलवॉ लेवी तथा प्रो० कीथ आदि।

२. मृच्छकटिक दण्डी की रचना है – डा० पिशेल इत्यादि।

३. मृच्छकटिक भास की रचना है – कुछ विद्वान्।

४. मृच्छकटिक के कर्त्ता राजा शूद्रक है – डा० देवस्थली आदि।

१. डा० सिलवाँ लेवी का मत – डा० सिलवॉ लेवी का मत है कि मृच्छकटिक शूद्रक की कृति नहीं है। अपितु किसी अन्य कवि ने इसकी रचना की और अपनी कृतियों में प्राचीनता का पुट लाने के उद्देश्य से उसे शूद्रक की कृति के रूप में प्रसिद्ध कर दिया।

प्रो० कीथ का मत – प्रो० कीथ भी शूद्रक को मृच्छकटिक का कर्त्ता नहीं मानते, वे शूद्रक को एक काल्पनिक व्यक्ति मानते हैं। शूद्रक एक अजीब नाम है। सामान्यतः राजाओं का ऐसा नाम नहीं होता। भासकृत चारुदत्त नाटक को बढ़ाकर प्रस्तुत करने वाले कवि ने काल्पनिक शूद्रक के नाम पर ही अपनी कृति को प्रसिद्ध कर दिया। डा० कीथ ने अपने मत के समर्थन के लिए कोई युक्ति नहीं दी है।

इस मत के सम्बन्ध मे समीक्षकों का कथन है कि यदि यह स्वीकार किया जाये कि मृच्छकटिक किसी अज्ञात कवि की रचना है तो इस बात की पुष्टि के लिए प्रबल प्रमाणों का होना आवश्यक है किन्तु इस विषय में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। इसके विपरीत मृच्छकटिक की सभी उपलब्ध प्रतियों की प्रस्तावना में यह निर्देश दिया गया है कि मृच्छकटिक शूद्रक की कृति है। शूद्रक कोई ऐतिहासिक पुरुष ही नही था, यह कथन भी युक्तिसंगत नहीं।

श्री कान्तानाथ शास्त्री तैलंग[31] का कथन है ''हमारे विचार से भी शूद्रक मृच्छकटिक के कर्त्ता नही है। इसके कर्त्ता कोई दूसरे कवि है। ऐसा प्रतीत होता है किसी कवि ने भास का 'दरिद्रचारुदत्त' देखा। उन्हें वह अपूर्ण प्रतीत हुआ। उन पर उन्हें पूर्ण करने की धुन सवार हुई। उन्होने आवश्यकता और अपनी रुचि के अनुसार 'दरिद्रचारुदत्तम्' में परिवर्तन किए। उसकी कथा के साथ अपनी कल्पना से रची हुई अथवा गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' से ली हुई गोपालदारक आर्यक के विद्रोह की कथा बढ़ा दी। इस प्रकार मृच्छकटिक तैयार हुआ। कवि ने अपना नाम जानबूझकर छिपाया। प्रस्तावना में 'शूद्रक' के साथ 'किल' का प्रयोग यही सूचित करता है। अपने कथन की पुष्टि के लिए तैलङ्ग महोदय ने कहा है कि (१) प्रस्तावना में शूद्रक का नाम देने से पहले ही कवि ने 'एतत्कविः किल' ऐसा लिखा है फिर पॉचवें और सातवे श्लोक में भी – **'क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव'** तथा **'चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः'** इत्यादि उक्ति में 'किल' शब्द का प्रयोग किया

---

३१. मृच्छकटिक समीक्षा (भूमिका) पृ० ५, ७।

है। ''इस अव्यय का प्रयोग प्रायः 'ऐतिह्य', 'अलीकता' या 'सभावना' सूचित करने के लिए किया जाता है। यह अधिकतर अनिश्चय व्यक्त करता है।'' (२) यहाँ शूद्रक की मृत्यु का वर्णन (अग्निं प्रविष्टः)[३२] होने से भी यह नाटक अन्य कवि की कृति है। बभूव, चकार आदि परोक्षभूतकाल के प्रयोगो से भी यही सिद्ध होता है। (३) यदि यह माना जाये कि प्रस्तावना के ये श्लोक प्रक्षिप्त है तो प्रश्न होता है कि शूद्रक ने बिना नामोल्लेख के ही अपना नाटक क्यो चला दिया था ? जिसने इन श्लोकों का प्रक्षेप किया उसने सन्देह उत्पन्न करने वाली परोक्षभूत की क्रिया आदि ही क्यो रखी? अतः यह नाटक शूद्रक का नहीं किसी अन्य कवि का है। उस कवि ने अपना नाम शूद्रक के नाम से चला दिया है इसके दो कारण हो सकते है –

(क) उसने सोचा होगा कि इसमें आधा भाग भास कवि का है। यदि मैं इसे अपने नाम से प्रसिद्ध करुँगा तो कवि चोर कहलाऊँगा।

(ख) इस नाटक का घटनाक्रम उस समय की सामाजिक परिस्थितियाँ तथा मान्यताओं के विरुद्ध जान पड़ता है। चारुदत्त और शर्विलक जैसे ब्राह्मणों का वेश्याओं के साथ विवाह, ब्राह्मणों का चोर होना, चन्दनक और वीरक जैसे शूद्रों का राज्य के उच्च पदों पर स्थित होना इत्यादि घटनाएँ क्रान्तिकारी विचारो की सूचक है। अतः यदि वह कवि अपने नाम से नाटक को प्रचलित करता तो समाज और राजा अवश्य ही उसकी दुर्गतिकर देते। इसी हेतु उसने एक प्राचीन राजा के नाम से अपनी रचना को प्रसिद्ध किया होगा।

२. **पिशेल का मत** – पिशेल दशकुमारचरित के लेखक दण्डी को मृच्छकटिक का कर्त्ता मानते है। उनके अनुसार दण्डी के तीन प्रबन्ध माने गए है।[३३] जिनमें दशकुमार चरित और काव्यादर्श दो ही उपलब्ध है। तीसरा अज्ञात है

---

३२. 'अग्निं प्रविष्टः' का वास्तविक तात्पर्य क्या है – यह सन्देहास्पद है।

३३. त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः। - राजशेखर।

और वह मृच्छकटिक है। डा० पिशेल ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित युक्तियॉ दी हैं – (i) दण्डी के काव्यादर्श मे **'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि'** यह पद्य उपलब्ध होता है तथा यही

पद्य मृच्छकटिक[३४] में भी प्राप्त होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि दोनो कृतियॉ एक ही व्यक्ति की है। (ii) दशकुमारचरित और मृच्छकटिक में वर्णित सामाजिक दशा में बहुत अधिक समानता है। इससे प्रकट होता है कि दोनो एक ही कवि की कृतियॉ है।

पिशेल की उक्त युक्तियों में कोई सारतत्त्व प्रतीत नहीं होता। 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' श्लोक तो मूलतः भासकृत 'चारुदत्त' नाटक का है। दूसरी युक्ति के सम्बन्ध में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन कृतियों में एक सी सामाजिक दशा का वर्णन होता है, क्या वे एक ही कवि की रचना होती है ? इसके अलावा यह भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि मृच्छकटिक के साथ दण्डी का असली नाम क्यो नहीं प्रसिद्ध हुआ। ' अवन्तिसुन्दरीकथा' नामक रचना की उपलब्धि के कारण विद्वानो ने यह स्वीकार कर लिया है कि ' अवन्तिसुन्दरीकथा' ही दण्डी की तीसरी रचना है। अतः डा० पिशेल की युक्ति का मूल आधार ही समाप्त हो जाता है।

३. श्री नेरुरकर का मत – श्री नेरुरकर भास को मृच्छकटिक का कर्ता बताते हैं।[३५] यहाँ प्रश्न उठता है कि भास के वास्तविक नाम से यह नाटक क्यों नहीं प्रचलित हुआ ? इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है कि मृच्छकटिक की प्रस्तावना में शूद्रक को राजा कहा गया है किन्तु भास या दण्डी

३४. मृच्छ० १.३४ लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेन दृष्टिर्विफलता गता।।

३५. नेरुरकर - मृच्छकटिक, भूमिका पृ० १४।

राजा नहीं है। भास ने अपने चारुदत्त नाटक का परिवर्द्धित रूप ही मृच्छकटिक के रूप में प्रस्तुत किया, यह कल्पना भी युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती, अतएव निस्सार है।

४. स्कन्दपुराण के कुमारिका खण्ड में राजा शूद्रक का उल्लेख किया गया है। कुछ विद्वान् इन्हें ही मृच्छकटिक का कर्त्ता मानते है।[३६] चन्द्रबली पाण्डेय जी ने शूद्रक को आन्ध्र वंश का वसिष्ठी पुलुमावि माना है। इसके अनुसार 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' मे इन्द्राणिगुप्त का दूसरा नाम शूद्रक बताया है, अतः वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि ही इन्द्राणीगुप्त अथवा शूद्रक है और यही शूद्रक मृच्छकटिक का कर्त्ता है।

डा० देवस्थली का मत है कि मृच्छकटिक की प्रस्तावना के श्लोक शूद्रक के नहीं है, किन्तु इस बात को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए उनके पास कोई तर्क नहीं। इससे यह कहा जा सकता है कि वे परम्परा के पुजारी हैं। उनका कथन है कि हमारा इतिहास का ज्ञान अपूर्ण होने के कारण हम शूद्रक के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहने में असमर्थ है। आज हम प्राचीन भारत के किसी राजा से शूद्रक की अभिन्नता नहीं सिद्ध कर सकते, परन्तु वे इसी तरह संसार के प्राणी थे और मृच्छकटिक उन्हीं की रचना है। जब तक इस बात का सप्रमाण खण्डन नहीं किया जाता, तब तक हम यही मानते है। इस प्रकार डा० देवस्थली ने अपने मत के समर्थन के लिए कोई प्रमाण नहीं दिया है, अपितु परम्परागत विचारों को नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया है।

प्रो० कोनो का कथन है कि आभीर वंश का राजा शिवदत्त ही शूद्रक है। इसका राज्यकाल ईसा की तृतीय शताब्दी है। प्रो० कोनो के मत का आधार 'गोपालदारक आर्यक' यह शब्द है, क्योंकि आभीर और गोपाल समानार्थक हैं। इसी प्रकार शब्दों की समानता के आधार पर कुछ विद्वानो ने शूद्रक का समय द्वितीय शताब्दी

३६. स्कन्दपुराण कुमारिकाखंड, हरिदत्त शास्त्री, संस्कृत-काव्यकार, पृ० ५०।

त्रिषु वर्ष सहस्रेषु कलेर्यातिषु पार्थिवः।
त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यां भुवि भविष्यति।।१।।
शूद्रको नाम वीराणामधिपः सिद्धिमित्र सः।
चर्चितायां यमाराध्य लप्स्यते भूभयापहः।।२।।

निश्चित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार मृच्छकटिक ८.३४ में वर्णित 'रुद्रो राजा' क्षत्रप वंश का रुद्रदमन ही है जिसका समय १३० ईस्वी है। ये सब कल्पनाएं नाम मात्र के साम्य पर आधारित है, अतः कोई महत्व नहीं रखती।

राजशेखर का कथन है कि रोमिल और. सोमिल ने 'शूद्रक कथा' नाम का ग्रन्थ लिखा था। बाण ने कादम्बरी और हर्षचरित में शूद्रक का उल्लेख किया है, यथा कादम्बरी में शूद्रक की राजधानी विदिशा बतलाई है और हर्षचरित मे चन्द्रकेतु के शत्रु के रूप मे शूद्रक का उल्लेख किया है। दण्डी ने दशकुमारचरित और अवन्तिसुन्दरीकथा मे शूद्रक का निर्देश किया है। सोमदेव ने कथासरित्सागर मे, कल्हण ने राजतरंगिणी मे शूद्रक के विषय मे लिखा है। वेतालपञ्चविशति मे भी शूद्रक का नाम आया है, जहॉ शूद्रक की राजधानी वर्धमान या शोभावती बतलाई गई हैं। इनके अतिरिक्त शूद्रकवध, विक्रान्तशूद्रक और शूद्रकचरित नाम के ग्रन्थों का भी शूद्रक से स्पष्ट सम्बन्ध प्रतीत होता है यद्यपि ये ग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं, किन्तु अन्य उपलब्ध ग्रन्थों में इनका प्रासंगिक वर्णन मिलता है। वामन ने काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में शूद्रक का नामतः निर्देश किया है।[३७] वामन ने (आठवीं श०) मृच्छकटिक के कई उदाहरण भी प्रस्तुत किये है।[३८]

उपर्युक्त कथन से यह प्रकट होता है कि शूद्रक को कल्पित व्यक्ति कहना युक्तिङ्गत नहीं कहा जा सकता। उसका कवि होना भी सिद्ध ही है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि शूद्रक नाम के एक ही नहीं अनेक राजा हुए है। किन्तु यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि मृच्छकटिक का कर्त्ता शूद्रक कौन-सा है ? कुछ समालोचकों का यह भी अनुमान है कि सम्भवतः शूद्रक नामक किसी कवि ने मृच्छकटिक लिखा होगा। वह कवि राजा शूद्रक से भिन्न ही रहा होगा, किन्तु कालान्तर में उस कवि तथा राजा शूद्रक को एक ही मान लिया गया। यह

---

३७ अधि० ४, अ० २, ४ – "शूद्रकादिरचितेषु प्रबन्धेषु"

३८. अधि० ४, अ० ३, २३ – "द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिहासन राज्यम्"
तथा अधि० ५, अ० १, ३ "यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां—— कीटमुखावलीढः।"

काल बारहमिहिर से पूर्व होना चाहिए क्योकि वरहमिहिर से पूर्व मगल और वृहस्पति को शत्रुग्रह माना जाता था और वाराहमिहिर ने इन्हे मित्र ग्रह माना है इससे यह भी स्पष्ट सकेत मिलता है कि शूद्रक का स्थिति काल वाराहमिहिर (मृत्यु ५८६ ई०) से पूर्व अवश्य रहा होगा। अन्यथा कवि वाराहमिहिर के सिद्धान्त के विपरीत लेखनी कैसे उठाता ? दूसरे नाटक में वर्णित अस्त-व्यस्त सामाजिक स्थिति का शब्द चित्र भी मृच्छकटिक को पॉचवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना बताई गई है।

पूर्व सीमा में धर्माधिकारी का कथन – ''आर्य चारुदत्त। निर्णये वयं प्रमाणम्। शेषुतु रात्रा। तथापि शोधनक। विज्ञाप्यतां राजा पालकः ।

अयं हि पातकी विप्रो न बध्यो मनुरब्रीवीत्।
राष्ट्रादस्मात्रु निर्वास्यो विभवैः रक्ष तैः सह।।

– मृच्छकटिक ६.३६

मनुस्मृति के सर्वथा अनुरूप है। अतः मृच्छकटिक की रचना मनुस्मृति (वि०सं०पूर्व द्वितीय शतक) के अनन्तर ही मान्य होना सम्भव है। ''हा मृच्छकटिक की सामाजिक और राजनीतिक अवस्था गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद और हर्ष के साम्राज्य के उदय के पूर्व की अवस्था से मिलती है। इस काल में कोई प्रभावशाली सम्राट न होनें के कारण देश में अनियंत्रित व्यवस्था थी। अतः इस आधार पर कहा जा सकता है कि मृच्छकटिक का काल ई० सन् एवं सम्भवतः पंचम षष्ठ शतक है। तैलङ्ग, आचार्य बलदेव उपाध्याय एवं भोलाशकर व्यास आदि विद्वानो ने भी शूद्रक के सम्बन्धन में मतभिन्नता रखते हुए भी स्थिति काल के विषय में एक मत हैं।

विवेच्य कृतियों की शास्त्रीय समीक्षा

दरिद्रचारुदत्तम्

- कथावस्तु
- पात्र-चित्रण
- कलापक्ष
- नाट्यकला

दरिद्रचारुदत्तम्

कथावस्तु

महाकवि भास की नाट्य-श्रृंखला में 'चारुदत्त' अन्तिम रुपक है। यह नाटक चार अङ्कों में विभक्त है। जिसमें उज्जयिनी के सार्थवाह चारुदत्त और गणिका वसन्तसेना के प्रेम को लेकर कथा निषद्ध की गयी है। यह नाटक एकाएक समाप्त हो जाता है जिससे प्रतीत होता है कि भास की मृत्यु के कारण यह पूरा नहीं हो सका था, जिसको परिवर्द्धित कर शूद्रक ने मृच्छकटिक की रचना की। नाटक का नामकरण ब्राह्मण पुत्र आर्य चारुदत्त के नाम पर हुआ है, जिसके कृत्यों पर नाटक की समस्त घटनाएँ अवलम्बित हैं। चारुदत्त की दरिद्रता के कारण इसे दरिद्रचारुदत्त भी कहा जाता है। इसमें जहॉ एक ओर चारुदत्त की सज्जनता दिखाई देती है वहीं दूसरी ओर शकार की दुर्जनता। इसकी कथावस्तु अत्यन्त सुगठित है, जो सभी को अपनी ओर आकृष्ट करती है। संक्षेप में कथावस्तु इस प्रकार है —

प्रथम अक में नान्दी के अनन्तर स्थापना मे नट रङ्गमंच पर दिखायी पड़ता है। विदूषक चारुदत्त की प्रशसा करता है और कहता है कि इस समय चारुदत्त दारिद्र्य से ग्रस्त है, पर वह इसका साथ नहीं छोंड़ेगा। दूसरे दृश्य मे छठीं तिथि के दिन देवबलि के लिए वह चारुदत्त के पास फूल ले जा रहा है। इसी समय उसे पूजा से लौटता हुआ चारुदत्त दिखायी देता है। चारुदत्त को अपनी दरिद्रता पर अत्यधिक दुःख है। विदूषक उसे सान्त्वना देता है। विट एवं शकार के द्वारा पीछा की गयी गणिका वसन्तसेना प्रविष्ट होती है। तदनन्तर शकार के द्वारा वसन्तसेना को ज्ञात होता है कि आर्य चारुदत्त का निवास स्थान भी समीप में ही है। वह अंधेरे में रक्षा हेतु चारुदत्त के निवास-स्थान के पास खड़ी हो जाती है। चारुदत्त विदूषक को मातृ देवियों को बलि अर्पण करने के निमित्त चतुष्पथ पर जाने का आग्रह करता है। विदूषक अकेले जाने मे डरता है, पर रदनिका के साथ जाने पर वह तैयार हो जाता है, विदूषक रदनिका को द्वार खोलने को कहता है, रदनिका दरवाजा खोलती है, बाहर खड़ी वसन्तसेना

ऑचल के छोर से हवा मार कर दीपक को बुझा देती है। विदूषक रदनिका को चतुष्पथ पर चलने के लिए कह कर स्वय दीपक जलाने अन्दर चला जाता है। इसी बीच वसन्तसेना भी घर मे प्रवेशकर जाती है। बाहर विट शकार को उत्तेजित करता है और वह रदनिका को वसन्तसेना जानकर पकड़ लेता है। तदुपरान्त विदूषक दीपक लेकर बाहर आता है और शकार तथा विट द्वारा प्रताड़ित होती हुई रदनिका को बचा लेता है। विट विदूषक से इसके लिए क्षमा मॉगता है और आर्य चारुदत्त का भय मानकर चला जाता है। शकार वसन्तसेना को मॉगता है तथा इसके लिए विदूषक से वादविवाद भी होता है। इसी प्रसङ्ग में वसन्तसेना को वापस न करने पर मरणान्तिक वैर-भाव की आशका देकर जला जाता है। देवकार्य की समाप्ति की सूचना देने के लिए विदूषक तथा रदनिका चल देते है।

चतुर्थ दृश्य मे चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझकर देवकार्य के विषय में पूँछता है। वह अपना उत्तरीय (अवारक) देता है और उसे भीतर ले जाने को कहता है, लेकिन वह मौन रहती है इसी समय विदूषक और रदनिका प्रविष्ट होती है। विदूषक शकार का सन्देश देता है। वसन्तसेना पहचान जाती है। वह चारुदत्त के पास अपने आभूषण न्यास (धरोहर) रूप में रखकर- विदूषक की सुरक्षापूर्ण देखरेख मे अपने घर चली जाती है।

द्वितीय अङ्क मे गणिका वसन्तसेना तथा चेटी आपस में बातें कर रही हैं। वसन्तसेना वणिक्पुत्र चारुदत्त के प्रति अपनी अनुरक्ति बताती है तथा चेटी चारुदत्त को दरिद्र कहती है। वहीं पर वसन्तसेना कहती है कि यह सौभाग्य की ही बात है क्योंकि दरिद्र की कामना करने पर यह अपवाद नहीं रहेगा कि गणिकायें धनिकजनों पर आश्रित होती है। इसी क्षण कोई व्यक्ति डरा हुआ-सा वसन्तसेना के घर आता है वसन्तसेना उसे सान्त्वना देकर उसके बारे में पूॅछती है। वह बताता है कि पाटिलपुत्र का रहने वाला है। वह जन्म से वणिक् किन्तु भाग्य से संवाहक बन गया। उज्ञयिनी में रईसों को सुनकर वह यहाँ आया और चारुदत्त के यहॉ संवाहक का कार्य करने लगा। चारुदत्त के यहाँ उसको अत्यधिक स्नेह प्राप्त हुआ। पर उसके निर्धन होने पर भृत्यों का पालन-पोषण सम्भव न रहा तथा चारुदत्त ने उसको दूसरे की सेवा करने

को कह भेज दिया। वह किसी की सेवा न करना ठीक समझकर जुआरी बन गया। अतः बहुत दिन जुए में जीतने के बाद एक दिन हार गया, तथा विजेता की दृष्टि उस पर पड़ गयी। वह उसका पीछा कर रहा है। वसन्तसेना जीतने वाले को उसका द्रव्य दे देती है तथा संवाहक को फिर से चारुदत्त की सेवा में जाने को कहती है। किन्तु संवाहक वहाँ न जाकर संन्यास धारण कर लेता है। संवाहक के जाने के पश्चात् वसन्तसेना के यहॉ चेट आकर बताता है कि राजमार्ग पर एक हाथी ने परिव्राजक पकड़ लिया। कोई भी व्यक्ति छुड़ाने को उद्यत नहीं हुआ, पर उसने स्वयं हाथी का शुण्डदण्ड पकड़कर उसे मुक्त कर दिया। उसकी बातों पर सभी लोग आश्चर्यान्वित होकर वाह-वाह करने लगे किन्तु किसी ने उसको कुछ भी नहीं दिया पर एक व्यक्ति ने निर्धनतावश कुछ और न देकर अपना प्रावारक ही दे दिया। वसन्तसेना उसका नाम पूँछती है पर चेट उसके बारे में कुछ भी नही जानती। उसी वक्त चारुदत्त वही से गुजरता है और चेट उसे दिखा देता है कि इसी व्यक्ति ने प्रावारक दिया है।

तृतीय अंक में चारुदत्त और विदूषक मच पर आते है। चारुदत्त विदूषक से वीणा की प्रशसा करता है। परन्तु विदूषक को उसमें विशेष अभिरुचि नहीं है। तदनन्तर चारुदत्त तथा विदूषक चेट को पुकारते हैं। चेट दरवाजा खोलता है। अन्दर जाकर दोनो पैर धोकर सोने की तैयारी करते हैं। अष्टमी तिथि को सुवर्ण की सुरक्षा का भार विदूषक ने अपने ऊपर लिया था। एतदर्थ चेटी विदूषक को सुवर्ण भाण्ड देना चाहती है। विदूषक तो पहले टालमटोल करता है पर चारुदत्त की आज्ञा से उसे ले लेता है। चारुदत्त सो जाता है। विदूषक भी सुवर्णभाण्ड हॉथ में लिए हुए सो जाता है। सज्ञलक प्रवेश करता है, वह सुरंग बनाकर चारुदत्त के घर में घुस आता है। वह दीपक बुझा देता है और विदूषक के हॉथ से स्वर्ण मजूषा ले लेता है और भाग जाता है। रदनिका प्रवेश करती है, और विदूषक से बताती है कि सेंध बनाकर चोर घुस गया विदूषक उससे कहता है कि अच्छा हुआ कि मैने स्वामी को स्वर्णभाण्ड दे दिया। यह सुनकर चारुदत्त पूँछता है कि कब दिया ? वह उत्तर देता है आधीरात को।

इस तरह चारुदत्त को यह विश्वास हो जाता है कि स्वर्णभाण्ड चुरा

लिया गया। उसे इस बात से कष्ट है कि लोग मेरी दरिद्रता के कारण चोरी की बात पर विश्वास न करेंगे और मुझे ही बेईमान समझेगे। इसी समय चारुदत्त की पत्नी ब्राह्मणी प्रवेश करती है। चेटी उससे चोरी की बात बता देती है। ब्राह्मणी को कष्ट होता है, पर वह अपने पतिदेव को लोकापवाद से बचाने के लिए शतसहस्र मूल्यवाली मुक्तावली विदूषक के हाथ भेजती है। चारुदत्त सुवर्णभाण्ड के बदले मुक्तावली देने के लिए विदूषक को वसन्तसेना के घर भेजता है।

चतुर्थ अङ्क में एक चेटी आकर वसन्तसेना से कहती है कि यह आभरण तुम्हारी माता ने भेजा है, इसे पहनकर बाहर खड़ी गाड़ी में बैठकर राजश्यालक के पास जाओ। वसन्तसेना जाने से इनकार कर देती है। इसी समय सज्ज्ञलक वहॉ आता है। वह मदनिका का प्रेमी है। उसी को मुक्त कराने के लिए उसने चारुदत्त के घर चोरी की और सुवर्णभाण्ड को प्राप्त किया। मदनिका को पास बुलाता है और उससे बातें करता है। वसन्तसेना भी उन्हें देखकर छिप जाती है और उनकी बातें सुनने लगती है। सज्ज्ञलक उसे हार दिखाता हैं और चेटी देखकर तुरन्त पहचान जाती है। सज्ज्ञलक अपनी चोरी की बात बताता है। मदनिका कहती है कि वह जाकर वसन्तसेना को दे दे और कहे कि चारुदत्त ने भेजा है वह स्वीकार लेता है और मदनिका उसे दूर बैठा देती है। इसी समय वहॉ विदूषक आता है और चारुदत्त की आज्ञानुसार शतसहस्र मूल्यवाली माला को लौटा देता है। वह जुए में चारुदत्त को हारने की झूँठी बात भी बताता है। वसन्तसेना, चारुदत्त के इस व्यवहार से और अधिक अनुरक्त हो जाती है। विदूषक के जाने पर मदनिका सज्ज्ञलक को गणिका के पास ले जाती है। वह अपने को चारुदत्त द्वारा भेजा गया बताता है और हार को लौटा देता है। गणिका कहती है कि उसे सज्ज्ञलक के साहस का पता है कि किस प्रकार वह हार लाया है। वह गाड़ी मॅंगाती है। मदनिका का स्वयं अलंकरण कर सज्ज्ञलक के साथ उसे विदा करती है। सज्ज्ञलक तथा मदनिका, वसन्तसेना के इस उपकार पर नतमस्तक होते है और गाड़ी पर चढ़कर चले जाते है।

वसन्तसेना को इन घटनाओं पर आश्चर्य होता है। वह समझ नही पाता कि यह सब स्वप्न हुआ है अथवा यथार्थ है। वह चतुरिका नामक चेटी को बुलाती

है। गणिका उससे कहती है कि इस अलंकार को पहन कर वह चारुदत्त के पास अभिसरण करेगी। चेटी कहती है कि अभिसार के योग्य दुर्दिन भी हो गया है। गणिका कहती है कि 'तू मेरे काम को और उद्दीप्त न कर।' दोनों चली जाती है और नाटक समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत प्रकरण में ''कुत्र न खलु दरिद्रब्राह्मणं लभेय। एष आर्य चारुदत्तस्य वयस्य आर्यमैत्रेयो नाम ब्राह्मण इत एवागच्छति।'' सूत्रधार का यह कथन चारुदत्त की प्राप्ति हेतु बीज का वपन करता है। अतः यहाँ प्रारम्भ नामक अवस्था और बीज नामक अर्थ प्रकृति है। इसके प्रयोग से मुख सन्धि का आरम्भ ही होता है। यह सन्धि गणिका वसन्तसेना का आर्य चारुदत्त के प्रति शील की महत्ता के कारण आकृष्ट होना और स्वयं को समर्पित कर देना, कथानक तक चलती है। इसमे परिकर, परिन्यास, विधान, करण, उद्भेद आदि सन्ध्यंग विद्यमान है। इस सन्धि की समाप्ति गणिका के इस कथन से भगवान् की कृपा से शत्रुओं के विरोध के कारण मै प्रियजन के समीप आ गयी, वचन से होती है। यहाँ बीज के प्रति प्रोत्साहन पाये जाने के कारण भेद नामक सन्ध्यंग है। विदूषक का नायक के प्रति गणिका वसन्तसेना के विचारों को प्रस्तुत करना तथा वसन्तसेना का अनुराग दिखलाना बीज के लक्ष्यालक्ष्य रूप में फूट पड़ने के कारण प्रतिमुख सन्धि है।

''हा धिक् दारिद्र्यः खलु एषः'' चेटी के इस कथन में कथा के बीज के नष्ट हो जाने पर पुनः गणिका वसन्तसेना द्वारा ''अतः खलु कामयते'' कथन में बीज का अन्वेषण किए जाने के कारण इस स्थल पर गर्भ नामक सन्धि है।

तीसरे अक के प्रारम्भ में विदूषक तथा नायक परस्पर आलाप करते है। निद्रा का न आना और भयभीत होकर विदूषक का स्वर्णभाण्ड को दे देना ही अवमर्ष सन्धि है, क्योंकि इसके द्वारा बीज को प्रकट किया गया है। भास स्वर्णभाण्ड के अपहृत हो जाने पर चारुदत्त वसन्तसेना के समीप मुक्तावली भेजता है। वसन्तक मुक्तावली को लेकर वसन्तसेना के पास पहुँचता है। इस कथन में बीज में प्रयुक्त कथावस्तु का समाहार होने के कारण निर्वहण सन्धि है। वसन्तसेना चारुदत्त की प्राप्ति

के विषय में चिन्तित है। वह अपना शरीर अलंकृत कर अभिसार करती है और चारुदत्त की प्राप्ति रूपी बीज का अन्वेषण होने से विवोध नामक अंग है।

यह प्रकरण अपूर्ण होने पर भी नाट्यकला से समृद्ध है। वसन्तसेना उन्मन्त हाथी से परिव्राजक की रक्षा करने वाले व्यक्ति को प्रावारक देने के गुण से चारुदत्त को अपना हृदय समर्पित कर देती है। वह अनुभव करती है कि नगर में अनेक संभ्रान्त व्यक्ति निवास करते है, पर रक्षक को पुरस्कार देने का किसी ने प्रयास नहीं किया। चारुदत्त गुणज्ञ और उदार है। उसने प्रावारक देकर मेरे हृदय को जीत लिया है। इस प्रकार वसन्तसेना के उक्त कथन से श्रृंगार रस के पोषण में नाटक आरम्भ होता है। नाटक के मध्य में दरिद्रता का नग्न चित्रण कर करुण रस की अनुभूति सुन्दर रूप में करायी है। लोक-रजन और लोक-रक्षण करने में भास अत्यन्त ही सफल हैं। नाटक अपूर्ण है फिर भी ब्राह्मण का गणिका के प्रति स्नेह दिखला कर श्रृगार रस का पोषण किया गया है।

पात्र-चित्रण

रुपक में पात्रों का विशेष महत्त्व होता है। रचनाकार .पात्रों के माध्यम से तत्कालीन जीवन का जीवन्त चित्र चित्रित करने में सफल हो पाता है। उनके माध्यम से काल विशेष का परिवेश, वातावरण, सभ्यता, संस्कृति आदि को वह अभिव्यक्ति प्रदान करता है। पात्रों की जीवन्तता तथा प्रभावोत्पादकता उसकी नाट्य कृतियो को सफल एवं सुन्दर बनाने में सक्षम होती है। पात्र अथवा 'नेता' रुपकों के भेदक तत्त्वों में से एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। अभिनय करने वाले पात्रों के अर्थ में नेता के अतिरिक्त भरत, भरतसुत, नट, शैलूष, महानट, कुशीलव, शैलालिन् आदि अन्य शब्दों का भी प्रयोग होता है। आचार्य धनजय[1] ने (क) धीरोद्धत, (ख) धीरोदात्त, (ग) धीरललित एवं (घ) धीर प्रशान्त नायक के चार भेद किए है। नायक के सहायक रूप मे श्रृंगार सहाय, धर्म सहाय, अन्तःपुर सहाय, दण्ड सहाय, कार्यान्तर सहाय एवं अन्य (दूती, सखी, दासी, धात्रेयी, लिगनी, शिल्पिनी आदि) एवं पीठमर्द प्रतिनायक का भी वर्णन किया गया है।[2]

नाटक में प्रमुख भूमिका का वहन करने वाली, नायक की मुख्य पत्नी ही नाटक मे नायिका रुपेण वर्णित होती है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र मे नायिकाओं के चार भेंदों का उल्लेख किया है – दिव्या, नृप-पत्नी, कुल स्त्री और गणिका। नाट्यदर्पणकार[3] ने नाट्यशास्त्र के आधार पर ही नायिकाओं के चार भेद बतलाये है – कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया एव पण्यकामिनी। अवस्था तथा काम भावना के आधार पर उपर्युक्त नायिकाओं को मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा पुनः तीन वर्गों में विभाजित किया

---

१ नाट्यदर्पण, उद्धतोदात्त-ललित-शान्ता धीर- विशेषणाः।
वर्ण्याः स्वभावाश्चत्वारः, नेतृणां मध्यमोत्तमाः।।

(क) दशरुपक पृष्ठ ८५।
(ख) दशरुपक पृष्ठ ८१।
(ग) दशरुपक पृष्ठ ७६।
(घ) दशरुपक पृष्ठ ८०।

२. दशरुपक पृष्ठ ६२, ६३, १२०, १३२, १३३।।

३ नाट्यदर्पण पृष्ठ १७६ 'नायिका कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया पण्यकामिनी।

जा सकता है। इसी तरह अवस्था भेद से नायिकायें आठ प्रकार की होती है – **प्रोषितप्रिया, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, विरहोत्कण्ठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनभर्तृका एवं अभिसारिका।**[४] इन समस्त नायिकाओं में बीस गुणों की स्थिति मानी गयी है ये गुण अलंकार कहे जाते है। इन बीस अलकारों में से कुछ तो अङ्गज, कुछ स्वभावज और कुछ अयलज हैं। भाव, हाव, और हेला अङ्गज, विभ्रम, विलास, विच्छित्ति, लीला, विब्बोक, विहृत, ललित, कुट्टमित, मोट्टायित और किलकिञ्चित स्वभावज, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, औदार्य, धैर्य और प्रागल्भ्य अयलज है।[५] विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण मे तपन, मुग्धता, विक्षेप, मद, कुतूहल, हसित, चकित और केलि आठ स्वभावज अलकार और बताए है। इसके अतिरिक्त आचार्य शारदातनय ने नाट्यशास्त्र मे निम्न पात्रों का भी उल्लेख किया है –

उपनायक, ऋत्विक्, पुरोहित, तपस्वी, ब्राह्मण, व्रती, मन्त्री, सैन्यपाल, कुमार, सुकृत, कामसचिव, विदूषक, विट, दासी, कुमारी, रंगोपजीवनी, प्रेक्षणिका तथा दूती।[६]

महाकवि भास के पात्र आकार मात्र नहीं, अपितु सजीव प्राणी हैं। उनका चरित्र इतना विशद एवं उत्कृष्ट है कि वे साहित्यसंसार में हमेशा स्मरण किए जाएँगे। 'दरिद्रचारुदत्तम्' में आये हुए पात्र निम्नवत् है —

पुरुष पात्र

नायक	:	दरिद्र सार्थवाह पुत्र : चारुदत्त।
विदूषक	:	(मैत्रेय) चारुदत्त का मित्र।
शकार	:	(संस्थापक) राजा का श्यालक : प्रतिनायक

४. नाट्यदर्पण, पृष्ठ १८०-१८१।।

५. नाट्यदर्पण पृष्ठ १८१ 'भावाद्यायौवने स्त्रीणामलङ्कारास्त्रयोऽङ्गजाः।
दशस्वाभाविकश्चैते क्रयारुपास्त्रयोदश।।
सति भोगे गुणाः सप्तायलजाश्च स्वभावजाः।
नावश्यम्भाविनोऽप्येषा, विशतिः स्त्रीषु मुख्यतः।।

६. भावप्रकाशन, गायकवाड़ ओरियन्टल संस्कृत सीरिज पृष्ठ २८६।।

विट	:	शकार का सहचर
संवाहक	:	चारुदत्त का भूतपूर्व भृत्य, जुआड़ी।
चेट	:	(कर्णपूर) वसन्तसेना का दास।
सज्ज्लक	:	मदनिका का प्रेमी।
चेट	:	(वर्धमानक) चारुदत्त का घरेलू अनुचर।
सूत्रधार	:	रुपक का प्रधान नट।

स्त्री पात्र

गणिका	:	नायिका : वसन्तसेना।
ब्राह्मणी	:	चारुदत्त की भार्या।
रदनिका	:	चारुदत्त की दासी (चेटी)।
मदनिका	:	वसन्तसेना की विश्वस्त दासी (सज्ज्लक की प्रेमिका)।
विच्छित्तिका	:	वसन्तसेना की परिचारिका।
चतुरिका	:	वसन्तसेना की परिचारिका।
नटी	:	सूत्रधार की स्त्री।

प्रमुख पात्रो की चारित्रिक विशेषताए इस प्रकार है —

चारुदत्त – यह 'दरिद्रचारुदत्तम्' नाटक का नायक है। इसे उज्ज्ञयिनी के एक व्यावसायिक ब्राह्मण के रूप में उपस्थापित किया गया है, जो परोपकारी प्रवृत्ति एवं अपने असाधारण गुणों से सबको प्रभावित करता है। वह दरिद्र सार्थवाह का पुत्र और स्वयं भी सार्थवाह व्यापारियों के काफिले का मुखिया है। द्वितीय अंक में जब चेटी वसन्तसेना से कि "क्या विद्याविशेष से रमणीय किसी ब्राह्मण को चाहती हो ?" यह जानने की इच्छा प्रकट करती है तो वह उत्तर देती है **'पूजनीयः खलु स जनः'**

अर्थात् नहीं। फिर भी वह चारुदत्त से अपना प्रणय-सूत्र जोड़ती है। एकमात्र इसका यही कारण है कि वह किसी ऐसे ब्राह्मण से प्रेम नहीं करती जो जन्मना एवं कर्मणा दोनों प्रकार से ब्राह्मण है। वह ऐसे पुरुष को चाहती है जो जन्मना ब्राह्मण एव कर्मणा वैश्य हो।

द्वितीय अंक[७] में संवाहक आर्य चारुदत्त का परिचय देते हुए वसन्तसेना से कहता है कि ''चारुदत्त रूपवान्, विद्वान, मदरहित, ललित एवं अपने सौन्दर्य पर अभिमान न करने वाला, चतुर, मधुर, दक्ष, सहृदय, प्रतिष्ठित और याचकों को सन्तुष्ट करने वाला है। दान देकर किसी से कहता नही। अल्प उपकार को भी स्मरण करता है। बहुत अपकार को भी विस्मृत कर देता है। माननीये, अधिक क्या कहूँ ? उस गुणवान् कुल पुत्र के गुणों का वर्णन करने के लिए ग्रीष्मकाल का लम्बा दिन भी अपर्याप्त है। संक्षेप मे दया- दाक्षिण्यादि गुणों से वह ऐसा जान पड़ता है कि मानो अपना शरीर दूसरों के लिए ही धारण करता है।'' वह संगीत विद्या का प्रेमी एवं चतुर पारखी भी है।[८] अपनी असीम उदारता एवं जुए की प्रवृत्ति के फलस्वरूप जल्दी ही वह धनहीन हो जाता है। उसे अपनी गरीबी पर पश्चात्ताप होता है। तथा ऐसी परिस्थिति मे उसे मित्रों में अपनी उपेक्षा का कटु अनुभव होता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि **'पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते'** **'दारिद्र्यं षष्ठं महापातकम्'** और **'सवेशून्यं दरिद्रस्य'** इत्यादि। ऐसी स्थिति में भी वह इस बात से सन्तुष्ट है कि उसका बौद्धिक सन्तुलन बरकरार है वह चारुदत्त दरिद्रावस्था मे भी मित्रों के झूँठे कथन या अपराधों पर झुँझलाता नहीं, अपितु उसे सहन कर लेता है।[९]

चारुदत्त वीर स्वभाव का व्यक्ति है। जब विदूषक उसे सूचित करता है कि शकार वसन्तसेना को घर से निकालने की धमकी दे गया है, तो वह उसे केवल

---

७. चारु० द्वितीय अंक ''आकृतिमान् अविभ्रन् अनुत्सिक्तो ललितो ललिततयाविस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षिण्योऽभिमत आचितस्तुष्टो भवति। दत्त्वा न विकत्थते। अल्पमपि स्मरति, बहुकमप्यपकृतं विस्मरति। अज्जुके कि बहुना, तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्भागमपि सुदीर्घेणापि ग्रीष्मदिवसेन वर्णयितु न शक्यम्। कि बहुना, दक्षिणतया परकीयमिवाहमनः शरीरं धारयति।''

८ चारु० ३.१।।

९. चारु० तृतीय अक ' हस्त हृत सुवर्णभाण्डकम्।'

उपेक्षा भाव से सुन लेता है। इन अनेक वैयक्तिक गुणों के अतिरिक्त चारुदत्त मे देवी-देवताओं के प्रति पर्याप्त रूपेण निष्ठा भी विद्यमान है।[10]

चारुदत्त, रूप एवं यौवन से सम्पन्न वसन्तसेना को हृदय से प्यार करता है, फिर भी वह अपने गार्हस्थ्यजीवन एवं धर्म को नहीं भुला पाता। उसे ब्राह्मणी जैसी पत्नी तथा विदूषक जैसे मित्र का विशेष गौरव प्राप्त है, इसकी वह स्वयं प्रशसा करता है।[11]

चारुदत्त में एक चतुर नागरिक का गुण है। उसे मालूम है कि अपनी प्रेयसी को किस तरह अनुकूल बनाया जा सकता है। यह मालूम होने पर कि जिसे वह रदनिका समझ रहा था वह वसन्तसेना है, वह उससे कहता है – **'यद्येवमहमपि तावदविज्ञातप्रयुक्तेन प्रेष्यसमुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि।'** वसन्तसेना भी उसे हृदय से चाहती थी, इसका स्वय उसे पता है।[12] इस प्रकार चारुदत्त का चरित्र अनेक वैयक्तिक एवं नैतिक गुणो से परिपूर्ण है।

वसन्तसेना – वसन्तसेना 'दरिद्रचारुदत्तम्' की नायिका एवं उज्ञयिनी की प्रसिद्ध गणिका है। इसने चारुदत्त के साथ रागात्मक सूत्र जोड़ लिया है। वह अभिजात्य कुल की महिला होने का गौरव करती है। जब चारुदत्त भ्रमवश उसे परिचारिका समझ अपने इस व्यवहार के अपराध की क्षमा याचना करता है, तो वह भी अपने इस अपराध की क्षमा याचना करती हुई कहती है – **'अदत्तमभिप्रवेशप्रघर्षणेनापराद्धाहामार्य शीर्षेण प्रसादयामि।'** अर्थात् गृह प्रवेश की अनुभूति प्राप्त किए बिना मै आपके घर मे बलपूर्वक चली आयी हूँ। अतः इस अपराध के लिए आप मुझे क्षमा कीजिए।

वसन्तसेना चारुदत्त के उत्कृष्ट गुणों के कारण अपना हृदय उसे समर्पित करती है उसमे साहस और शरणागत-वत्सलता दोनो ही गुण विद्यमान है। जव

---

१०. चारु० प्रथम अंक ''मूर्ख! यथाविभवेनार्च्यताम्। भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि। तद् गम्यताम्।।

११. चारु० १.७ वयस्य! किमर्थ सन्ताप करिष्ये। किंचाह दरिद्रः, यस्य मम,
विभवानुवशा भार्या समदुःखसुखो भवान्।
सत्त्वं च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम्।।

१२ चारु० १.२८।।

संवाहक उसके घर शरण लेता है तो वह शरणागत रक्षक होने के कारण उसे अपने यहाँ स्थान दे देती है। साथ ही सवाहक के द्वारा चारुदत्त का परिचय प्राप्त कर उसका विशेष सत्कार करती है। चारुदत्त की दरिद्रता से वह अच्छी तरह परिचित है, फिर भी वह उससे प्यार करती है। अन्य वेश्याओं के समान उसका प्रेम अर्थमूलक और कृत्रिम नही है। वह तो उसके गुणो से आकर्षित है।

वसन्तसेना मे कृपणता रञ्चमात्र भी नहीं है। वह स्वभावतः परोपकारी प्रवृत्ति की महिला है उसकी उदारता संवाहक के संरक्षण में दृष्टिगोचर होती है। वह संवाहक को विजयी जुआरियों से मुक्ति दिलाने के लिए पर्याप्त धन देती है। वह आत्मश्लाघा से रहित है। उपकृत व्यक्ति से प्रत्युपकार की कामना नहीं करती। दास-दासियों के साथ भी वसन्तसेना का मधुर व्यवहार है। सज्जलक मदनिका के प्रणयवश चारुदत्त के यहॉ चोरी का आभूषण लाता है। वसन्तसेना उन आभूषणों को पहचान कर रुष्ट नही होती, किन्तु वह अपनी दासी मदनिका को उन समस्त आभूषणों को पहना कर सज्जलक के साथ उसका परिणय करा देती है और उसे सदा के लिए दासता से मुक्त करा देती है। वह गम्भीर प्रकृति की नायिका है, और सदा इस बात का प्रयत्न करती है कि ऐसा कोई भी कार्य उसके द्वारा सम्पन्न न हो जिससे समाज में उसका उपहास हो।

शकार – यह रूपक का प्रतिनायक व राजश्यालक है। यह मूर्खता का आगार प्रतीत होता है। सामान्य से सामान्य बात का भी उसे ज्ञान नही। उदाहरणार्थ उसे यह भी पता नही कि श्रवणेन्द्रिय से गन्ध का ज्ञान नहीं होता तथा घ्राणेन्द्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता – 'श्रृणोमि गन्धं श्रवणाभ्याम् अन्धकारपूरिताभ्यां नासापुटाभ्यां सुष्ठु न पश्यामि।'[१३] लोकप्रचलित प्रसिद्ध कथाओं का उसे ज्ञान नहीं। तभी तो कहता है – अहं त्वां गृहीत्वा केशहस्ते दुःशासनः सीतामिवाहरामि।''[१४] गुणवानो के प्रति इसका कोई आकर्षण नहीं। इसलिए विट के क्षमा माँगने के बाद भी यह चारुदत्त के विदूषक मैत्रेय से धमकी भरे शब्द कहता है।

---

१३. चारु० प्रथम अंक।

१४ चारु० प्रथम अक।

विदूषक – विदूषक चारुदत्त का मित्र मैत्रेय जन्मना ब्राह्मण है। वह चारुदत्त का सुख-दुःख दोनो ही समयों में साथ निभाने वाला है। चारुदत्त को विदूषक की मित्रता पर अभिमान है। विदूषक चारुदत्त के सभी कामों को निःस्वार्थ करता है। एक तरफ जहाँ वह बलि आदि धार्मिक कार्यों का सम्पादन करता है तो वहीं दूसरी तरफ कहीं स्वर्णभाण्ड की रखवाली, वसन्तसेना को रात्रि में उसके घर पहुँचाना तथा चारुदत्त की पत्नी के हार को वसन्तसेना के हॉथ सौंपना भी उसी के मत्थे पड़ता है। अतः चारुदत्त के लिये वह झूठ भी बोलता है, और वसन्तसेना से कहता है कि तुम्हारे हार को चारुदत्त द्यूत क्रीड़ा में हार गया। चारुदत्त के दान-मान से वह सर्वथा परितुष्ट है और चारुदत्त की अभावावस्था मे भी नट के निमन्त्रण को अस्वीकार कर देता है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि चारुदत्त का विदूषक मात्र भोजनभट्ट मूर्ख ब्राह्मण मात्र नही है अपितु वह समय पड़ने पर उसके हित-सम्पादन के लिए कठिन कार्यों को भी करने को भी उद्यत रहता है।

अन्य पुरुष पात्र

अन्य पुरुषपात्रों में संवाहक चारुदत्त का भूतपूर्व भृत्य था। इसका जन्म पाटलिपुत्र मे हुआ, वह उज्ञयिनी के अमीरों को सुनकर उज्ञयिनी चला गया। गात्र संवाहक के रूप में वह चारुदत्त के यहॉ काम करने लगा चारुदत्त की अवस्था का उस पर प्रभाव पड़ा और उसे सेवा से हटा दिया गया। वैसे गुणज्ञ व्यक्ति की सेवा करने के कारण वह दूसरे की सेवा नही करना चाहता था। इसी कारण उसने द्यूत का आश्रय लिया। द्यूत में बहुत दिन जीतकर जीवनचर्या चलाने वाला संवाहक एक दिन हार जाता है। उसके पास देने के लिए द्रव्य नहीं रहता। अतः जेता के डर से वक्ष भागने लगता है। इसी भाग-दौड़ में वह वसन्तसेना के घर आश्रय लिया। वसन्तसेना उसके वृत्तान्त को सुनकर उसका ऋण चुका देती है। और उक्त घटना से दुःखी होकर वह प्रवृज्या (संन्यास) ग्रहण कर लेता है। सज्ञलक को चोर के रूप में प्रदर्शित किया गया है वह बलवान् तथा चोरी में निपुण है। चारुदत्त के महल में वह सेंध लगाकर चोरी करता है किन्तु उसे चारुदत्त के भवन में वसन्तसेना के सुवर्णभाण्ड रखे जाने का पता नहीं

है, वह केवल इसीलिये चोरी करने जाता है कि चारुदत्त का भवन सुन्दर है, पर विदूषक स्वप्न-वचन से उसे सुवर्णभाण्ड का पता लग जाता है अतः वह सुवर्णभाण्ड लेकर भाग जाता है। यहाँ सज्जलक की चोरी के पीछे नाटककार ने एक सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार रख दिया है, वह किसी दुर्व्यसन के लिए चोरी नहीं करता। वह चोरी प्रेमपाश में बँध जाने के कारण करता है। सज्जलक वसन्तसेना की बेटी मदनिका से प्रेम करता है। मदनिका वसन्तसेना की क्रीतदासी है और बिना मूल्य चुकाये सज्जलक उसे प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिये वह चोरी करता है। सेंध लगाते समय उसके मन में उठ रहे विवादों"[१५] से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह चोरी नहीं करना चाहता किन्तु उसके पास और कोई दूसरा उपाय ही नहीं था। इसके अतिरिक्त पुरुष पात्रों में विट, चेट एवं सूत्रधार का भी उल्लेख किया गया है।

अन्य स्त्री पात्र

इसमे चारुदत्त की भार्या ब्राह्मणी प्रमुख स्त्री पात्र है जिसमें आदर्श पतिव्रता नारी के गुण विद्यमान है। यद्यपि नाटकीय मञ्च पर उसका अल्प कर्त्तव्य ही है तथापि उस अल्प हिस्से ने ही उसके चरित्र को इतना अधिक प्रोज्ज्वल तथा उदात्त बना दिया है कि उसका चरित्र दर्शक के हृदय पर स्थायी प्रभाव डाल देता है। वसन्तसेना के अपेक्षाकृत अल्प मूल्य वाले हार को चुराये जाने पर वह अपनी महार्घ माला को बिना किसी रोक-टोक के वसन्तसेना को देने के लिए कहती है। वह वसन्तसेना उसके लिए भी कोई सुखदायिनी नहीं, अपितु उसी के सौभाग्य में हिस्सा लेने वाली हैं।

---

१५. चारु० ३.६, ७, ८ काम नीचमिद वदन्तु विवुधाः सुप्तेषु यद्वर्तते
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभवः शौर्य न कार्कश्यता।
स्वाधीना वचनीयताऽपि तु वर बद्धो न सेवाञ्जलिः,
मार्गश्च नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्व कृतो द्रौणिना।।
लुब्धोऽर्थवान् साधुजनावमानी वणिक् स्ववृत्तावतिकर्कशश्च।
यस्तस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये भवामि दुःखोपहतो न चित्ते।।
देशः को नु जलासेकशिथिलश्छेदादशब्दो भवेत्
भित्तीनां क्व नु दर्शितान्तरसुखः सन्धिः करालो भवेत्।
क्षारक्षीणतया चलेष्टककृशं हर्म्य क्व जीर्णं भवेत्
कुत्र स्त्रीजनदर्शन च न भवेत् स्वन्तश्च मयत्नो भवेत्।।

मदनिका – यह वसन्तसेना की विश्वस्त दासी व सज्ज्ञलक की प्रेमिका है। जिसे मुक्त करने के लिए सज्ज्ञलक ने चारुदत्त के घर चोरी की है। उक्त स्थिति होते हुए भी वसन्तसेना और मदनिका के बीच एक पवित्र प्रेम की झलक दिखाई पड़ती है। वसन्तसेना की दृष्टि में मदनिका एक विश्वास पात्र दासी है तभी तो वह चारुदत्त के प्रति अपने प्रेम का कारण मदनिका से कह देती है। मदनिका सज्ज्ञलक के साथ गुप्त रूप से प्रेम करती है। चतुर्थ अंक मे सज्ज्ञलक और मदनिका की बातचीत से ऐसा लगता है कि यह उनकी पहली मुलाकात नहीं है। तथापि मदनिका एक गणिका की परिचारिका है फिर भी वह अच्छे स्वभाव की नारी है। जब सज्ज्ञलक चोरी के आभूषणों के साथ उससे मिलता है तो वह उसे उचित परामर्श देती है। वह उसे सुवर्णभाण्ड वापस करने को कहती है। मदनिका समय के अनुसार भी कार्य करने की भी क्षमता रखती है। वह सज्ज्ञलक से कहती है कि आर्य चारुदत्त की ओर से वसन्तसेना को अलंकार दे दो। ऐसा करने से तुम बच जाओगे, आर्य चारुदत्त भी खिन्न नहीं होंगे और मेरे पक्ष मे भी हित होगा। मदनिका गणिकाओं के जीवन की अपेक्षा एक आदर्श गृहिणी के जीवन को श्रेयस्कर समझती है। इसलिए सज्ज्ञलक के साथ वसन्तसेना के द्वारा सम्पादित वैवाहिक जीवन के प्रति अरुचि व्यक्त नही करती। इसके अतिरिक्त **रदनिका** तथा वसन्तसेना की परिचारिका **विच्छित्तिका, चतुरिका** एवं सूत्रधार की स्त्री **नटी** का भी उल्लेख हुआ है।

उक्त चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भास कथा-विन्यास तथा पात्रों के व्यक्तित्व एवं वास्तविक रहस्योद्घाटन में अद्वितीय प्रतिभावान् नाटककार है। जिसमें विवाद का लेशमात्र भी स्थान नहीं है।

कलापक्ष

'दरिद्रचारुदत्तम्' नाटक मे कल्पना, भावना और कवित्व का प्राचुर्य है, जिसके कारण भाषा प्रभावोत्पादक और मुहावरेदार है। इसकी भाषा में स्थान-स्थान पर स्वभावोक्ति का पुट भरा मिलता है। भास को लम्बे-लम्बे समस्त पदों का प्रयोग पसन्द नहीं है। नाट्यशास्त्र के लिए भाषा की सरलता, सरसता, स्फुटता, प्रसन्नता, गम्भीरता, मधुरता, मनोरंजकता आदि अपेक्षित हैं। भास के विचार और भाव उच्च तथा हृदयङ्गम करने योग्य हैं। इसकी भाषा मे सरलता है। कथोपकथन और कवित्व की दृष्टि से भी भास के नाटक किसी भी नाटककार से कम नहीं हैं। भास की शैली और भाषा उस युग की ओर संकेत करती है, जब संस्कृत जनसाधारण की भाषा थी।

संवाद

दरिद्रचारुदत्त नाटक मे घटनाओं का विकास ही संवादों के बीच होता है। नायक और विदूषक परस्पर वार्तालाप करते हुए दरिद्रता के दोषों का उद्घाटन करते है। आरम्भ में नायक चारुदत्त अपनी दरिद्रतापूर्ण स्थिति का चित्रण करता हुआ कहता है कि हमारे गृह मे जहाँ पहले धन-धान्य के ढेर लगे रहते थे, अब वहाँ एक दाना भी दिखलाई नहीं पड़ता है। विदूषक चारुदत्त को सान्त्वना देता है और कहता है कि आपकी समृद्धि दान देने से समाप्त हो गयी है, पुरुषार्थ की कमी से नहीं। अतः आपको इस सम्बन्ध में चिन्ता करने की आवश्यकता नही। इस पर चारुदत्त उत्तर देता है –

सत्यं न मे धनविनाशगता विचिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धननि पुनर्भवन्ति।
एतत्तु मां दहति नष्टधनश्रियो में
यत् सौहृदानि सुजने शिथिलीभवन्ति।।[1]

---

१ चारु० १.५।।

इस नाटक के वार्तालापों में, शकार और विट वार्तालाप, शकार और गणिका वार्तालाप, नायक और वसन्तसेना वार्तालाप, गणिका और चेटी वार्तालाप, नायक और विदूषक वार्तालाप, नायक और सज्ञलक वार्तालाप, ब्राह्मणी और चेटी संवाद, गणिका और संवाहक संवाद, विदूषक और सज्ञलक वार्तालाप, सज्ञलक और गणिका वार्तालाप, गणिका और विदूषक वार्तालाप एवं मदनिका और गणिका वार्तालाप प्रमुख हैं।

नाटककार भास ने सवादों की योजना बड़ी ही कुशलता से की है। इन संवादों के द्वारा पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश पड़ता है इनमें जीवन की सजीवता एव पूर्णता दिखायी पड़ती है। भावाभिव्यक्ति को सरलतम रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से इन संवादों का पर्याप्त महत्त्व है।

भाषा-सौष्ठव

वैयाकरणों के नियमानुसार भास की संस्कृत सामान्यतः शुद्ध है, परन्तु इतिहासकाव्यो के अनियमित प्रयोगों की यदा-कदा आवृत्ति से उनकी इतिहास-काव्य-निर्भरता सूचित होती है। ये प्रयोग प्रायः सर्वत्र छन्द के आग्रहवश किए गए हैं। महाकाव्यो में भी संस्कृत व्याकरण के अतिक्रमण का यही कारण है। इस प्रकार हमें शास्त्र-विरुद्ध संधि-रूप 'पुत्रेति' तथा 'अवन्त्याधिपतेः', और परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद के अनेक रूप (गमिष्ये, गर्जसे, द्रक्ष्यते, पृच्छसे, भ्रश्यते, रुह्यते, श्रेष्यते) मिलते हैं। अन्य उदारणो में आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद है – आपृच्छ, उपलप्स्यति, परिष्वज। स्रवति तथा वीजन्ति और विमोक्तुकाम में साधारण एवं णिजत क्रियाओं की गड़बड़ी है। अनियमित समास हैं – पद्य में 'सर्वराज्ञः', और गद्य में 'काशिराज्ञे'। एक ही खण्डवाक्य में चेत् और यदि दोनो का प्रयोग पद्य में तथा गद्य में भी मिलता है जैसा कि इतिहासकाव्य में। साधारण क्रिया के अर्थ मे प्रेरणार्थक के आवृत्तिलोपी रूप 'प्रत्यायति' प्रेरणार्थक रूप में 'समाश्वसितुम्', और पुल्लिंग संज्ञा के रूप में 'युध' को हम निरी अशुद्धियाँ कह सकते है। अन्य अनियमितताएँ भी प्रतीत होती हैं, परन्तु या तो वे व्यवहार सिद्ध है अथवा पाणिनीय शिक्षा की विभिन्न व्याख्याओं के निर्देश से

उनका समाधान संभव है।

भास के नाटको मे पायी जाने वाली प्राकृते[२] सामान्यतः शौरसेनी है, जो 'दूतवाक्य' को छोड़कर सभी नाटको में उपलब्ध है। मागधी दो भिन्न रूपो में पायी जाती है, और वह जिसे 'अर्धमागधी' की संज्ञा दी जा सकती है। अश्वघोष की प्राकृत में अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ सघोष अल्पप्राण नहीं होतीं, भास की प्राकृत में ट और त क्रमशः ड और द हो जाते है।[३] अश्वघोष की प्राकृत में स्वरमध्य ग व्यञ्जन लुप्त नहीं होते, जबकि भास में स्वरमध्य क, ग, च, ज, त, द, प, ब, व, य का लोप हो जाता है।[४] यद्यपि यह लोप कालिदास की अपेक्षा कम पाया जाता है। महाप्राण ख, घ, थ, ध, फ, भ भास की प्राकृत मे ह हो जाते है।[५] अश्वघोष मे ये अपरिवर्तित बने रहते है। सस्कृत ज्ञ कालिदास की प्राकृत मे ण्ण मिलता है, अश्वघोष ने ञ्ञ, किन्तु भास की प्राकृत में इसका कभी तो ञ्ञ रूप मिलता है कभी ण्ण। संस्कृत 'वयं' का रूप अश्वघोष में अपरिवर्तित रहता है, कालिदास में इसका 'अम्हे' रूप मिलता है। भास की प्राकृत में ये दोनों रूप पाए जाते है। साथ ही 'वअं' रूप भी मिलता है। अस्मत् शब्द के षष्ठी बहुवचन में भास मे अम्हाअं अम्हाण दोनो रूप मिलते है, अश्वघोष में अम्हाकं रूप मिलता है।

भास की मागधी तथा अर्धमागधी (जो केवल कर्णभार के इन्द्र के द्वारा व्यवहृत होती है) मे हमे दो रूप मिलते हैं। बालचरित तथा पञ्चरात्र मे ष और ओ ध्वनि पाई जाती है, प्रतिज्ञायौगन्धरायण एवं दरिद्रचारुदत्त में श और ए। मागधी में 'अहं' के लिए 'अहके' का प्रयोग पाया जाता है। इस प्रकार भास की भाषा सरल एवं सुबोध है। प्रसाद और रम्यता गुणों ने भास के नाटकों को

---

२ W. Printy, Bhasa's Prakrit (1921)।

३ सिक्खिदा, ठाविदो, पडिहार उवट्ठिदा, शाडिआए आदि।

४. आअन्तुआण, निप्पओअणं, मोदअखज्ञआणि आदि।

५ विहाण, अहिमुहो गच्छइ।

अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया है।

रस-परिपाक

रसों की सम्यक् उद्‌बुद्धि तथा परिपाक संस्कृत नाटकों का प्रधान लक्ष्य है। ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'' की परिभाषा देने वालों ने स्पष्टतः रस की सत्ता सर्वोपरि मानी है और ''काव्येषु नाटकं रम्यम्'' कहने वालो ने इसे स्पष्ट कर दिया है कि नाटकों का जीवन रसवत्ता ही है। किसी विशिष्ट रस का उद्‌बोधन कराकर नाटककार नैतिक आदर्श की सिद्धि करता है। इससे स्पष्ट है कि नाटक में पात्र, चरित्रांकन, कथोपकथन आदि साधन है, साध्य नही। साध्य तो एकमात्र रसोद्‌बोध ही है। महाकवि भास इस लक्ष्य से सुपरिचित थे और उन्होने बड़ी सर्तकता से रसो का परिपाक किया है। इनके प्रत्येक नाटक में एक या दो रस-प्रधान बनकर आये है और अन्य रस उसके उपस्कारक रूप में दिखायी पड़ते है। 'दरिद्रचारुदत्तम्' में करुण, श्रृंङ्गार तथा हास्य प्रभृति प्रमुख रसों की योजना की गयी है —

परिव्राजक की हाथी से रक्षा करने वाले व्यक्ति को प्रावारक देने की उदारता से वसन्तसेना का हृदय चारुदत्त की ओर आकृष्ट हो जाता है, जो कि श्रृंङ्गार रस के पोषण के लिए आवश्यक है। नाटक के मध्य में दरिद्रता का नग्नचित्रण करुण-रस की अनुभूति कराता है। हास्य रस की अवतारण सूत्रधार और नटी के वार्तालाप में हुई है। सूत्रधार नटी से घर के भीतर भोज्य पदार्थों के सम्बन्ध में चर्चा करता है। वह दरिद्र्यवश व्यंग्य में कहती है कि आज मेरा उपवास है। सूत्रधार पूछता है —

सुत्रधार – किन्नामधेय आर्याया उपवासः।

(सूत्रधार - आर्या के उपवास का नाम क्या है?)

नटी – अभिरूपपतिर्नाम।

(नटी - 'अभिरुप-पति' नाम है।)

सूत्रधारः – किमन्यजात्याम्।

(सूत्रधार - क्या अन्य जन्म में भी है?)

नहीं - आम्।

(नटी - हॉ)

सूत्रधार दरिद्रब्राह्मण की तलाश में जाता है और मैत्रेय को प्राप्त कर भोजनार्थ निमन्त्रण देता है। वह अपने घर की भोज्यवस्तु घृत, गुड़ दधि और चावल की बात कहता है, साथ ही दक्षिणा के निमित्त माषक मुद्रा देने को भी –

घृतगुडदधिसमृद्धं धूपितसूपोपदंशसम्मिन्नम्।
सत्कारदत्तमिष्ट भुज्यता भक्तमार्येण।।[६]

इसके अतिरिक्त मैत्रेय विदूषक निमन्त्रण का निषेध करता है, पर हृदय से उसका अनुमोदन करता है। वह व्यंग्यात्मक रूप मे चारुदत्त के यहॉ किए गए भोजन का स्मरण करता है और कहता है कि "मेरा उदर (पेट) अवस्था विशेष को जानता है, जो थोड़े मे ही सन्तुष्ट हो जाता है। यदि देने वाले हों तो अधिक से अधिक अन्न को ग्रहण करता है न देने वाले से नही मॉगता और न उसकी निन्दा ही करता है"[७] इस प्रकार यहाँ पर हास्य रस की योजना की गयी है।

'दरिद्रचारुदत्तम्' में भास ने भयानक रस की योजना करते हुए लिखा है कि "गहन जंगल तथा घना अंधकार दोनो समानरूप से भयभीत जन के लिए और जो भय उत्पन्न करता है उसके सुलभ शरण एवं आश्रय है।[८] भयानक रस का अस्तित्व उन्मत्त गज के आने पर भी पाया जाता है।[९]

---

६. चारु०, १.१।।

७. चारु०पृष्ठ ६ 'ममोदरमवस्थाविशेष जानाति। अल्पेनापि तुष्यति। बहुकमप्योदनभरं भरिष्यति दीयमानम्, न याचते अदीयमानं, न प्रत्याचष्टे।

८ चारु० १.२० 'सुलभशरणमाश्रयो भयानां वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव।
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारो जनयति यश्च भयानि यश्चभीतः।।

द्वितीय अंक में दानवीर का चित्रण आया है। संवाहक चारुदत्त की दानवीरता का सफल चित्रण करता है। [१०]

"आकृतिमान् अविभ्रन् अनुत्सिक्तो ललितो ललिततयाविस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षिण्योऽभिमत आचितस्तुष्टो भवति। दत्त्वा न विकत्थते अल्पमपि स्मरति, बहुकमप्यपकृतं विस्मरति। अज्जुके। किं बहुना, तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्भागमपि सुदीर्घेणापि ग्रीष्मदिवसेन वर्णयितुं न शक्यम्।"

संयोग श्रृंङ्गार की कल्पना प्रस्तुत सन्दर्भ में हुई है 'एहीममलंकार गृहीत्वार्यचारुदत्तमभिसरिष्यावः।'[११]

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भास ने 'दरिद्रचारुदत्तम्' रूपक में करुण, हास्य और श्रृंङ्गार प्रभृति रसो की योजना कर लोकरंजन एवं लोकरक्षण की भावना का वर्णन किया है।

अलंकार-निरूपण

भास के रूपकों मे अलंकारो की सुन्दर छटा दर्शनीय है। अनुप्रास, उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास विरोधाभास आदि अलंकारों का स्थान-स्थान पर रस एवं भावों के अनुरूप प्रयोग मिलता है। अलंकारों के प्रयोग प्रसाद और माधुर्य गुणो के साधक है, न कि बाधक। इसी प्रकार 'दरिद्रचारुदत्तम्' नाटक मे भी भास ने उपमा, उत्पेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, आक्षेप, परिकर, उल्लेख, अर्थान्तरन्यास, समुच्चय और अनुमान आदि अलंकारों की रसोत्कर्ष हेतु योजना की है।

उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। यथा प्रथम अंक मे विट का कथन है कि "अयि वसन्तसेने' तुम भय के कारण अपनी सुकुमार गति

---

९. चारु० द्वितीय अंक पृष्ठ ५९ - ६०।।

१०. चारु० द्वितीय अंक पृष्ठ ५३।।

११. चारु० चतुर्थ अक पृष्ठ १०६।।

को परिवर्तित करती हुई एवं नृत्य कला में दक्ष (दोनो) चरणों को रखती हुई, अद्विग्न एवं चञ्चल कटाक्षो से हमारे ऊपर आघात करती हुई तथा व्याघ्र के द्वारा पीछा की गई अतएव डरी हुई हरिणी की तरह क्यों जा रही हो।''[१२]

चतुर्थ अंक[१३] में सज्जलक की चेटी से वार्ता में उपमा का बहुत ही सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है। सज्जलक चेटी से कहता है – रात्रि मे निद्रा, अन्धकार और भय को छोंडकर तथा चौर्यरूप दोष करके वही मैं इस समय सूर्योदय के कारण शनैः-शनैः मन्दकान्ति वाले दिन के चन्द्रमा की भाँति भयभीत हो रहा हूँ (दिन में चोर गण निस्तेज एवं असहाय हो जाते है) इसके अतिरिक्त 'दरिद्रचारुदत्तम्' रूपक में अन्यत्र भी उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।[१४]

तृतीय अंक के प्रारम्भ में ही उपमा, रूपक एव अतिशयोक्ति अलंकार की छटा दर्शनीय है। चारुदत्त विदूषक से वीणा की प्रशंसा करते हुए कहता है कि – वयस्य! वीणा एक ऐसा रत्न है जो समुद्र से उत्पन्न नहीं हुआ है (समुद्र से चौदह रत्न उत्पन्न माने जाते हैं)। क्योंकि – (वीणा) उत्कण्ठित जन के लिए मनोनुकूल सखी की भॉति, भोग्य विषय में गोष्ठी की तरह सङ्कीर्ण दोषरहित, (वीणा पक्ष में कनसुरा दोष से रहित, गोष्ठी पक्ष में विषयान्तरअस्पष्टता दोषरहित) काम की रसीली क्रीडाओं में कान्ता की भॉति और पति के प्रति स्त्रियों के प्रेम में विध्न डालने वाली सपत्नी के समान है (वीणा के प्रति पुरुषों का विशेष आकर्षण

---

१२. चारु० १.६ ''किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या
नृत्तोपदेशविशदौ चरणौ क्षिपन्ती।
उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टि –
र्व्याघ्रानुसारचकिता हरिणीव यासि।। ''

१३ चारु० ४.१ कृत्वा निशाया वचनीयदोष निद्रा च हित्वा तिमिर भयं च।
स एव सूर्योदयमन्दवीर्यः शनैर्दिवाचन्द्र इवास्मि भीतः।।

१४ चारु० १.११, २६, २७; ३.५; ४.१।।

पत्नियों को दुःसह होता है इसलिए वीणा से उनकी सपत्नी जैसी ईर्ष्या होती है)।[१५]

उक्त अलंकारों के अतिरिक्त 'दरिद्रचारुदत्तम्' में अर्थान्तरन्यास,[१६], उल्लेख[१७], आक्षेप,[१८], परिकर[१९], अनुमान[२०], पर्याय,[२१], उपमा और विरोधाभास,[२२], उपमा और काव्यलिङ्ग[२३] उपमा और उत्प्रेक्षा,[२४] काव्यलिंग और उत्प्रेक्षा[२५] तथा उपमा और कारकदीपक[२६] अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

इससे स्पष्ट है कि भास ने तथ्य, अनुभूति, घटना और चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलंकारो का प्रयोग किया है। प्रायः भास के सभी नाटकों में अलंकारों की इन्द्रधनुषी आभा विद्यमान है जो रंगों की छाया के समान आभासित होती है। नाटकों में सौन्दर्य और विशेषताओं को प्रकट करने के लिए भास द्वारा अलंकारों की योजना की गयी है।

१५ चारु० ३.१ उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव
सङ्कीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी।
क्रीडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता
स्त्रीणां तु कान्तरतिविघ्नकरी सपत्नी।।

१६ चारु० ३.१५, ४.६।।

१७ चारु० ३.११।।

१८. चारु० ३.२ रक्त च तारमधुर च समं स्फुट च
भावार्पितं च न च साभिनयप्रयोगम्।
किं वा प्रशस्य विविधैर्बहु तत्तदुक्त्वा
भित्त्यन्तरं यदि भवेद् युवतीति विद्याम्।।

१९ चारु० ३.१४, ४.४।।

२० चारु० १.१८, ३.१३।।

२१. चारु० १.२

२२ चारु० १.३ सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रता
स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति।।

२३. चारु० १.१०।।

२४ चारु० ३.४।।

२५ चारु० १.२१।।

२६. चारु० १.६।।

छन्दोयोजना

रस काव्य का आत्मस्थानीय तत्व है, छन्द, अलंकारादि शरीरस्थानीय। परन्तु शरीरस्थानीयों में भी छन्द का सर्वाधिक महत्त्व है क्योंकि ''छन्दः पादौ तु वेदस्य''। अर्थात् छन्द वेद का चरण युगल है। जैसे चरण के बिना प्राणी मे गति नहीं आती इसी प्रकार काव्य में भी छन्द के बिना गति या प्रवाह नही आ पाता। 'दरिद्रचारुदत्तम्' नाटक में भास ने विभिन्न छन्दों अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, वंशस्थ, आर्या, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, शालिनी, उपेन्द्रवज्रा आदि का प्रयोग किया है। छन्दों के इस वैविध्य ने नाटक की चारुता में अभृवृद्धि की है, यह तथ्य निःसन्दिग्ध है। कुछ उदाहरण उष्टव्य है –

१. वसन्ततिलका

''काम प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं
सौदामनीव जलदोदरसन्निरुद्धा।
त्वां सूचयिष्यति हि वायुवशोपनीतो
गन्धश्र्च शब्दमुखराणि च भूषणानि।।''[२७]

२. आर्या

''आलोकविशाला मे सहसा तिमिरप्रवेशसञ्छन्ना।
उन्मीलितापि दृष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण।।[२८]

३. वंशस्थ

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।

अदृश्यमाना चपला जरेव या मनुष्यवीर्यं परिभूयवर्धते।।[२९]

---

२७. चारु० १.१८।।

२८. चारु० १.२१।।

२९. चारु० ३.४।।

४. शार्दूलविक्रीडित

> निःश्वासोऽस्य न शङ्कितो न विषमस्तुल्यान्तरं जायते
> गात्रं सन्धिषु दीर्घतामुपगतं शय्याप्रमाणधिकम्।
> दृष्टिर्गाढनिमीलिता न चपल पक्ष्मान्तरं जायते
> दीप चैव न मर्षयेदभिमुखः स्याल्लक्षसुप्तो यदि।।[३०]

इस प्रकार 'दरिद्रचारुदत्तम्' नाटक में कुल ५५ पद्य हैं। इनमें १७ पद्यों में अनुष्टुप्, १२ पद्यों में वसन्ततिलका, ६ पद्यों में उपजाति, ५ पद्यों में शार्दूलविक्रीडित और चार-चार पद्यों में मालिनी एव वंशस्थ छन्द का प्रयोग पाया जाता है। आर्या और पुष्पिताग्रा दो-दो बार एवं प्रहर्षिणी, शालिनी और उपेन्द्रवज्रा एक-एक बार प्रयुक्त हैं।

---

३० चारु० ३.१३।।

नाट्यकला

भास, संस्कृत साहित्य में प्रथम नाटककार के रूप में विख्यात है। उनकी नाट्यकला की प्रौढ़ता इस बात से स्वतः सिद्ध है कि उनका रूपक वाड्मय-कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, रस, अलंकार आदि की दृष्टि से पूर्ण तथा श्लाघनीय है।

संस्कृत नाट्यसाहित्य में किसी भी अन्य नाटककार का इतने विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश नहीं है जितना भास का। उनके नाटको में मनुष्य जीवन के विविध रूपों का पर्यवेक्षण करने का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है। अतएव उनके रूपकों में विविधता एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा की झलक दिखाई पड़ती है। उनके द्वारा पुराण-इतिहास, महाभारत, आख्यायिका ग्रन्थ और लोक मे प्रचलित कथानकों का अपने नाटकों मे उपयोग किया गया है। उनकी रचनाओं मे मौलिकता तथा कल्पना वैचित्र्य विशेष रूप से पाया जाता है। भरतमुनि प्रतिपादित नाट्यशास्त्र के नियमो का पूर्णरूपेण पालन न होते हुए भी उनके नाटक अत्यन्त रोचक है तथा रंगमंच की दृष्टि से पूर्णरूपेण सफल हुए हैं।

इसके अतिरिक्त नाट्यकला की सुन्दरता अभिनेयता की उपयुक्तता, अवसरानुकूल पात्र-संयोजन, परिरिस्थित के अनुकूल भाषा एव भावों के मंजुल संगठन के कारण इनकी प्रतिभा सर्वातिशयिनी है। अन्य भारतीय नाटकों के समान भास के नाटकों में भी अन्वितित्रयी-स्थानान्विति, कालान्विति, कार्यान्विति का अभाव पाया जाता है। इनके नाटको मे कार्यान्विति पर दृष्टि रही है तथा लक्ष्य रसानुभूति पर। इनकी रचनाएँ-भाषा की सरलता, अकृत्रिम शैली, वर्णन की यथार्थता, पात्रो के चरित्र-चित्रण में व्यक्ति वैचित्य तथा नाटकीय गुण प्रवाह सजीवता एवं शक्तिमत्ता आदि विशेषताओं से श्रीमण्डित है।

भास की नाट्यकला की एक विशेषता यह भी है कि उनके रूपकों में न तो वर्णन की प्रचुरता पायी जाती है, न अनावश्यक कथावस्तु का विस्तार ही, जो अभिनय कला की गतिविधि के प्रतिरोधक हैं। भिन्न-भिन्न अवस्था में भिन्न-भिन्न भावो और विषयों के सूक्ष्म वर्णन में भास सिद्धहस्त है।

भास के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल है। प्रत्येक दृष्टि

से इनकी अभिनेयता इनकी विशिष्टता है। कथानक, पात्र, भाषा, शैली, देशकाल, संवाद आदि सभी तत्त्व इसकी अभिनेयता के अनुकूल है। लम्बे-लम्बे समासों तथा अलंकारो की बहुलता नहीं है। जीवन की गत्यात्मकता तथा सामयिक सामग्री की समपरिस्थिति में भास के नाटक पूर्णरूप से सफल है। भास की नाट्यकला, वस्तु-चयन, वस्तु-कल्पना तथा वस्तु-विन्यास की दृष्टि से अप्रतिम हैं। भास ने धर्मकथाओं तथा लोक कथाओं दोनो का आश्रय लेकर अपने नाटकों का प्रणयन किया है। इनकी रचनाओं में चार प्रकार की कल्पनाओं नाटकीय सौष्ठव की दृष्टि से की गयी कल्पनाओं, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित कल्पनाओं, चमत्कार प्रधान कल्पनाओं तथा परम्परागत कल्पनाओं का समावेश पाया जाता है। लोक कथा पद्धति पर आधारित कथावस्तु के क्रम में हमें इनकी रचना में लोकरजन तथा लोकरक्षण दोनो रूपों का प्रदर्शन प्राप्त होता है। कथा की लोकप्रियता भी इसकी रागमयता तथा त्यागमयता का बोध कराती है। भास की रचनाओं में राग और त्याग का मंजुल सामंजस्य पाया जाता है।

नाट्यकला की विशेषता चरित्रों अथवा पात्रों की सयोजना पर भी आधारित होती है। इस विषय में यह कहना उचित होगा कि पात्रों के चरित्र-चित्रण में भास अत्यन्त कुशल है। इसका सविस्तर निवेचन ''पात्र-चित्रण'' शीर्षक में किया गया है। भास ने सर्वत्र उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया है। पात्रों के चरित्र की उज्जवलतम स्वरूप में प्रदर्शित करने के लिए कथानक में परिवर्तन करने में भी वे संकोच नहीं करते। अमात्य विदूषक आदि सभी का उत्तम चरित्र दिखाया गया है। प्रत्येक पात्र का अपना अस्तित्व है। वे वैयक्तिकता से मण्डित न होकर समाज के प्रतिनिधि रूप में प्रयुक्त हुए हैं। वे अपने चतुर्दिक वातावरण से सजग रहने वाले तथा अपने कर्त्तव्य पक्ष पर अग्रसित होते है। इनकी रचना में परम्परागत पात्रों के सन्निवेश के साथ-साथ अपने मौलिक पात्रों का योग भी प्राप्त होता है जिसके सुगुम्फन से नाटकों में सजीवता प्राप्त होती है।

पात्रों के संवादों में भी भास की कुशलता दिखाई पड़ती है। सम्वाद लघु है। सरल तथा असमस्त भाषा का प्रयोग किया गया है संवाद तथा उत्तर प्रत्युत्तर अत्यन्त संक्षिप्त एवं प्रभावोत्पादक हैं।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, तो यह कहा जा सकता है कि भास ने अपनी रचनाओं में सीधी सादी चलती और प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। दैनिक तथा व्यावहारिक जीवन के अत्यन्त निकट होने के कारण उनकी कला को समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं है, अपितु जितना उसमें डूबते है, सौष्ठव में उतनी ही वृद्धि पाते हैं।

भास के वर्णन अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ हैं। जैसे सन्ध्या, रात्रि, तपोवन, मध्याह्न आदि के वर्णन सूक्ष्म अन्वीक्षण के परिणाम प्रतीत होते हैं। इन वर्णनों में यथार्थता, सजीवता एवं शक्तिमत्ता के दर्शन होते हैं। उनका प्रयोग कथनाक में प्रसंगोपात्त होने पर ही किया गया है, पाडित्य प्रदर्शन तथा आकार वृद्धि के लिए नही।

प्रसादगुण युक्तता होने के कारण भास की कविता मे न क्लिष्ट कल्पना को अवकाश है और न अलंकारो की अनावश्यक भरमार। उनकी रचनाओं मे अलंकार विधान भी दर्शनीय है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, स्वभावोक्ति, परिसंख्या आदि अलकारों का अत्यन्त सफल प्रयोग हुआ है। रस की दृष्टि से भी भास की नाट्यकला उत्कृष्ट है। भास रस चयन में अपनी रचनाओं में आरम्भ से ही सजग है तथा इनकी रचनाओं में रस साहित्य के दर्शन भी होते हैं। रस चयन की दृष्टि से भी रस राज श्रृंगार, वीर, करुण, रौद्र, विभत्स, भयानक, हास्य तथा शान्त आदि रसों का प्रयोग इनकी रचनाओं में प्राप्त होता है। रस औचित्य की दृष्टि से इनके नाटको मे कथा के अनुरूप ही रस का विकास प्राप्त होता है।

भास द्वारा नियोजित पताका-स्थानक की योजना द्रष्टव्य है। इनके द्वारा आश्चर्य भावना उत्तेजित होती है।

भास की नाट्यकला में घटना की एकता, घटना की सार्थकता, घटनाओं का घात-प्रतिघात तथा गति, चरित्र-चित्रण मे वैचित्र्य, स्वाभाविकता तथा कवित्त्व आदि गुण विद्यमान हैं। प्रत्येक नाटक की कथावस्तु इस प्रकार की प्रभावोत्पादक घटनाओं से विकसित हुई है कि उनमें स्वाभाविकता और गतिशीलता के साथ ही साथ रसपरिपाक भी समुचित रूप से होता है।

औचित्य की मर्मज्ञता का पोषण इनकी कलात्मकता से हो जाता है। जिन भावों का जिन शब्दों द्वारा प्रकटन कलात्मक तथा मनोरम होगा, तदनुकूल शब्द व्यंजता इनकी विशेषता है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भास निःसंदेह एक उत्कृष्ट नाटककार थे। नाट्यसृजन करते हुए उन्होंने वस्तु चयन तथा नाट्यशिल्प की विविधता तथा विदग्धता द्वारा मौलिक प्रतिभा कर परिचय दिया है। इस प्रकार भास की नाट्यकला समस्त विशेषताओं से युक्त, प्रौढ़ता को प्राप्त तथा भास की सर्वतोमुखी प्रतिमा की परिचायक है।

मृच्छकटिकम्

- कथावस्तु
- पात्र-चित्रण
- नाटकीय संविधान
- भाषा-विधान
- नाट्यकला

कथावस्तु

'मृच्छकटिक' दस अंकों (अलंकार-न्यास, द्यूतकर-संवाहक, संधिविच्छेद, मदनिका-शर्विलक, दुर्दिन, प्रवहण-विपर्यय, आर्यकापहरण, वसन्तसेना-मोटन, व्यवहार एवं संहार) का एक संकीर्ण कोटि का प्रकरण है। इसमें चारुदत्त[1] तथा वसन्तसेना[2] के प्रेम की कल्पित कथा वर्णित है। इसी के साथ कवि ने पालक तथा गोपालदारक आर्यक की कथा को जोड़ दिया है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है —

आर्य चारुदत्त के मित्र जूर्णवृद्ध द्वारा दिया हुआ शाल लेकर गृहकपोत की तरह जहाँ-जहाँ भटक कर परिचित छतरी पर ही उतरने का अभ्यासी मैत्रेय विदूषक आकर दुपट्टे को सौपता है और आते ही चारुदत्त चौराहे पर बलि रख आने के लिए विदूषक से कहता है (मातृभ्यो बलिमुपहर) पर विदूषक राजमार्ग पर असुरक्षा की वात कहकर जाने में हिचक दिखाता है। पुनः कहने पर रदनिका के साथ साथ में दीपक लेकर बलि के अर्पणार्थ चौराहे पर जाने के लिए बाहर निकलता ही है कि दूसरी ओर से वसन्तसेना का पीछा करता हुआ वसन्तसेना पर अनुरक्त राजा का साला शकार आता है। शकार से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए उतावली वसन्तसेना शकार की उक्ति से ही चारुदत्त का घर पास आया जानकर विदूषक के दीपक को बुझाकर अपनी युक्ति से चारुदत्त के घर में घुस जाती है और शकार बाहर खड़ी दीपक की इन्तजार करती रदनिका को वसन्तसेना समझकर पकड़ लेता है। विट उसे "यह वसन्तसेना नहीं है" समझाकर उसे छुड़वाता है। अपना पिण्ड छुड़वा विदूषक के साथ चारुदत्त के पास पहुँचती है विदूषक रदनिका के अपमान की बात को छोड़ मार्ग में घटित घटना को

---

१ मृच्छ० १.४८ "दीनाना कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्त्ता नावमन्ता पुरुषगुण निधिर्दक्षिणोदारसत्वो
ह्येकः श्लाध्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्नीव चान्ये।।"

२. मृच्छ० ५.१२ "अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललितं
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जाप्रणयिनी
रतिक्षेत्रे रङ्गे प्रियपथिकसार्थैरनुगता।"

चारुदत्त को सुनाता है। धूर्तों से बचाये रखने के लिए अपने आभूषणो को चारुदत्त के घर रखने चाहे, तो चारुदत्त ने ''अयोग्यमिदं न्यासस्य गृहम'' कहा तो वसन्तसेना ने यह कहकर प्रतिवाद किया कि ''आर्य ! अलीकं पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते, न पुनर्गेहेषु।'' और चारुदत्त को निरुत्तर सा कर दिया। भावी लाभ के लिए मार्ग प्रशस्त कर आभूषणों को चारुदत्त के पास छोड़ देती है और मैत्रेय के साथ घर जाने की चाह प्रकट करती है। मैत्रेय के मना कर देने पर चारुदत्त वसन्तसेना को रक्षित विधि की तरह सुरक्षित उसके घर पहुँचा आते है और न्यास रूप सुवर्ण भाण्ड को रात्रि में विदूषक और दिन में वर्धमान को सौप अलंकरण न्यास पूरा करते है।

अस्तु वसन्तसेना पुनर्मिलन का द्वार खोल अपने घर पहुँच गयी। अपने नित्य कर्म मे रुचि न लेती देख वसन्तसेना से जब उसकी उदासी और उद्विग्नता का कारण मदनिका ने पूछा तो चारुदत्त के प्रति समर्पित हृदय की बात कह बैठती है। चारुदत्त की आर्थिक स्थिति की वास्तविकता से मदनिका परिचित कराने लगी तो वसन्तसेना का एक वाक्यीय उत्तर था – **''दरिद्र पुरुष संक्रान्तमनाः गणिका लोकेऽवचनीया भवति।''** मदनिका ने उसके हृदय की थाह लेते हुए कहा – **''आर्य ! किं हीन कुसुमं सहकार पादपं मधुकर्यः पुनः सेवन्ते ?''** तो वसन्तसेना ने कहा **''ताः मधुकर्यः उच्यन्ते।''** अर्थात् इसीलिए ही तो वे मधुकरियॉ मधु का निर्माण करने वाली हैं, मधु का आनन्द लेने वाली नही। हम गणिकाएं भी दूसरों के लिए सुख प्रदान करने वाली है जीवन का आनन्द स्वयं नहीं भोग पाती। **'मधु कुर्वन्ति सेवन्ते मत्ताः।'** अतएव वे विचार शून्य कहलाती है। ऐसे ही कुछ बतिया ही रही थी कि संवाहक और उसका पीछा करता हुआ माथुर वहाँ आ जाता है। माथुर और द्यूतकर उसे मारते पीटते है। इतने में ही दुर्दरक वहॉ आकर संवाहक को छुड़ाता है।

माथुर की आंखों में धूल झोंकर दुर्दरक संवाहक सहित भाग जाता है। चारुदत्त का पुराना भृत्य वसन्तसेना के घर में शरण लेता है जिसे देख वसन्तसेना बड़ी प्रसन्न होती है वस्तुस्थिति को भॉप पीछे-पीछे आये माथुर और द्यूतकर को अपना एक आभूषण देकर संवाहक को मुक्त कराकर उन दोनों को संतुष्ट कर भेजती है। मुक्त हुआ संवाहक विरक्त भाव से शाक्य श्रमण बन जाता है। बौद्ध भिक्षु वने संवाहक को

वसन्तसेना के हाथी खुण्ट मोद्रक द्वारा पकड़ लिए जाने पर कर्णपूरक सेवक उसे (संवाहक को) किसी प्रकार हाथी से छुड़ा लेता है जिससे प्रसन्न होकर घटना-क्रम के प्रत्यक्षदर्शी चारुदत्त ने पुरस्कार स्वरूप अपना प्रावारक (शाल) कर्णपूरक को दे दिया।

परिव्राजक को बचाने के अपने कौशल और शाल प्राप्ति की बाते बता कर्णपूरक ने वह प्रावारक (शाल) वसन्तसेना को दे दिया। प्रिय की उपभुक्त वस्तु को पा वसन्तसेना निहाल हो गयी इसलिए खुशी-खुशी उसे ओढ़ लिया और जाते हुए चारुदत्त को देखने के लिए महल की छत पर चढ़ गयी।

मध्य रात्रि तक घर न लौटकर आये चारुदत्त के लिए चिन्तित चेट, रात्रि में सुवर्ण भाण्ड का रक्षा का दयित्व विदूषक का होने के कारण उसके आते ही चेट वर्धमानक ने विदूषक को सौप दिया। चारुदत्त और विदूषक को नींद आयी ही थी कि मदनिका का प्रेमी शर्विलक चोरी की नीयत से सेंध लगाकर चारुदत्त के घर मे घुसा। स्वप्न में भयभीत होकर विदूषक सुवर्ण-भाण्ड को चारुदत्त को सौपता है जिसे शर्विलक लेकर चला जाता है। रदनिका शोर मचाती है। जगकर सेंध देख चारुदत्त प्रथम तो सेंध की प्रशंसा करता है पर दूसरे ही क्षण लोगों में बदनामी के भय से भयभीत भी हो उठता है। उस कलंक से पति को बचाने के लिए पति की हित कामना की चाह से धूता अपनी रत्नावली चारुदत्त को दे देती है जिसे चारुदत्त विदूषक द्वारा वसन्तसेना के घर भेज देता है विदूषक रत्नावली को यह कहकर वसन्तसेना को देता है कि चारुदत्त सुवर्ण-भाण्ड को जुए में हार गए है। वसन्तसेना रत्नावली को रख विदूषक को विदा कर विदूषक द्वारा चारुदत्त को सन्देश भिजवाती है कि ''अहमपि प्रदोषे आर्य प्रेक्षितुमागच्छामि।''

राजा के साले संस्थान की आयी गाड़ी में अपने जाने की बात सुनकर वसन्तसेना ने बिगड़ते हुए वहाँ जाना नकार दिया। चारुदत्त के घर से चोरी किए हुए आभूषणों को लेकर शर्विलक मदनिका के पास वसन्तसेना के घर पहुँचा। मदनिका आभूषणों को पहचान लेती है तदपि अलंकार अर्पण के लिए कह देती है। वसन्तसेना मदनिका और शर्विलक की नोंक-झोंक सुन लेती है। शर्विलक जाकर अलंकार

वसन्तसेना को सौंप देता है। अनजान सी बन आभूषण ले, आभूषण के बदले वह मदनिका को शर्विलक को वधू बना दोनों को गाड़ी में बिठाकर वर-वधू के स्वरूप में विदा करती है। मार्ग में शर्विलक गोपाल दारक के कैद की घोषणा सुन, चेट के साथ मदनिका को सार्थवाह रेभिल के घर भेज देता है और स्वयं अपने मित्र गोपालदारक को बन्धन से मुक्त कराने के लिए चल पड़ता है।

इधर घर पहुँचकर रत्नावली को वसन्तमेला के पास पहुँचाने और उसके द्वारा रख लिए जाने का समाचार तथा सन्ध्या समय वसन्तसेना का चारुदत्त के पास आने का शुभ सन्देश विदूषक सुना ही रहा था कि वसन्तसेना चारुदत्त के घर मे घुसती दिखायी दी। घनघोर घटा बिजली की कड़कड़ाहट के लिए विचित्र सी छटा, बूँदो की लड़ी वर्षा की झड़ी वसन्तसेना को अपने गन्तव्य तक जाने को न रोक सकी और ऐसे दुर्दिन में मिलन के लिए उतावलापन लिए चारुदत्त का चित्त और चञ्चल हो उठा। वर्षा मे भीगे वसन वसन्तसेना का सस्पर्शमय स्वागतार्थ आलिङ्गन –

धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि मात्रेषु परिष्वजन्ति।।

— मृच्छ० ५.४६

की मधुर स्मृतियों में खोए चारुदत्त के समक्ष चेटी से विदूषक ने वसन्तसेना के आगमन का कारण पूछा तो उत्तर मे चेटी ने बताया कि वे रत्नावली का मूल्य पूछने आई है, वे उसे जुए में हार गयी है। उसके बदले में वह सुवर्ण भाण्ड ले लीजिए जिसे देखकर विदूषक और चारुदत्त आश्चर्य चकित से रह गए। चेटी के द्वारा विदूषक को सब बातें बतायी गयी तो विदुषक ने वे सब ही बातें चारुदत्त को बता दीं। इतने मे अपने भीगे वस्त्र बदल वसन्तसेना भी आ गयी। दुर्दिन देख वसन्तसेना ने चारुदत्त के साथ रात उसके आवास मे ही बिताई। भोर का समय था। चेटी ने वसन्तसेना को जगाते ही बताया कि आर्य चारुदत्त जीर्णोद्यान में बुला गए है। गाड़ी तैयार है। मगनमन वसन्तसेना धूता के पास रत्नावली भेजती है पर सती साध्वी धूता उसे वापिस कर देती है। इतने ही में रदनिका चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को गोद में

लिए आती है और उसे खेलने के लिए मिट्टी की गाड़ी देना चाहती है पर वह उस गाड़ी को नहीं लेता। वह सोने की गाड़ी माँगता है। न मिलने पर मचलता है, रोता है। वसन्तसेना गाड़ी बनाने के लिए उसे अपने आभूषण दे देती है। गाड़ी तैयार है इस सूचना पर वसन्तसेना तैयार होती है और वर्धमानक विछावन लेने घर चला जाता है। दूसरी ओर शकार की गाड़ी भीड़ में फॅस जाने के कारण गाड़ीवान चारुदत्त के पक्ष द्वार पर रोक देता है और दूसरी गाड़ी को मदद करने चला जाता है। द्वार पर खड़ी शकार की गाड़ी को चारुदत्त की गाड़ी समझकर वसन्तसेना उसमें पुष्पकरण्डक उद्यान जाने के लिए चढ़ जाती है। शकार का गाड़ीवान स्थावरक गाड़ी को रास्ता मिलते ही गाड़ी हाँक देता है। इसी समय पालक द्वारा बन्दी बनाया हुआ आर्यक किसी प्रकार भागकर राजमार्ग पर खड़ी चारुदत्त की गाड़ी में चढ़ जाता है। लोहे की बेड़ियों की आवाज को आभूषणो की झकार समझकर, वसन्तसेना को आया जान वर्धमानक गाड़ीवान गाड़ी हाँक देता है। वीरक और चन्दनक चारुदत्त की गाड़ी को रोक गाड़ी की तलाशी लेने गाड़ी पर चढ़कर देखता है तो उनका प्राप्तव्य आर्यक उसी में बैठा है। आर्यक रक्षा की याचना करता है। वस्तु स्थिति को भांप 'अभयदान' दान दे गाड़ी को आगे बढ़ाने को कहता पर वीरक इस पर विश्वास नहीं करता तो चन्दनक उसे पटक देता है। चन्द्रनक का इशारा पा वर्धमानक गाड़ी बढ़ा देता है। प्रवहण विपर्यय नाटक को एक नई दिशा और मोड़ दे जाता है।

प्रवहणक में आर्यक को देखकर विदूषक कह उठता है कि यहॉ वसन्तसेना नहीं है, वसन्तसेन है। चारुदत्त स्वयं जाकर देखता है और तुरन्त वस्तुस्थिति भाँप आर्यक को अभयदान देकर उसके बन्धन कटवाकर उसे विदा करता है। **मैत्रेय ! क्षिप निगडं पुराणकूपे, पश्येयुः क्षितिपयो चारदृष्ट्या।"** अब यहाँ क्षणभर भी हमारा भी ठहरना उचित नहीं। वसन्तसेना के दर्शन को उत्सुक चारुदत्त कह ही रहा था कि बार-बार वामाक्षि स्पन्दन और अपशकुन स्वरूप अनाभ्युदयिक श्रमण दर्शन, अमङ्गल सूचक बौद्ध भिक्षु का दर्शन होते हुए भी उससे बचते हुए चारुदत्त और मैत्रेय निकल गए। शकार उद्यान में पहुँच, वहाँ उसकी रंगरेलियों के कार्यों में विघ्नकारी समझ, जन्म से ही प्रव्रजित न होने का दोष लगाकर बौद्ध भिक्षु को पीटने को उद्यत हो जाता है।

विट ने उसे बचाया। शकार की स्तुति सी कर प्राण बचाकर बौद्ध भिक्षु का वहाँ से खिसक जाना। शकार और विट द्वारा एकान्त में स्थावरक गाड़ीवान की बेशब्री से प्रतीक्षा करना, स्थावरक के आने पर गाड़ी मे वसन्तसेना को देखकर आश्चर्य में पड़ जाना और डर जाना। शकार के 'स्त्री है' कहने पर विट का वसन्तसेना को देखना, वसन्तसेना द्वारा उससे अपनी रक्षा की याचना, विट द्वारा ढाढ़स बँधाना, अतएव राक्षसी बताना। शकार को पैदल ही चलने की राय देना शकार का वैसा करने (पैदल चलने) से इन्कार करना। सवारी में बैठी स्त्री स्वरूपा राक्षसी को मारने को कहना। चेट द्वारा मारने को मना किया जाना। शकार द्वारा चेट को पीटना और आड़ में बैठने को कहना, चेट का चला जाना। चेट को खोजने के बहाने विट को भी शकार का वसन्तसेना से प्रणय याचना करना और उसके द्वारा अस्वीकार ही न करना, अपितु उसे इस याचना के लिए भला-बुरा कहना। याचना और प्रार्थना को ठुकराये जाने पर क्रुद्ध होकर वसन्तसेना का गला, घोंट देना, जिससे मूर्छित हो वसन्तसेना गिर पड़ी। चेट और विट के वसन्तसेना के विषय में पूँछे जाने पर शकार को गला घोटने की बात बतायी और मूर्छित वसन्तसेना का शरीर दिखला देता है। दुःखी विट शकार का साथ छोंड़ शर्विलक आदि से मिलने चला जाता है। शकार चेट को भी घर भेज देता है। शकार वसन्तसेना के शरीर को सूखे पत्तों से ढककर चला जाता है और चारुदत्त के विरुद्ध वसन्तसेना की हत्या का अभियोग चलाने न्यायाधिकरण के द्वार जा खटखटाता है।

इधर बौद्ध भिक्षुक अपना चीवर सुखाने के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़ता वहॉ आ जाता है। पत्तों में दबी कुछ होश में आने पर वसन्तसेना हाथ हिलाती है। भिक्षुक पत्ते हटाकर वसन्तसेना को पहचान लेता है। वसन्तसेना सहारा लेकर उठ खड़ी होती है। भिक्षुक कुछ क्षण के लिए विश्राम देने के लिए वसन्तसेना को बिहार में ले जाता है और वसन्तसेना को पुनर्जीवन दिलाने के अपने शुभ प्रयास में सफल हो जाता है। आज की कुचाल चाल चल कानूनी दाव-पेचों से शकार सही को गलत और गलत को सही सिद्ध करने में सफल हो जाता है जिससे चारुदत्त के लिए मृत्युदण्ड सुना दिया जाता है। जो तत्कालीन न्यायाधिकरणों की विवशता पर करारा प्रहार है।

डिण्डिम घोष करते हुए चाण्डाल चारुदत्त को वध्य-स्थल की ओर

ले जाते हुए दिखायी देते हैं। विदूषक और रोहसेन वहाँ पहुँच चारुदत्त को छोड़ने और उसके बदले स्वयं का वध करने के लिए कहते हैं। शकार के महल में बँधा हुआ स्थावरक चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है कि वसन्तसेना को चारुदत्त ने नहीं शकार ने मारा है परन्तु उसकी आवाज कोई साफ नहीं सुन पाता। तभी किसी प्रकार कूदकर वही बात फिर कहता है तो शकार उस पर अपने सोने को चुराने का झूठा इल्जाम लगाकर उसे झूठा बताता है। सोने को लौटाने के लिए ही मैंने इसे बॉध रखा है। चाण्डाल शकार की बात सच मान आगे बढ़ते है और शकार स्थावरण को मारकर भगा देता है और चाण्डालों से चारुदत्त को मारने को बार-बार कहता है। चारुदत्त को घर की ओर जाते समय मार्ग में भीड़ को देखकर अपने साथ चलते हुए भिक्षु से जानकारी करने के लिए वसन्तसेना ने कहा ही था कि चाण्डाल चारुदत्त के अपराध और तत्परिणाम उसे मिले प्राणदण्ड की घोषणा कानों में पड़ी। वसन्तसेना और भिक्षुक वह्य-स्थल की ओर भागते है। चाण्डाल को शूली पर चढ़ाना ही चाहते थे वसन्तसेना और भिक्षुक वहाँ पहुँच गए। वसन्तसेना को जीवित देख चाण्डाल चारुदत्त को छोड़ राजा को समाचार देते है। वसन्तसेना को देख शकार भी वहाँ से भाग जाता है और चारुदत्त, वसन्तसेना और भिक्षुक को पहचान हर्ष विभोर हो उठता है। शर्विलक आकार चारुदत्त को आर्यक द्वारा पालक के मारे जाने का सन्देश देता है तभी कुछ लोग शकार को पकड़ लाते हैं। आर्यक सिंहासनासीन हो जाता है। वस्तु स्थिति का स्पष्ट चित्र उभरते ही झूँठी गवाही, युक्तियाँ नंगी हो गयी जिससे नए शासक आर्यक ने चारुदत्त के स्थान पर शकार को मृत्युदण्ड की घोषणा करायी शकार के गिड़गिड़ाने पर चारुदत्त उसे छुड़वा देता है।
''शत्रुः कृतापराधः शरणमुपेत्य पादयोः पतितः शस्त्रेण न हन्तव्यः, उपकारहतस्तु कर्तव्यः। तन्मुच्यताम्।''

अपने जीवन सर्वस्व चारुदत्त के वध की खबर सुनकर धूता प्राण त्याग सती होने पर तैयार है। उधर चारुदत्त धूता को याद कर मूर्च्छित हो जाता है। चन्दक ने धूता के सती होने की तैयारी की बात सुन सब उसी ओर भागते है। विदूषक के पति बिना चितारोहण पाप कहे जाने पर धूता – **''वरं पापा चरणम्। न पुनरार्य पुत्रस्यामङ्गलाकर्णनम्''** कह चिता पर चढ़ना ही चाहती थी कि चारुदत्त ने धूता को

पुकारते हुए कहा –

"हा प्रेयसि! प्रेयसि विद्यमाने कोऽयं कठोरो व्यवसाय आसीत्।
अम्भोजिनी लोचनमुद्रणं किं भानावनस्तं गमिते करोति।।"

— (मृच्छ० १०.५८)

साथ में उपस्थित वसन्तसेना को देखकर धूता ने "दिष्ट्या कुशलिनी संवृत्ता" कहते हुए धूता से चिपट गयी। शर्विलक ने आकर वसन्तसेना से कहा कि राजा 'वधू' पद से तुम्हें अनुग्रहीत कर रहे हैं। वसन्तसेना स्वयं के लिए 'वधू' शब्द को सुन आनन्द विभोर हो उठी। भिक्षुक को बिहारों का कुलपति और चाण्डालों को चाण्डालों का अधिपति बना दिया। चन्दनक, दण्डपालक और शकार को यथावत् अस्थायी रूप से छोड़ दिया। चारुदत्त और वसन्तसेना का विवाह कराकर जहाँ गणिका को सहमत किया गया है वहीं समाज में पनपती सौतिया डाह को बहन के रिश्ते मे बदलने और मनोवृत्ति को पावन बनाने का सही साहस किया है। सब कुछ पा आर्य चारुदत्त संसार में रोज-रोज घटित घटनाओं के लेखाजोखा का खाका सा खींचते हुए कहने लगा –

"कांश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा कांश्चिन्नयत्युन्नतिं,
कांश्चित् पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयत्याकुलान्।
अन्योन्यं प्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधयन्नेष
क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः।। "

– (मृच्छ० १०.६०)

किन्हीं को रीता-रीता कर देता है और किन्हीं को भरपूर भर देता है। किन्ही को बहुत बढ़ा देता है तथा किन्हीं को बहुत गिरा देता है, किन्हीं को व्याकुलता में डाल देता है। इस प्रकार विरोधी वृत्तियों को सँजोकर संसार की अवस्था का बोध कराता हुआ कूपयन्त्र (रहट) की बाल्टियों की तरह उत्थान पतन करने में प्रसक्त भाग्य तरह-तरह के खेल खिलाता है। कहते-कहते भरतवाक्य के साथ प्रकरण का समापन हो जाता है।

इस प्रकार मृच्छकटिक की कथा कल्पनाप्रसूत है तथा लोकप्रसिद्ध प्रेमवृत्त पर आधारित इसकी रचना की गयी है। इसकी कथा अभिनय के द्वारा आगे बढ़ती है। साथ ही इस प्रकरण में नाटककार ने सामाजिक को निरन्तर आगे बढ़ाने के लिए सर्वत्र कौतूहलपूर्ण अवसर और सुयोग दिए है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि राजन्य वर्ग को छोड़कर इसके नाटककार ने अपनी कथावस्तु का चयन मध्यमवर्ग से किया है। उज्ञयिनी से मध्यवर्गीय समाज की दैनिक परिचर्या को इस रूपक का आधार बनाकर कवि ने इसे अत्यधिक स्वाभाविकता दे दी है। अपनी विशिष्ट कथावस्तु के कारण कवि ने इस प्रकरण को संस्कृत नाट्य-साहित्य में एकमात्र यथार्थवादी प्रकरण कहलाने का श्रेय प्रदान किया है। इसमें जीवन की ऊष्मा और कठोर वास्तविकता के परिदर्शन होते हैं। डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास[३] का कथन है कि यद्यपि, बदमाश, राजनैतिक षड्यन्त्री, भिक्षु, राजसेवक, निठल्ले, बेकार लोग, पुलिस, कर्मचारी, नौकरानियाँ, विट और गणिकाओं का विचित्र जगत् है, फिर भी इनमें अनेकों रमणीय स्थल हैं जो काव्य की दृष्टि से निम्नकोटि के नहीं कहे जा सकते हैं। इसका प्रणयचित्रण राजा दुष्यन्त तथा तपोवन-सुन्दरी शकुन्तला का विलासपूर्ण प्रेम नहीं है, न वह भवभूति के राम तथा सीता का आदर्श एवं गम्भीर प्रेम है, यह तो एक सामान्य नागरिक एवं गणिका के प्रेम का चित्र है जो पवित्रता, गंभीरता एवं कोमलता में किसी से कम नहीं है। प्रकरण की विचित्र सृष्टि इस प्रेम की आधारभित्ति के रूप में संसृष्ट है। नाटककार ने इस प्रणय कथा के साथ राजनैतिक षड़यन्त्र की कथा को दूधपानी की तरह इस तरह मिला दिया है कि दोनों का भेद कही प्रतीत ही नहीं होता है। पालक और आर्यक की राजनैतिक कथावस्तु चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रेमगाथा में अनुस्यूत सी प्रतीत होती है। अस्तु 'मृच्छकटिक' की कथावस्तु में प्रहसन और विषाद, व्यंग्य और करुणा, काव्य और प्रतिभा, दया और मानवता को एक साथ मिलाकर इसके शिल्प अति आकर्षक हो गए है।

३. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ ६३ - ६४।

पात्र-चित्रण

नाट्यसाहित्य में 'नेता' (नायक) रूपक का एक तत्त्व माना गया है। उसके चार भेदों का वर्णन करके उसके सहायकों तथा प्रतिनायक का भी वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'नायिका' का भी विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। आधुनिक नाट्य समीक्षा में नाटक के इस तत्त्व का 'पात्र तथा चरित्र-चित्रण' के रूप में विवेचन किया जाता है। मृच्छकटिक पात्र-चित्रण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण प्रकरण है। इसकी कथावस्तु मध्यवर्ग के जीवन के आधार पर कल्पित की गई है। इसमें जहाँ एक ओर समाज के सभी वर्गों के पात्र मिलते है वहीं दूसरी ओर चोर, जुआरी, विट, चेट और चाण्डाल का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार धूता जैसी पतिव्रता नारी का चित्रण है तो वेश्या और गणिकाओं का भी। इस प्रकरण का वातावरण राजसेवक पुलिस कर्मचारी, वेश्या, विट-चेट, चोर जुआरी आदि से निर्मित हुआ है इसके पात्र सजीवता की मूर्ति हैं। वे इसी लोक के जीते जागते प्राणी हैं यहाँ अतिमानवीय पात्रों की कल्पना नही की गई, न आदर्शवादी दृष्टिकोण से पात्रों का चित्रण किया गया है। मृच्छकटिक के पात्र किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधि नहीं है, वे अपनी निजी विशेषतायें रखते है। उदाहरणार्थ चारुदत्त को सामान्य ब्राह्मण-श्रेष्ठी नही कहा जा सकता और न ही वसन्तसेना सामान्य गणिका है। ये अपनी-अपनी व्यक्तिगत विशेषतायें लेकर हमारे सामने आते है। इस प्रकार शर्विलक, संवाहक तथा विट आदि में भी अपनी व्यक्तिगत विशेषतायें है। सभी पात्रों के कार्य और व्यवहार अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार दिखलाये गये है। उनकी भाषा और विचार में भी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। उक्त विशेषता संस्कृत के अन्य नाटकों में नहीं मिलती। मृच्छकटिक में आये हुए पात्र निम्नवत् हैं —

पुरुष-पात्र

सूत्रधार	प्रधान नट
चारुदत्त	दरिद्र द्विजसार्थवाह, नायक

मैत्रेय	चारुदत्त का मित्र, विदूषक
शकार	राजा पालक का श्यालक, प्रतिनायक
विट	शकार का सहचर
चेट	शकार का दास
वर्धमानक	चारुदत्त का दास
संवाहक	चारुदत्त का भूतपूर्व भृत्य, जूए में सर्वस्व खोकर निर्वेद से पश्चात् भिक्षु
माथुर	सभिक
द्यूतकर, दर्दुरक	जुआड़ी
कर्णपूरक	वसन्तसेना का भृत्य
शर्विलक	मदनिका का प्रेमी ब्राह्मण, चोर
चेट	वसन्तसेना का दास
बन्धुल	वेश्यापुत्र
कुम्भीलक चेट	वसन्तसेना का दास
विट	वसन्तसेना का परिचारक
रोहसेन	चारुदत्त का पुत्र
स्थावरक चेट	शकार का दास
आर्यक	गोपाल-बालक, राजा पालक का कैदी, पश्चात् राजा
वीरक	राजा पालक का सेनापति

चन्दनक	राजा पालक का बलपति (दोनों राजापालक के नगररक्षक हैं।)
भिक्षु	बौद्ध-संन्यासी, पूर्व आश्रम का संवाहक
शोधनक	न्यायालय में काम करने वाला नौकर
अधिकरणिक	न्यायाधीश
श्रेष्ठी	नगर का प्रतिष्ठित पुरुष, न्याय करने में अधिकरणिक का सहायक
कायस्थ	न्यायालय का लेखक (पेशकार)
चाण्डाल	फाँसी देने वाले जल्लाद।

स्त्री-पात्र

नटी	सूत्रधार की पत्नी
वसन्तसेना	गणिका, नायिका
रदनिका	चारुदत्त की दासी
चेटी	वसन्तसेना की दासी
मदनिका	दूसरी दासी, शर्विलक की प्रेयसी
धूता	चारुदत्त की भार्या
चेटी	वसन्तसेना की दासी
छत्रधारिणी	वसन्तसेना की दासी
चेटी	चारुदत्त की दासी
वृद्धा	वसन्तसेना की माता

प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेपताएं इस प्रकार है —

चारुदत्त –

मृच्छकटिक के नायक चारुदत्त के चरित्र-चित्रण में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। चारुदत्त का अभिजात चरित्र, एक विचित्र और अद्भुत् रूप लेकर हमारे सामने उपस्थित होता है। यह हमारे सामाजिक जीवन के आलोडन-विलोडन पर समासीन कंक्रीट की बनी उस भव्य और दिव्य मानवमूर्ति के समान अवस्थित हैं, जिसके दर्शन हिन्दू सामाजिक जीवनपरिधि के किसी भी बिन्दु से किये जा सकते हैं। यह चरित्र अपनी लौकिकता में जितना ही इस मिट्टी से संकुल, संयुक्त, कौटुम्बिक, पारिवारिक और सामाजिक है, अपनी महिमा और मानवता में उतना ही आकाश को चूमता हुआ, मानवीय और प्रभविष्णु। सम्पूर्ण संस्कृत नाट्य साहित्य मे इतना विलक्षण, व्यवहारकुशल, त्यागी, गुणज्ञ एवं भव्य, शील, सौन्दर्य और सौहार्द पूर्ण चरित्र नायक का निर्माण सम्भवतः आज तक नहीं हुआ है।

चारुदत्त अभिजात कुलोत्पन्न एक युवाब्राह्मण है। अपने ब्राह्मणत्व के प्रति सर्वथा सतर्क रहते हुए भी वह कर्मणा सार्थवाह है। मालतीमाधव की तरह चारुदत्त न तो मध्यवर्गीय नागरिक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है और न प्रणय व्यापार के लिए स्वयं सक्रिय प्रणयी। यह तो वसन्तसेना की प्रणय लीला में स्वयं एक उदासीन (Dummy) नायक की तरह दीख पड़ता है। प्रकरण की नायिका वसन्तसेना चारुदत्त के गुण से आकृष्ट, उसके व्यक्तित्व से प्रभावित प्रणयलीला में पूर्ण समर्पित स्वयं सक्रिय है। इस प्रणयलीला का सम्पूर्ण सचेष्ट संवेदना अथवा संयोगार्थ मिलन का सारा श्रेय वसन्तसेना को ही है। इस दृष्टि से चारुदत्त में न तो कहीं विरह की आकुलता दीखती है और न कहीं, वासना की उत्कट गन्ध ही। वह एक निरपेक्ष, दयालु, सहृदय दाता एवं कर्मनिष्ठ युवा नायक है। न तो वह अधिक विलासी है और न श्रृंगारी ही, न साहसी है न प्रेम प्रपंची, वह केवल – सीधा, सादा एवं एक सरस सहृदय नागरिक है। वह गरीबों का कल्पवृक्ष हैं, दीनों, दलितों, असहायों की सेवा वह दिल खोलकर करता है। ऐसा करते रहने के कारण वह स्वयं परम दरिद्र बन जाता है फिर भी दीनों

और असहायों की सेवा से विमुख नहीं होता। उसके चरित्र में कुछ ऐसी मार्मिक रेखाएँ हैं जो उसे उत्कृष्ट कलात्मकता एवं उदात्त नायकत्व प्रदान करती हैं।

चारुदत्त कुलीन, सुसभ्य एवं एक सच्चरित्र युवक है। उसमे कुछ ऐसे महार्घ गुण है, कुछ ऐसी विलक्षणता है जिसके कारण उसने उज्जयिनी के सम्पूर्ण जन-मन को जीत लिया है। अपनी दानशीलता के कारण ही एक समुद्रश्रेष्ठी से चारुदत्त दरिद्र बन गया है, और दरिद्र हो जाने पर भी उसे दुःख इस बात का है कि याचक उसके घर को समृद्धिहीन जानकर अब वहाँ नहीं आते हैं। वह अपने को उस हाथी की तरह मानता है जिसके मदजल ने अनेकों भौरों को सन्तुष्ट किया है। किन्तु उसी के सूख जाने पर अब उसके पास कोई भौरा नही आता है।[1]

इस स्वाभिमानी युवक की वेदना निर्वेद बनकर तब फूट पड़ती है, जब चोर वसन्तसेना का निक्षिप्त आभूषण सेंध काटकर उसके घर से जुरा लेता है। उसे प्रसन्नता होती है कि चोर ही सही, पर कम से कम सेंध काटकर उसे विफल होकर तो घर से लौटना नहीं पड़ा। वसन्तसेना के उस अल्पमूल्य आभूषण के बदले अपनी साध्वी पत्नी धूता के अवशिष्ट एकमात्र आभूषण बहुमूल्य रत्नावली देने मे भी हिचक नहीं होती। संस्कृत के अन्य नाटकों के नायकों की तरह चारुदत्त कोरा आदर्श नायक नहीं है, वह तो मध्यवर्ग के उस व्यक्तिगत चित्र को उपस्थित करता है जो एक अभिजात सुसंस्कृत सामान्य युवा का है।

वसन्तसेना –

वसन्तसेना नारीचरित्र की दृढ़ता का एक प्रतीक है। सत्य और विशुद्ध प्रेम की एक प्रतिमूर्ति है। अपूर्वत्याग और गुणस्पृहा की आग में निरन्तर जलकर, गणिकावृत्ति के कालुष्य को जलाकर, भास्वर सोने की तरह दमकता एक नारी रत्न है। भवभूति की सीता की तरह न इसमे आदर्श की मर्यादा है और न मालती की तरह पिता की परतन्त्रता में आबद्ध किशोरी ही है। न उसमें शकुन्तला की बाल सुलभ मुग्ध

१. मृच्छ १.१२ ''एतत्तु मां दहति यत् गृहमस्मदीयं क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्।।''

मनोहारिता है और न मालविका की तरह अस्थान में फेंका गया हीरे का टुकड़ा। उर्वशी भी वसन्तसेना से कई अंशों में हीन है। यद्यपि उर्वशी की तरह ही जीवन की अनेक कटु मधुर अनुभूतियों को लेकर ही वसन्तसेना सामाजिकों के सन्मुख उपस्थित होती है, फिर भी अपने त्याग, प्रत्युत्पन्नमतित्व, शालीनता, गुणस्पृहा और एकनिष्ठ प्रेम में उर्वशी को वह बहुत पीछे छोड़ गई है। उज्ञयिनी की वह एक समृद्ध गणिका की पुत्री है जिसे विट – वापी, लता या नौका की तरह सर्वभोग्या समझता है।[२]

वह अति सम्पन्न प्रभावशाली राजश्यालक शकार जैसे अनुरक्त राजबल्लभ को अपनी माँ की प्रेरणा के बावजूद ठुकराकर निर्धन चारुदत्त के प्रति अपनी हार्दिक आसक्ति अभिव्यक्त कर शुद्ध एवं गम्भीर प्रेम का परिचय देती है। गणिकावृत्ति से ही उसकी माँ ने अपार समृद्धि अर्जित की है, किन्तु वसन्तसेना का कोमल एवं सात्विक हृदय इस विपुल वैभव के प्रति विद्रोह कर उठता है, गणिका के गर्हित जीवन के विरुद्ध उसका हृदय चीत्कार कर उठता है। राजश्यालक शकार ने उसे पाने के लिए उसके घर स्वर्णराशि भेज दी, माता साग्रह अनुरोध करते हुए उसे स्वीकार करने की जब प्रेरणा देने लगी, तब स्पष्ट शब्दों में उसने माँ को दो टूक जबाव दे दिया – "यदि मां जीवन्तीमिच्छसि, तदा एवं न पुनरहं आज्ञापयितव्या।" यदि माँ मुझे जिन्दा देखना चाहती है तो भूल से भी ऐसा प्रस्ताव मेरे सामने कभी न आने दें। वह अपने गणिका के गर्हित जीवन को छोड़कर इस अपार सम्पदा को ठुकराकर शुद्धाचारी गुणज्ञ, अभिजात कुलोत्पन्न, दरिद्र किन्तु सदाचारी, सुशील एवं सुन्दर युवा चारुदत्त को मन ही मन अपना हृदयबल्लभ के रूप में स्वीकार कर लेती है। किन्तु, उसका मन सदैव इस आशंका से अभिभूत रहता है कि उसकी अकुलीनता उसके इस शुद्ध एवं पवित्र प्रणय का वाधक न बन जाय। स्वभाव से अति उदार, शालीन एव अकृपण वसन्तसेना अपरिचित जुआरी संवाहक के शरणागत होते ही उसे अभयदान दे देती है। यह संवाहक का कर्ज चुकाने के लिए बिना हिचक अपना सोने का कड़ा भेज देती है, वह भी यह कहकर कि संवाहक ने ही इसे भेजा है। वसन्तसेना के शालीन एवं मनोमुग्धकारी व्यवहार के कारण

२. मृच्छ० १. ३२ "त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्व भज।"

ही वसन्तसेना के विरुद्ध विट का व्यवहार सर्वथा परिवर्तित हो जाता है। वसन्तसेना को परेशान करने की अपेक्षा अब वह उसका सहयोगी बन जाता है –

कामं प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं सौदामिनीव जलदोदरसन्धिलीना।
त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं गन्धश्च भीरु मुखराणि च नूपुराणि।।

– मृच्छ० १.३५

इस प्रकार अपने मधुर शुद्ध और पवित्र प्रणय से अन्त में चारुदत्त के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करके सफलता प्राप्त कर ही लेती है। उज्ञयिनी के आभूषणभूत चारुदत्त के हृदय को जीत लेती है।

शकार –

शकार इस प्रकरण का प्रतिनायक है। वह किसी व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र है। विट उसे 'काणेलीमातः' कहकर संबोधित करता है। इसकी बहन राजा पालक की रखैल है। यह एक नीच कुलोत्पन्न व्यक्तिहै। राजा के साले होने का उसे बड़ा घमड है। अपने को वह देवपुरुष, मनुष्य, वासुदेव कहता है। मूर्खता, कायरता, हठधर्मिता, क्रूरता, विलासिता और दम्भ का विचित्र समवाय लेकर वह सामाजिक के सम्मुख उपस्थित होता है। उसे इस बात का बड़ा गौरव है कि उसकी बहन राजा की रखैल है, और वह चाहे तो अपनी माँ, बहन को कहकर न्यायाधीश को भी पदच्युत करवा सकता है। यद्यपि वह परम बेवकूफ है, महामूर्ख है, कायर और क्रूर है फिर भी लोगों के सामने अपनी विद्वता और वीरता हमेशा प्रदर्शित करना चाहता है। वह अशिक्षित और दम्भी है। बात करने की उसमे तमीज नही है। न उसे किसी शास्त्र का ज्ञान है और न व्यवहार का ही। किन्तु, उल्टा सीधा जो मन में आता है वही बकता है। वह वसन्तसेना के बदले रदनिका को बालों से ठीक उसी प्रकार पकड़ लेता है, जैसे चाणक्य ने द्रौपदी को बालों से पकड़ कर घसीटा था।[३]

३ मृच्छ० १.३६ "केशवृन्दे परामृष्टा चाणक्येनेव द्रौपदी।"

वह वसन्तसेना को पकड़कर उसी तरह मार डालेगा जैसे हनुमान ने विश्वावसु की बहन सुभद्रा को मार डाला था।[४] वह वसन्तसेना को चाहता है किन्तु वसन्तसेना उससे घृणा करती है। वह धन और बल से इसे वश में लाना चाहता है किन्तु, इसमें उसे सफलता नहीं मिलती है। अन्त में चिढ़ कर अवसर हाथ आते ही वसन्तसेना की हत्या कर देता है। हत्या का दोष निरीह चारुदत्त के माथे मढ़कर और प्रपंच कर उसे प्राणदण्ड दिलवाने में सफलता प्राप्त कर लेता है। भिक्षुओं का तो वह कट्टर शत्रु है। स्वाभिमान तो इसे छू तक नहीं गया है। जिस चारुदत्त को बेटे के साथ मरवाने में इसे थोड़ी भी हिचक नहीं थी उसी की शरण में गिड़गिड़ाते हुए प्राण की भीख माँगने में भी उसे संकोच नहीं होता। वह अभिनय, चाल-ढाल, बात-चीत सबसे सामाजिकों में हास्य के वातावरण की सृष्टि करता है। उसके सेवक विट और चेट भी उसे डरपोक एव कायर समझते है।

विदूषक –

विदूषक का नाम मैत्रेय है। यह जाति का ब्राह्मण तथा चारुदत्त का सचिव ही नहीं, घनिष्ठ मित्र भी है। संस्कृत के अन्य नाटको की तरह मृच्छकटिक के विदुषक की सृष्टि केवल हास्योत्पादन के लिए ही नहीं है पर, हास्यसृष्टि भी इसके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण अंग है। मैत्रेय मोदक खाने वाला केवल ' औदरिक' ब्राह्मण ही नहीं है, वह नायक चारुदत्त का एक सच्चा मित्र है, सुख-दुःख में साथ देने वाला एक अनन्य बन्धु। मैत्रेय पेटू ब्राह्मण होते हुए भी सुख में साथ देने वाला चारुदत्त का जैसा पक्का मित्र था वैसा ही उसकी दरिद्रता में भी साथ निभाने वाले सच्चा दोस्त है। चारुदत्त के शब्दों में वह उसका 'सार्वकालिक मित्र' है[५] चारुदत्त की गरीबी के कारण अब मैत्रेय को उसके यहां यथेच्छ वह भोजन नहीं मिलते, जिनसे वह पहले की तरह चौराहे के बैल जैसे जुगाली करता रहे, फिर भी चारुदत्त का वह ऐसा सच्चा मित्र है कि खाने पीने का जुगाड़ कहीं दूसरी जगह कर रात घोंसले की ओर लौटते कबूतर की

४. मृच्छ० १.३५ ''कामं प्रदोषपतिमिरेण दृश्यसे त्वं सौदामिनीव जलदोदरसन्धिलीना। त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं गन्धश्च भीरू मुखराणि च नूपुराणि।।''

५ मृच्छ० ''अये, सर्वकालिक मित्रं मैत्रेयः प्राप्तः।''

तरह सोने के लिए चारुदत्त के घर आ जाता है। चारुदत्त के लिए कोई भी त्याग करने को वह प्रस्तुत है।

चारुदत्त की समृद्धि की वह सतत् कामना करता है। किसी भी स्थिति में वह चारुदत्त को दुःखी नही देखना चाहता है। वह रदनिका के अपमान की बात चारुदत्त के सामने इसलिए प्रकट नहीं होने देना चाहता है कि यह जानकर उसे मानसिक पीड़ा होगी। चारुदत्त की किसी भी तरह की बदनामी वह वर्दाश्त नहीं कर सकता था। दीपक जलाने के लिए उसके घर में तेल नहीं है – यह बात भी वह चारुदत्त के कान में ही कहता है। वह नहीं चाहता कि वसन्तसेना को चारुदत्त की दरिद्रता का थोड़ा भी आभास मिले। चारुदत्त उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। उसके मरने पर वह स्वयं भी जीना नहीं चाहता है वह कट्टर धार्मिक नहीं है, देवी देवताओं की पूजा के प्रति उसकी यत्र-तत्र हल्की अनास्था प्रकट होती है। नैतिकता की अपेक्षा व्यावहारिकता में उसे विश्वास है। वसन्तसेना के चोरी गये अल्पमूल्य आभूषण के बदले धूता का बहुमूल्य रत्नहार वर नहीं देना चाहता है। 'वसन्तसेना चारुदत्त के घर आभूषण रक्खी ही नहीं' यह कहने में भी उसे हिचक नहीं होती है। वह भीतर से डरपोक है। वह अन्धेरे में अकेले चतुष्पथ पर जाने से इन्कार कर देता है। रदनिका को साथ लेकर ही वह बाहर निकलता है। रात में वसन्तसेना को भी उसके घर उसे अकेले छोड़ आने को वह प्रस्तुत नहीं होता। हॉं जब चारुदत्त उसे स्वयं पहुँचाने जाता है तो उसके साथ वह अवश्य चल देता है। स्वभाव से वह बड़ा ही विनोदी है। उसे मजाक खूब करना आता है। अपनी चेटी के साथ अभिसारिका वसन्तसेना जब चारुदत्त के घर रात में पहुॅंचती है तब सब कुछ जानते हुए भी बड़े मासूम ढंग से पूछता है – "देवी जी, इस घनघोर वर्षा में, अन्धेरी रात में भला आप किस लिए यहाँ पधारी हैं ?"

विदूषक थोड़ा बुद्धू भी है और क्रोधी भी – प्रथम अंक में रदनिका के अपमान से क्रुद्ध हो कर वह शकार और विट पर टूट पड़ता है। जब पैरों पर गिर कर विट गिड़गिड़ाता है तभी उसे मुक्ति मिलती है। कभी-कभी इस मूर्ख एवं अविवेकी क्रोध का दुष्परिणाम भी सामने आता है। नवम अंक में न्यायालय के दृश्य में वह शकार पर क्रुद्ध हो जाता है। परिस्थिति, परिवेश और स्थान का उसे कुछ भी

ज्ञान नही रहता है। वह शकार से मार-पीट शुरू कर देता है। मार-पीट में उसकी बगल से वसन्तसेना के गहने बरामद होते ही चारुदत्त पर अभियोग सिद्ध हो जाता है और चारुदत्त को प्राणदण्ड दे दिया जाता है। वसन्तसेना को भी वह सन्दिग्ध दृष्टि से ही देखता है। यही मैत्रेय का व्यक्तित्व है।

अन्य पुरुष पात्र

शूद्रक ने सभी पात्रों का चरित्र, इस प्रकार से चित्रित किया है कि उनकी व्यक्तिगत विशेषतायें स्पष्ट झलकती है। अन्य पुरुष पात्रों में शर्विलक एक प्रेमी हृदय ब्राह्मण है। वह मदनिका को प्राप्त करने के लिए चोरी करता है। चौर्य कला मे निष्णात है किन्तु चोरी को अच्छी नहीं समझता। केवल स्वतन्त्र व्यवसाय मानकर ही उसे ग्रहण करता है – 'स्वाधीना वचनीयताऽपि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः। वह बुद्धिमान् तथा गुणग्राहक है। वह आपत्ति में मित्र का साथ देने वाला है कठिनता से प्राप्त हुई प्रेमिका मदनिका को छोड़कर अपने मित्र आर्यक को मुक्त कराने चला जाता है वह षड्यन्त्र करने में कुशल है। संवाहक – दरिद्रता के कारण संवाहक का व्यवसाय करने वाला एक गृहपति का पुत्र है। चारुदत्त के यहाँ नौकरी करने के पश्चात् द्यूतक्रीडा से अपनी आजीविका चलाने लगता है। द्यूत में हार कर वसन्तसेना द्वारा ऋणमुक्त कराया जाता है और विरक्त होकर बौद्धभिक्षु के रूप में हमारे सामने आता है। वह एक सच्चा भिक्षु दिखलाई देता है। वह इन्द्रियसंयमी है। वह कृतज्ञ है और उपकार क़ा बदला चुकाने के लिये चिन्तित रहता है। अन्त में वसन्तसेना की प्राणरक्षा करके वह सन्तुष्ट होता है। निर्लोभ हो जाता है और प्रवृज्या को उत्तम समझने लगता है। विट – सहृदय एवं बुद्धिमान् है। वह वसन्तसेना की सच्ची प्रेम-भावना को देखकर प्रभावित हो जाता है और उसके प्रेम की प्रशंसा करता है तथा यथाशक्ति उसकी सहायता करता है। वह धर्मभीरू है तथा पाप का विरोध भी करता है, इसी से वह शकार को छोड़ कर चला जाता है। चेट – स्थावरक को भी परलोक का भय है, सज्जन के प्रति स्नेह और आदर का भाव है। वह स्वयं आपत्ति में पड़कर भी अकार्य नही करता और चारुदत्त की रक्षा का प्रयास करता है। न्यायाधीश भी पवित्र हृदय तथा न्याय-प्रिय है। सज्जनता का आदर

करता है तथा सच्चाई की खोज करना चाहता है। किन्तु वह भीरु है तथा जल्दबाजी में उचित न्याय नहीं कर पाता। चन्दनक और बीरक भी अपनी निजी विशेषतायें रखते है। सभिक, द्यूतकर, दुर्दुरक आदि का भी सामान्य उल्लेख किया गया है।

अन्य स्त्री पात्र

इनमें धूता प्रमुख स्त्री पात्र है वह चारुदत्त की विवाहिता पत्नी है, एक पतिव्रता नारी है जो पति के दुःख को नहीं देख सकती और पति की अपकीर्ति से भी डरती है। इसी हेतु बड़ी चतुराई से 'रत्नावली' विदूषक को दे देती है धूता को आभूषणों के प्रति ममता नहीं है, लोभ नहीं है। जब वसन्तसेना रत्नावली को लौटाती है तो वह उसे स्वीकार नहीं करती। धूता अत्यन्त उदार है, वह वसन्तसेना से ईर्ष्या नहीं करती और वसन्तसेना से प्रेम करने वाले अपने पति पर भी कोप नहीं करती। वह अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती है। उसके वध की बात सुनकर चिता में कूदकर प्राण-त्याग कर देना चाहती है तथा अपने प्रिय पुत्र की भी चिन्ता नहीं करती, न पाप से डरती है – वरं पापाचरणम्। न पुनरार्यपुत्रस्यामङ्गलाकर्णनम्। वह एक सच्ची भारतीय नारी है।

मदनिका – वसन्तसेना की दासी तथा सखी है। उस पर वसन्तसेना बहुत अधिक विश्वास करती है। वह भी वसन्तसेना के प्रति अत्यन्त स्नेह करती है। इसी हेतु "चारुदत्त के घर शर्विलक ने चोरी की है" यह जान कर मूर्छित हो जाती है। मदनिका बुद्धिमती तथा चतुर है। वह शर्विलक को एक सद्गृहिणी के समान सम्मति देती रहती है। वसन्तसेना को भी वह समय-समय पर अच्छी सम्मति देती रहती है। इसी से वसन्तसेना उसकी प्रशंसा करती है – साधु मदनिके साधु परहृदयग्रहणपण्डिता मदनिका खलु त्वम्। मदनिका भीरु नही है वह शर्विलक जैसे साहसी की पत्नी होने योग्य है और जब शर्विलक अपने मित्र आर्यक को छुड़ाने जाना चाहता है तो वह उसके मार्ग में बाधा नहीं डालती। वस्तुतः उसने दासीपन को छोड़कर एक सच्ची गृहिणी का रूप धारण कर लिया है। इसके अतिरिक्त रदनिका तथा वसन्तसेना की चेटी, वसन्तसेना की माता आदि का भी कुछ उल्लेख हुआ है।

नाटकीय संविधान

मृच्छकटिक नाटक नहीं एक प्रकरण है। प्रकरण का नायक धीर-प्रशान्त लक्षणयुक्त कोई विप्र, अमात्य या वणिक् होता है। मृच्छकटिक का नायक ब्राह्मण चारुदत्त भी धीर-प्रशान्त है। प्रकरण की नायिका कुलजा और वेश्या में से कोई एक अथवा दोनो होती हैं। इस प्रकार नायिका के आधार पर प्रकरण के तीन भेद हैं। जिस प्रकरण में दोनो तरह की नायिकाएँ होती हैं, उसमें धूर्त, द्यूतकर, सभिक, विट, चेट आदि पात्र मंच पर उपस्थित होते हैं। मृच्छकटिक की नायिका वसन्तसेना वेश्या एवं धूता कुलजा है। इस दृष्टि से भी मृच्छकटिक एक प्रकरण है। प्रकरण की कथावस्तु भी नाटक की तरह प्रख्यात न होकर कवि-कल्पित होती है। मृच्छकटिक की भी कथा चारुदत्त एवं वसन्तसेना का संगम-शूद्रक के उर्वरक मस्तिष्क की देन है। इससे यह स्पष्ट है कि मृच्छकटिक निश्चय ही एक प्रकरण है, क्योंकि इसमें प्रकरण के प्रायः सभी लक्षण मिलते हैं, किन्तु नाटक के सभी लक्षण घटित नहीं होते। धनञ्जय और विश्वनाथ ने भी इसे प्रकरण ही माना है।[1]

नाटकीय संविधान की दृष्टि से मृच्छकटिक का वातावरण अतिमनोरञ्जक है। कुछ आलोचकों की दृष्टि में प्रस्तुत प्रकरण में कार्यान्विति का अभाव है, पर कुछ की दृष्टि में इसका अस्तित्व सुनियोजित है। क्योंकि पालक की राजनीतिक कथा को चारुदत्त की प्रेमकथा में उसका एक अविच्छेद्य अंग बना दिया गया है। फलतः सामाजिकों को मृच्छकटिक में ऐसा वातावरण दिखलाई पड़ता है, जो संस्कृत के किसी अन्य रूपक में उपलब्ध नहीं है।

---

१. साहि० ६. २२४-२२६ 'भवेत् प्रकरणे वृत्त लौकिकं कविकल्पितम्।।
श्रृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः।।
नायिका, कुलजा, क्वापि वेश्या क्वापि क्वाचिद् द्वयम्।
तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः।
कितवद्यूतकारादिविटचेटकसंकुलः।।'

काव्य की दृष्टि से आलोचकों को मृच्छकटिक में काव्यप्रतिभा की भी कमी अनुभूत हो यह संभव हैं, तथा काव्यप्रतिभा की अभिव्यञ्जना की इस रचना में बिल्कुल भी कमी नहीं है। कालिदास एवं भवभूति के नाटकों की तरह इसमें वर्णनो के विस्तृत चित्र तो देखने को नहीं मिलते, किन्तु काव्यात्म उक्तिवैचित्र्य का अभाव कहीं नहीं खटकता हैं। भवभूति के मालतीमाधव और कुछ सीमा तक उत्तररामचरित में भी काव्यात्मक वर्णन की दृष्टि से जो अंश अति उत्तम कोटि में रखे जा सकते हैं, उन्हीं अंशों के कारण उनका रूपकत्व समादृत है। किन्तु काव्यत्व और रूपकत्व का समन्वित और सन्तुलित स्वरूप केवल कालिदास के नाटकों में देखने को मिलता है। नाटकीय संविधान को घटना-चक्र की दृष्टि से गति देने के लिए कवि ने निश्चय ही अपनी काव्य प्रतिभा का समुचित उपयोग मृच्छकटिक में किया है। कुछ आलोचकों का कहना है कि कवि को प्रकृति-वर्णन करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हुए है, किन्तु कवि ने या तो उसकी अनुचित उपेक्षा की अथवा असावधानी के कारण हाथ से अवसर खो दिया है। यह सच है कि अष्टम अंक के जीर्णोद्यान-वर्णन में कवि को प्रकृति-वर्णन का पर्याप्त अवसर प्राप्त था, फिर भी यहाँ पर कवि यदि पंचम अंक में वर्णित वर्षा-वर्णन की तरह प्रकृति-वर्णन में उलझता तो निश्चय ही नाटकीय दृष्टि से मृच्छकटिक में जो स्वाभाविकता हैं, उसे यह खो देता। मृच्छकटिक का पंचम अंक श्रव्यकाव्य की दृष्टि से जितना अधिक मनोरम् हैं, दृश्यकाव्य की दृष्टि से उतना स्वाभाविक नही लगता। अभिसारिका वसन्तसेना के मुख से अनेक श्लोको को कहलवाना भी काव्य की दृष्टि से चाहे जितना रुचिकर हो, किन्तु नाटकीय संविधान की दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता है। ठीक इसी प्रकार से चतुर्थ अंक में वसन्तसेना के महल के सातों आँगनो का विस्तृत वर्णन निश्चय ही ऊबा देने वाला है।

रंगमंच की दृष्टि से भी यह नाटक सदोष प्रतीत होता है। दस अंक का यह एक विशाल नाटक हैं। मंच पर एक बैठक में इसे अभिनीत करना

बिल्कुल ही असंभव है। मंचीय विनोद की दृष्टि से डॉ० भोलाशंकर जी भी इसमे कुछ दोष मानते है, उनका कहना है – 'मृच्छकटिक के प्रत्येक अंक मे केवल एक ही दृश्य न होकर अनेक दृश्य पाये जाते है। कालिदास के नाटकों में यह बात नहीं है। उनके प्रत्येक अंक में केवल एक ही दृश्य है। मृच्छकटिक का पहला अंक ही चार दृश्यों में विभक्त हैं। उसी अंक में एक साथ चारुदत्त के घर अदृश्य और गली में वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार का दृश्य दिखलाने में मंच को निःसंदेह असुविधा होगी। ऐसे ही दृश्य अन्य अंकों में भी मिलते हैं।

मृच्छकटिक एक भारतीय सुखान्त नाटक है, फिर भी पाश्चात्य दुःखान्त वातावरण के सृजन में यह प्रकरण लाजबाब है, इसलिए कुछ आलोचकों ने इस पर यूनानी रंगमंच का प्रभाव माना है। मृच्छकटिक की शैली नितान्त सरल एवं आकर्षक है। बड़े-बड़े छन्दों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। नये-नये भाव, नई उद्भावनाएं, अछूती कल्पनाओं का सामञ्जस्य, इस प्रकरण की प्रमुख नाटकीय विशेषता है। प्रकरण की भाषा में सुकुमारता, सन्दीप्ति, चित्रात्मकता और लाक्षणिकता का चरम विकास है। पद्य और गद्य दोनो में ही इनकी भाषा शुद्ध, प्राञ्जल एवं प्रौढ़ रही है। शैली में प्रवाह एवं आकर्षण का विधान कवि की सफलता का द्योतक है।

भाषा-विधान

संसार के विस्तार के अनुसार भाषा के रूप भी विभिन्न हैं। संसार बहुत बड़ा है। इसमें अनेक देश है। इन देशों में भी अनेक प्रदेश, बड़े और छोटे शहर एव ग्राम हैं। भाषा के विचार से भारत के एक प्रदेश को ही लीजिए। पूरे प्रदेश की एक विशेष भाषा होते हुए भी विभिन्न नगरों एवं ग्रामों की भाषाओं में अन्तर पाया जाता है। इसी प्रकार रूपकों में भी विभिन्न पात्र होते है। अतः उनकी भाषाओं में भी भेद होता है। प्रचीन काल मे जबकि वैदिक भाषा के पश्चात् लौकिक भाषा का विस्तार हो चुका था तभी संस्कृत के अनेक नाटक लौकिक संस्कृत में लिखे गये। संस्कृत के प्रत्येक नाटक में ऐसे पात्र मिलेंगे जो शुद्ध संस्कृत बोलते हैं पर उनकी संख्या कम है कारण कि रूपकों में शिक्षित और अशिक्षित अनेक प्रकार के पात्र होते हैं। शिक्षित पात्र संस्कृत बोलते है। अशिक्षित पात्र प्राकृत बोलते हैं। संस्कृत और प्राकृत भाषा का अन्तर ऐसे ही समझना चाहिए जैसे कि नागरिक और ग्राम्य भाषा का अन्तर। बहुधा रूपकों मे नायक आदि शिक्षित पात्रों की संख्या कम होती है। अतः अशिक्षित पात्र उनमें अधिक दिखाई देते है। ये अशिक्षित पात्र प्राकृत भाषा के अन्तर्गत अनेक भाषाएँ बोलते हुए दिखाये गये है। यदि एक ही भाषा बोलने वालों का समुदाय कही हों तो संभवतः उनकी भाषा को सुनने में उतना आनन्द नही प्राप्त होगा जितना कि बहुभाषाभाषी जनसमुदाय की बातचीत में प्राप्त होगा। यही कारण है कि नाटकों में संस्कृत और प्राकृत के भेद से विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होता है। इस दृष्टि में मृच्छकटिक एक महत्त्वपूर्ण नाटक है। जितनी भाषाओं का प्रयोग इस नाटक में किया गया है उतनी भाषाओं का प्रयोग अन्य नाटकों में उपलब्ध नहीं होता।

भाषा

इसकी भाषा-शैली कालिदास की अपेक्षा अधिक सरल है। यह भास और कालिदास के मध्य की शैली है, संस्कृत साहित्य की अलङ्कृत शैली

नहीं। इसकी भाषा समासप्रधान नहीं, उसमें स्वाभाविक सरलता है। उसमें सर्वत्र प्रसाद और लालित्य विद्यमान है। केवल कुछ स्थलों में भाषा की कृत्रिमता और अलङ्कृत शैली के दर्शन होते हैं। सर्वत्र पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार भाषा का प्रयोग किया गया है। शब्द-योजना और वाक्यविन्यास की दृष्टि से भी भाषा नाटकीय है। भाषा में अभीष्ट गति है और प्रवाह भी। यही कारण है कि मृच्छकटिक के अनेक वाक्यों ने सूक्तियों का रूप धारण कर लिया है जैसे – "दुर्लभा गुणा विभवाश्च, साहसे श्रीः प्रतिवसति, 'कामो वामः' छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति इत्यादि।" ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने लोकोक्तियों के प्रयोग से अपनी भाषा को सजीव बनाने की ओर ध्यान दिया है। इसी हेतु कहीं-कहीं सम्पूर्ण श्लोक ही सूक्तिमय दृष्टिगोचर होता है।[1] कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। उसका शब्द-भण्डार विशाल है। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के समुचित प्रयोग में कवि को अच्छी सफलता मिली है, कहीं-कहीं पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से भाषा में दोष अवश्य दिखाई देता है। अनियमित समास योजना, अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग (च, हि, तु इत्यादि) भाषा की शिथिलता आदि दोष भी दृष्टिगोचर होते हैं।

प्राकृत

पात्रानुकूल प्राकृत भाषा का प्रयोग करने में शूद्रक सिद्धहस्त थे। मृच्छकटिक के संस्कृत टीकाकार पृथ्वीधर ने मृच्छकटिक की प्राकृत भाषाओं का विस्तृत विवरण दिया है। पृथ्वीधर के अनुसार प्राकृत भाषायें सात मानी गई हैं –

---

१. मृच्छ० १.१० "सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते,
धनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां,
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति।"

मृच्छ० ८.३ "शिरो मुण्डित, तुण्डं मुण्डितं,
चित्तं न मुण्डित किमर्थं मुण्डितम् ?
यस्य पुनश्च चित्त मुण्डितं
साधु सुष्ठु शिरस्तरूप मुण्डितम्।।"

मृच्छ०, ८.३३, ८.३७, ६.२६, ६.३५, ६.४०, ४१; १०.६०।

'मागधी, अवन्तिका, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीका, तथा दाक्षिणात्या।' अपभ्रंश भी सात हैं – 'शकारी, आभीरी, चाण्डाली, शाबरी, द्राविडी, उड्रजा और ढक्की। इन अपभ्रंशों को विभाषा भी कहा जाता है।[२] इन भाषा तथा विभाषाओं में से मृच्छकटिक में सात भाषाओं का प्रयोग हुआ है – (१) शौरसेनी, (२) अवन्तिका, (३) प्राच्या, (४) मागधी, (५) शकारी, (६) चाण्डाली और (७) ढक्की। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

(१) शौरसेनी

पृथ्वीधर के अनुसार सूत्रधार, नटी, रदनिका, मदनिका, वसन्तसेना और उसकी माता, चेटी, कर्णपूरक, धूता शोधनक और श्रेष्ठी – ये ग्यारह पात्र शौरसेनी प्राकृत बोलते है। इस प्राकृत में श, ष, स, इन तीनों के स्थान पर 'स' ही होता है[३] जैसे नटी के कथन में 'मर्षतु मर्षत्वार्याः' इस संस्कृत के स्थान पर 'मरिसेदु मरिसेदु अज्ञो'।

(२) अवन्तिका

इसके बोलने वाले दो ही पात्र हैं – वीरक और चन्दनक। यह भाषा लोकोक्तिबहुला है। यह बात पष्ठ अंक में वीरक और चन्दनक के सम्भारण से स्पष्ट होती है।[४] इस भाषा में भी शौरसेनी की भाँति श, ष, स तीनों के स्थान पर केवल 'स' का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त 'र' के स्थान पर ल का प्रयोग भी देखने को मिलता है। यथा पष्ठ अंक में **'आरूढो'** और **'आलूढा'** दोनों प्रयोग मिलते हैं।

---

२. विविधा भाषा विभाषा।

३. प्रथम अंक में सूत्रधार ने संस्कृत के 'प्रविशामि' के स्थान पर शोरसेनी में 'पविसामी' का प्रयोग किया है।

४. मृच्छ० षष्ठ अंक

(३) प्राच्या

विदूषक प्राच्य भाषा बोलता है। इनमें भी श, ष, स के स्थान पर 'स' होता है तथा स्वार्थिक ककार की प्रचुरता कही गई है किन्तु मृच्छकटिक के विदूषक की भाषा में ककार की प्रचुरता दिखाई नहीं देती। जैसे – "एसा सुसव्वणा सहिलण्णा

णवणाडअदंसणुट्ठिदा सुत्तधालिव्व –" इत्यादि[५]

(४) मागधी

संवाहक शकार का चेट स्थावरक कुंभीलक, भिक्षु, वर्धमानक एवं रोहसन – ये छः पात्र मागधी भाषा बोलते हैं। मागधी भाषा में तालव्य शकार होता है अर्थात् श, ष, स तीनों के स्थान पर 'श' होता है; जैसे 'असिम' के स्थान पर अशिम्[६] 'एष' के स्थान पर 'एशे', शक्तृ या के स्थान पर शत्तीए 'अज्ञा' विकणिध में इमश्श शहिअश्श हत्यादो दशेर्हि शुवण्णकर्हि[७] – यहॉ शकार की बहुलता दर्शनीय है।

(५) शकारी

शकार इस भाषा का प्रयोग करता है। इसमें भी तालव्य शकार की प्रचुरता होती है और रेफ के स्थान पर लकार हो जाता है। जैसे – 'अशी शुतिक्खे, बलिदे अ मत्थके, कप्पेम शीशं उद मालएम वा'[८] यहाँ 'असिः' का अशी और मारयामि का मालएम (र को ल) हो गया है।

(६) चाण्डाली

दशम अंक में दोनो चाण्डाल इसका प्रयोग करते हैं। इसमें भी श

---

५. मृच्छ० प्रथम अंक

६ मृच्छ० प्रथम अंक

७. मृच्छ० अष्टम अक

८ मृच्छ० १.३०।।

स ष के स्थान पर तालव्य शकार ही होता है तथा रेफ के स्थान पर लकार। जैसे – 'थावलअ अवि शच्चं भणासि'[९] (स्थावरक, अपि सत्यं भणसि), चाण्डाल के इस कथन में स के स्थान पर श और र के स्थान पर ल है।

(७) ढक्की

द्यूतकर और सभिक माथुर इसका प्रयोग करते है। इसके विषय में पृथ्वीधर[१०] ने कहा है कि इसमे वकार की प्रचुरता होती है और जब यह संस्कृतप्राय होती है तो इसमें स, श दोनों का प्रयोग होता है अन्यथा नहीं ?; जैसे माथुरः – "अत्थि। दशसुवण्णं धालेदि। कि तस्य' अस्ति दशसुवर्ण धारयति। कि तस्य," जहॉ दशसुवण्णं में श और स का संस्कृत के समान ही प्रयोग हुआ है, यहाँ संस्कृतप्राय ढक्की विभाषा है। किन्तु माथुरः – 'अले, भणशि तं कुलपुत्तम्' (अरे भणसि, तं कुलपुत्रम्" यहाँ भणेशि में स का श हो गया है। 'वकारप्राय' होने की बात मृच्छकटिक मे दिखलाई नहीं देती अपि तु उकारप्राय होना दिखलाई देता है जैसे – 'अले भट्टा, दशसुवण्णङ लुदु जूदकरु पपलीणु'। ढक्की के विषय में डॉ० कीथ का कथन है कि वस्तुतः यह 'टक्की' होनी चाहिए। लिपि की अशुद्धता से इस ढक्की पढ़ लिया गया होगा। पिशेल ने इसे पूर्वी बोली माना है और ग्रियर्सन के अनुसार यह पश्चिमी बोली है। यही उचित भी जान पड़ता है। नाट्यशास्त्र में ढक्की नाम नहीं आया। अपितु वनचरो की उकारप्राय भाषा का उल्लेख अवश्य हुआ है। सम्भवतः यह वही विभाषा है।

उक्त सात भाषाओं में शकारी और चाण्डाली दोनो मागधी की ही विभाषायें है। इनमे रेफ को लकार हो जाता है केवल यही भेद है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि पृथ्वीधर ने दाक्षिणात्य भाषा को क्यों छोड़ दिया ? जबकि यह स्पष्ट है कि चन्दनक दाक्षिणात्य है। इन प्राकृतों के विशेष अध्ययन से ही उपर्युक्त शंकाओं का निराकरण हो सकता है।

---

९. मृच्छ० दशम अंक।।

१० पृथ्वीधर – "वकारप्राया ढक्कविभाषा। संस्कृतप्रायत्वे दन्त्यतालव्यसशकारद्वययुक्ता च।"

छन्द

मृच्छकटिक में संस्कृत और प्राकृत दोनो का प्रयोग किया गया है। छन्दों की विविधता संस्कृत तथा प्राकृत दोनो प्रकार के पद्यों में दृष्टिगोचर होती है। इन छन्दों को देखने से ऐसा आभास होता है कि शूद्रक को लघु तथा सरल छन्द ही अभिप्रेत है। स्वभावतः विशेष प्रिय छन्द अनुष्टुप् है, क्योंकि इसका प्रयोग ८३ बार सबसे अधिक संख्या में हुआ है। यह छन्द कथोपकथन की प्रगति को आगे बढ़ाने में अनुकूल पड़ता है। दूसरा प्रिय छन्द वसन्ततिलका है, जिसका प्रयोग ३६ बार हुआ है। शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग ३२ बार किया गया है। अन्य महत्वपूर्ण छन्दो मे इन्द्रवज्रा का प्रयोग २६ बार, वंशस्थ का ६ बार और उपजाति का प्रयोग ५ बार हुआ है। इसके अतिरिक्त पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मालिनी, विद्युन्माला, शिखरिणी, स्रग्धरा, वैश्वदेवी तथा हरिणी और एक विषमवृत्त का प्रयोग भी हुआ है। आर्या के इक्कीस उदाहरण है। इसमें एक गीति भी समाविष्ट है जिसके प्रथमार्ध और परार्ध मे तीस मात्राएँ है। दो उदाहरण औपछादिक के है। प्राकृत भाषाओं के वैविध्य के कारण प्राकृत के छन्दों में अधिक वैविध्य मिलता है। जैसे आर्या शैली के ५३ तथा अन्य प्रकार के ४४ पद्य उपलब्ध होते हैं।"

अलंकार

शूद्रक ने अलंकारों को बलपूर्वक कहीं नहीं लादा है, सहज रूप से ही अनेक अलंकार आ गये है। स्वाभाविकता के कारण ही ये अलंकार अर्थ-व्यंजना में सहायक सिद्ध हुए है और उनके कारण काव्य-सौदर्य में वृद्धि हुई है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतप्रशंसा, काव्यलिग, विशेषोक्ति और समासोक्ति आदि अर्थालंकार विशेष रूप से यथास्थान प्रयुक्त हुए है। शब्दालंकारों का प्रयोग भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है। उड़ते हुए मेघ के सम्बन्ध में प्रस्तुत कल्पना[12] बड़ी मनोरम हैं —

मेघो जलार्द्र महिषोदरभृङ्गनीलो,
विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः।
आभाति संहतवलाकगृहीतशङ्खः,

---

११. ए०बी०कीय, अनुवादक डॉ० उदयभानुसिह – संस्कृत नाटक, पृ० १४१

१२. मृच्छ० ५/३, १४, १७, १८, २६, १/५७ आदि।

खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः।।

— मृच्छ० ५/२

इस पद्य में रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों की एवं वसन्ततिलका छन्द की छटा दर्शनीय है।

बादलों में बिजली चमकने तथा उनसे पानी की धाराओं के पृथ्वी पर गिरने का दृश्य कितना रमणीक है – बिजली रूपी रस्सी से बद्ध कटि वाले, एक दूसरे को धक्का देते हुए हाथियों के समान ये जलधारायुक्त बादल मानों इन्द्र की आज्ञा से पृथ्वी को (जलधारारूपी) चाँदी की रस्सियों के द्वारा ऊपर उठा रहे हैं।"[१३]

कवि-कल्पना कितनी अद्‌भुत है। काले उमड़ते बादल काले मदमत्त हाथी हैं। बिजली की चमकती लकीरें ऐसी शोभित है जैसे चमकीली रस्सियों से बादलों की कमर कसी हुई हो। हाथियों के पार्श्व भाग में सोने की जंजीरे है, इनमें बिजली की चमचमाती लकीरों का आभास होता है। जल की गिरती स्वच्छ धारायें रजत की रस्सियॉ है। निरन्तर तेजी से भूमि पर गिरती हुई जलधारायें ऐसी प्रतीत हो रही है मानो चमकीली रस्सियॉ नीचे आकर पुनः पृथ्वी को ऊपर खीच रही है। जल-धाराये कब आकाश से पृथक् होती हैं और कब पृथ्वी का स्पर्श करती है, दर्शको को इसका आभास नहीं होता। धारासार वर्षा का वस्तुतः स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों की एवं उपजाति छन्द की छटा दर्शनीय है।

मेघ से आच्छादित आकाश को धृतराष्ट्र के मुख के समान बताया गया है।"[१४]

---

१३ मृच्छ० ५.२१ — एते हि विद्युद्गुणबद्धकक्षा गजा इवान्योन्यम भीद्रवन्तः।
शक्राज्ञया वारिधराः सधाराः गां रूप्यरज्जुवेव समुद्धरन्ति।।

१४. मृच्छ० ५.६ — "एतत्तद्धृतराष्ट्र चक्रसदृशं मेघान्धकारं नभो
दृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो
हंसाः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्या गताः।।"

बादलों से जिसमें अंधेरा हो गया है, ऐसा यह आकाश उस प्रसिद्ध धृतराष्ट्र के मुख के समान है, क्योंकि धृतराष्ट्र का मुख भी आँखे न होने से अन्धकारपूर्ण था और आकाश की भी सूर्य-चन्द्र रूपी दोनों ऑखे बादलों से नष्ट हो गई थीं। प्रसन्न एवं अति गर्वित बल (मयूर पक्ष मे शक्ति, दुर्योधन पक्ष से सेना) वाले दुर्योधन के समान मयूर गरज रहा है। जुए मे हारे हुए युधिष्ठिर के समान कोयल मौन (यधिष्ठिर के पक्ष में वनमार्ग) को प्राप्त हो गई है। इस समय हसगण पाण्डवों के समान वन से अज्ञातवास को (अर्थात् मानसरोवर को) चले गये है। प्रस्तुत श्लोक में धृतराष्ट्र के मुख के समान मेघाच्छादित आकाश, अतिगर्वित बलयुक्त दुर्योधन के समान मयूर, जूए में हारे हुए युधिष्ठिर के समान कोमल, पाण्डवों के समान हंस में उपमानोपमेय भाव के कारण उपमालकार तथा शार्दूल विक्रीडित छन्द की छटा अत्यन्त रमणीय है।

इस प्रकार स्थल-स्थल पर उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, अर्थान्तिरन्यास, दीपक आदि अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य है।

रस

श्रृंगार मृच्छकटिक का मुख्य रस है। शूद्रक ने इस रस का बड़ा मनोहारी प्रयोग किया है। शूद्रक ने अपनी अनुभूतिमय एवं संवेदनशील कल्पना के प्रसाद द्वारा मृच्छकटिक में इतने रससिक्त प्रसंगों की अवतारणा की है कि सारा प्रकरण वेदनाजनित आँसुओं का एक सागर सा बन गया है। वातावरण की सजीवता एवं पात्रों के चरित्रांकन में, उद्देश्य की प्राणवत्ता मे, प्रकृति के उत्कृष्ट कलात्मक वर्णन में श्रृंगार की सुसम्बद्ध अभिव्यक्ति जो इस प्रकरण में हुई है, सस्कृत के अन्य नाटकों मे दुर्लभ है। श्रृंगार का यह सरस चित्र दर्शनीय है – ''वास्तव में उनके जीवन धन्य है जो घर में आई हुई कामिनियों के बादल के जल से शीतल हुए शरीरों का अपने शरीरों पर आलिगंन करते हैं।''[१५] वसन्तसेना के श्रृंगारोद्दीपक ललित गति का वर्णन विट की निम्न उक्ति में एक हृदयवेधक एवं मार्मिक अनुभूति का मानो साक्षात्कार करा देता है।

---

१५. मृच्छ० ५.४६ ''धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति।।''

'अभिनव कदली के समान (भय से) काँपती हुई, वायु के द्वारा चंचल-अंचल (दशा) वाले लाल रेशमी वस्त्र को धारण करती हुई, टाकी द्वारा छेदी जाती हुई मनः शिला की कन्दरा (से निकलने वाली चिनगारियों) के समान (केशपाश में गूथे हुए) रक्त कमलों की कलियों को (वेग से दौड़ने के कारण) बिखराती हुई कहाँ जा रही हो।''[१६]

पाँचवे अंक में शूद्रक ने उद्दीपन रूप वर्षा का विशद एवं सुन्दर वर्णन किया है। इस वर्णन में चमत्कारोत्पादक अनेक सूक्तियों का समाहार दर्शनीय है। धर्मप्राण चारुदत्त को मेघाच्छन्न आकाश को देखते ही वामन भगवान् की लीला का स्मरण हो आता है –

'मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलो,

विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः।

आभाति संहतवलाकगृहीतशुङ्खः

खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः।।'

— मृच्छ० ५.२

अर्थात् जल से गीले भैसे के उदर एवं भ्रमर के समान नीला, बिजली की प्रभा से निर्मित पीताम्बर तुल्य उत्तरीय धारण करने वाला (विष्णु पक्ष में – विद्युत् प्रभा के समान निर्मित पीताम्बर ही है उत्तरीय जिसका) एकत्रीभूत बगुले रूपी शंख को ग्रहण करने वाला (विष्णु पक्ष में – एकत्रित बगुलों के समान ग्रहण किया है पाञ्चजन्य नाम शङ्ख जिसने) दूसरे विष्णु के समान आकाश को व्याप्त करने को उद्यत मेघ शोभायमान है।

हवा के कारण आकाश में उड़ते ये मेघखण्ड कई तरह के रूप

---

१६ मृच्छ० १.२० ''किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना,
रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती।
रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती,
टङ्कैर्मनः शिलगुहेव विदार्यमाणा।।

बना रहे है। कभी मेघ के दो टुकड़े जब आपस में मिल जाते है तो लगता है जैसे नियुक्त चकवा-चकई एक साथ मिल गए हों, कभी उड़ते हंसों की तरह प्रतीत होते हैं तो कभी क्रुद्ध समुद्र या विस्फूर्जित नदी पुलिन पर पड़े मगर और मछलियों से लगते है। कभी-कभी तो ये हवायें उन्हें ऐसे बना देती हैं जिन्हें देख कर लगता है कि बड़ी-बड़ी श्वेत कंगूरे वाली अट्टालिकाएँ आकाश में खड़ी हो। आकाश में इन बादलों के साथ मानों हवा खेल रही हैं अथवा आकाशरूपी चित्रपट पर ये हवाएँ मानो अनेक तरह की डिजाइन चित्रित कर रही हैं जिससे आकाशरूपी चित्रफलक सुशोभित हो उठा है —

'संसक्तैरिव चक्रवाकमिथुनैर्हंसैः प्रडीनैरिव

व्याविद्धैरिव मीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छितैः।

तैस्तैराकृतिविस्तरैरनुगतैर्मेघैः समभ्युन्नतैः

पत्रच्छेद्यमिवेह भाति गगनं विश्लेषितैर्वायुना।।

— मृच्छ० ५.५।।

मृच्छकटिक के प्राकृतिक वर्णन की प्रमुख विशेषता उनमें निहित प्रकृति का मानवीकृतचित्रण है। प्राकृतिक सौन्दर्य का सजीव एवं स्वच्छ चित्र इसमे देखते ही बनता है। कवि के प्रकृतिवर्णन में जो नाममात्र के हैं – भाषा का मादुर्य और भावों का कल्पनामय चित्रण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सुकुमार कल्पना, लालित्य पूर्व पद योजना और सरस भावों का अपूर्व संयोग इनके वर्णन के प्राण हैं प्रकृति की शोभा और सौन्दर्य की मनोहर छवियाँ मुखर हो उठी हैं। तभी भीषण काली रात वसन्तसेना को अपनी सौत-सी दिखाई पड़ती है जो ईर्ष्या उसकी हँसी उड़ाती हुई उसकी राह रोक रही है –

मूढे निरन्तर पयोधरया मयैव

कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र।

मां गर्जितैरपि मुहुर्विनिवारयन्ती

मार्ग रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी।

— मृच्छ० ५.१५।।

अर्थात् सपत्नी के सदृश कुपित हुई रात्रि – ''मूर्ख, यदि सघन पयोधर (रात्रिपक्ष में – चन्द्रमा, सपत्नी पक्ष मे चारुदत्त) रमण करता है तो इसमें तुम्हारा क्या? इस प्रकार की गर्जनाओं से भी बार-बार मुझे मना करती हुई (मेरा) रास्ता रोक रही है।

अकिचन जीवन की दारुण समस्याओं की कसक, भावना और व्यथा की मीठी टीस, विपत्ति और कष्ट का आघात, करुण और विषाद का आर्द्रपन भी कुछ पद्यों में पाठक के हृदय को करुणा विगलित कर देता है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस प्रकरण का अंगी रस श्रृंगार है। वह प्रारम्भ में संभोग, बाद मे विप्रलम्भ, पुनः संभोग फिर विप्रलम्भ और पुनः सयोग, श्रृंगार का रूप ग्रहण करता है। करुण, वीभत्स, भय, अद्‌भुत और हास्य-रस यथास्थान अंग बनकर आये है। शर्विलक और आर्यक की उक्ति में कहीं-कहीं वीररस की थोड़ी झलक भी मिल जाती है। बीच-बीच में चिन्ता, ग्लानि, निर्वेद आदि संचारी भावों का भी आस्वाद मिल ही जाता है। कुल मिलाकर लाक्षणिक वक्रता और अभिव्यक्ति की नयी भंगिमा के साथ रस निष्पादन में मृच्छकटिक अपने आप में अनोखा है।

नाट्यकला

संस्कृत नाटक आरम्भ से ही 'काव्य' (दृश्यकाव्य) माना जाता रहा है। अतएव, रंगमंचीय प्रदर्शनीयता के साथ ही, उसमें ऐसे चित्र सजाये जाते रहे हैं जो काव्यात्मक लालित्य से ओत-प्रोत हों। अपितु, सत्य यही है कि संस्कृत नाटकों में प्रदर्शनीयता के तत्त्व की स्वल्पता और काव्यात्मक लालित्य की प्रचुरता सन्निविष्ट होती गई है। मृच्छकटिक का निरालापन इस बात में भी लक्षित है कि इसमें प्रदर्शनीय तत्त्वों का प्राचुर्य है जिसके फलस्वरूप इसकी रंगमंचीय दिलचस्पी कभी घटती नहीं प्रतीत होती। तथापि, संस्कृत नाटककारों की सम्मानित श्रेणिका से ही संबंधित होने के कारण, शूद्रक के चित्रों में भी यथेष्ट काव्यात्मक सौन्दर्य की अवतारणा हुई है।

कुछ चुने हुए सुन्दर पदों के प्रयोग से पूर्ण कथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने की कला में शूद्रक अतीव कुशल है। विट आभिसारिणी वसंतसेना के संपूर्ण शील का वर्णन केवल पॉच अभिधाओं में करता है[1] –

अर्थात् वसन्तसेना बिना कमल की लक्ष्मी है, कामदेव का ललित अस्त्र है, कुल-वधुओं का शोक है, मदन-रूपी श्रेष्ठ वृक्ष का मनोरम फूल है, और सूरत के समय लज्जा की प्रिय सहचरी है। 'अपद्मा लक्ष्मी' कह कर, वसंतसेना के उत्फुल्ल सौन्दर्य की, 'अनंग का ललित प्रहरण' कह कर उस सौन्दर्य की आक्रामकता की, 'कुलांगनाओं का शोक' कह कर उस रूप-श्री की विवाहित पुरुषों को अपने जाल में फॅसाने की अद्भुत क्षमता की, 'मदनवृक्ष का कुसुम' कहकर उस सौन्दर्य की सुकुमारता को तथा 'रतिसमयलज्ञाप्रणयिनी' कह कर नव्यांगना वसंतसेना की मोहक माधुरी की अभिराम व्यजंना की गई है।

मेघों के गर्जन-तर्जन से भयावह रात्रि की प्रतिक्रिया अभिसारिका वसन्तसेना के स्नेह-स्निग्ध अन्तर्मन में क्या होती है, इसे कवि ने नितान्त मोहक ढंग से

---

१. मृच्छ० ५.१२।। "अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललिलं,
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्ञाप्रणयिनी"

यों व्यंजित किया है।[२]

– 'हे मूर्खे! यदि मेरा कान्त (आकाश) परस्पर सटे, पुष्ट पयोधरों (बादल तथा स्तन) वाली मुझ प्रिया के साथ रमण कर रहा है, तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन ?' – इस प्रकार से ताड़ना देकर, रात्रि अपने गर्जनों से मुझे अपने अभिसार के लिए मना करती हुई मेरा मार्ग रोकती है। जैसे वह मेरी कोपमयी सपत्नी हो।

'निरन्तरपयोधरया' का भाव है ऐसे पयोधर, अर्थात्, स्तन (अथवा बादल) जो इतने पुष्ट एव विकसित है कि उनके बीच में तनिक भी अन्तर अथवा खाली जगह बच नहीं पाई है। वसंतसेना को मड़राये निविड़ बादलों से अपने पुष्टपयोधरों की याद हो जाती है। उसे लगता है जैसे रात अपने यौवन के उफान में आकाश-रूपी प्रियतम से रमण कर रही है और उसके अभिसार से चिढ़ कर, उसका रास्ता रोक रही है – चिढ़ने का कारण यह है कि यह नारी (वसंतसेना) उसके रमण-प्रसंग में बाधक सिद्ध हो रही है (एक नारी कान्त के साथ रमण कर रही हो और दूसरी अपने कान्त के साथ रमण की योजना में उस रमण-प्रसंग का अवलोकन करे) और यह टीका-टिप्पणी भी कर रही है कि रात भयावनी बन गई है। नारी अपने रमण की योजना कार्यान्वित करने के लिए, दूसरी नारी के रमण-प्रसंग को बाधक समझ कर उसकी प्रतिकूल आलोचना करे – यह परम स्वाभाविक है।

पंडितो ने इस पद्य की व्याख्या में यह अर्थ ग्रहण किया है कि कवि रात्रि तथा वसन्तसेना को परस्पर 'सपत्नी' बना रहा है और यह दिखाया है कि यदि रात्रि अपने कान्त के साथ रमण कर रही है, तो वसन्तसेना को उसके लिए दुःख नहीं होना चाहिए क्योंकि उसका (रात्रि-रूपी प्रेमिका का) भी तो वहीं अधिकार है।[३]

वर्षा की धाराओं के गिरने तथा बिजली चमकने के दृश्य का

---

२. मृच्छ० "मूढे! निरन्तरपयोधरया मयैव
कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र।
माँ गर्जितैरिति मुहुर्विनिवारयन्ती
मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी।

३ काले द्वारा सम्पादित 'मृच्छ०', पृ० १६३; चौखंबा वाला संस्करण पृ० २७८।

वसन्तसेना के मुख से कवि ने यों वर्णन किया है –

"एतैरार्द्रतमालपत्रमलिनैरापीतसूर्यं नभो
वल्मीकाः शरताडिता इव गजाः सीदन्ति धाराहताः।
विद्युत्काञ्चनदीपिकेव रचिता प्रासादसञ्चारिणी
ज्योत्स्ना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हृता।।"[४]

अर्थात् 'सजल तमालपत्रों के तुल्य इन मेघों से सूर्य एकदम ढक गया है जैसे आकाश ने उसे पी लिया हो। वर्षा की धाराओं से विध कर, वल्मीक ऐसे पीड़ित हो रहे है जैसे बाणों की बौछार से हाथी पीड़ित हो जाता है। महलो की अट्टालिकाओं में संचरण करने वाली बिजली ऐसी शोभा दे रही है मानो स्वर्ण-निर्मित दीपक जगमगा रहा हो। मेघों-द्वारा बलपूर्वक हटाई जाकर, ज्योत्स्ना वैसे हर ली गई है जैसे दुर्बल पति की स्त्री दूसरों के द्वारा बलात् अपहरण कर ली जाती है।'

एक-एक चित्र अवलोक्य है। सूर्य को आकाश 'पी' गया है। सूर्य तो वैसे भी अस्त हो रहा होगा। यहाँ उसे एकदम आकाश-द्वारा उदरस्थ बताया गया है जो कवि के निरीक्षण की सटीकता का विज्ञापक है। वर्षा की धाराओं तथा बाणो में साम्य अत्यन्त वास्तविक है, और हाथियों के बाण-वर्षा से पीड़ित होने के समान वल्मीको का वृष्टिधारा से पीड़ित होना दिखा कर, कवि ने 'मानवीकरण' (वल्मीकों के सम्बन्ध में) का सुन्दर उपयोग किया है। बिजली कांचनदीपिका कही जा रही है। बिजली का लुक-छिप कर चमकना और कंचनदीपिका का जगमगाना, दोनो दृश्यों में कितना सादृश्य है! ऐसे ही, ज्योत्स्ना को वनिता बताना और उसको मेघों-द्वारा बलपूर्वक वैसे अपहृत बताना जैसे दुर्बल पति की पत्नी हर ली जाती है – यह पूरी कल्पना व्यंजक एवं मनोरम बन गई है। ज्योत्स्ना का पति चन्द्रमा मेघों के सामने कितना दुर्बल है।

बादलों में बिजली चमकने तथा उनसे पानी की धाराओं के पृथिवी पर गिरने के दृश्य का एक अन्य बिम्ब यों चित्रित है –

---

४. मृच्छ० ५.२०।।

"एते हि विद्युद्गुणबद्धकक्षा

गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः।

शक्राज्ञया वारिधराः सधारा

गा रूप्यरज्ज्वेव समुद्धरन्ति।।"[५]

अर्थात् बिजली के चमकीले धागों से जिनकी कमर कसी हुई है, पानी की धाराएँ बरसाने वाले वैसे बादल, परस्पर झपटने वाले हाथियों के समान, मेघराज इन्द्र की आज्ञा से, मानो रजत की रज्जुओं से पृथ्वी को ऊपर उठा रहे है।'

चित्र की मनोरमता अवलोकनीय है। काले उमड़ते बादल काले मतवाले हाथी है, बिजली की चमकती लकीरें ऐसे शोभती है जैसे चमकीली रस्सियो से बादलो की कमर कसी हुई हो; हाथियों की काँख में सोने की जंजीरे लगी है, यह बिजली की चमकती लकीरों से भान होता है; जल की गिरती स्वच्छ धाराएँ रजत की रस्सियाँ है और इतनी द्रुतगति से ये धाराएँ भूमि पर गिर रही हैं कि उनका क्रम टूटता नहीं जिससे भान होता है कि ये चमकीली रस्सियाँ नीचे आकर पुनः पृथ्वी को ऊपर खींच रही है। इस ऊपर खीचने की कल्पना में यह तथ्य ध्वनित है कि पानी की धाराओं का गिरना एक क्षण के लिए भी बाधित नहीं होता और वे धाराएँ आकाश से कब अलग होती हैं और पृथ्वी को कब छूती है इसका दर्शक को प्रतिभास ही नहीं होता। धारासार वर्षा का इससे अधिक सटीक वर्णन क्या हो सकता है।

बिजली की कौध से डरी वसन्तसेना की निम्न उक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है –

"यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः।

अयि विद्युत! प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि।।"[६]

---

५. मृच्छ० ५.२१।।

६. मृच्छ० ५.३२।।

– 'हे बिजली! यदि बादल गरजते हैं, तो गरजने दो क्योंकि पुरुष तो निर्मम होते ही है, लेकिन, तुम स्त्री होते हुए भी क्या कामातुर प्रमदाओं का क्लेश नहीं जानती?'

कितने सरल शब्दों में, कितनी मार्मिक एवं निर्व्याज भंगिमा में बिजली से यह मधुर प्रार्थना की गई है।

रात के अन्धकार तथा चन्द्रोदय के दो तीन-तीन चित्र जो उपलब्ध है, वे सटीक एवं सुन्दर बन पड़े है। सड़क पर छाये अन्धकार का वर्णन करते हुए विट कहता है कि उसकी तेज दृष्टि इस प्रकार तिमिराच्छन्न बन गई है कि खुली होने पर भी, वह बन्द जैसी प्रतीत होती है – ''उन्मीलितापि दृष्टि र्निमीलिते बान्धकारेण।''[७] बिल्कुल सरल ढंग से कही गई यह उक्ति अन्धकार का विल्कुल सटीक स्वरूप प्रस्तुत कर देती है। आकाश के कज्जल की वर्षा करने वाला चित्र तो प्रसिद्ध ही है – '' लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नमः।''[८] अन्धकार को अवकाश देकर डूबने वाले क्षीण चन्द्रमा के लिए जलमग्र बनैले हाथी के तीव्र दाँत के अग्रभाग का उपमान नितान्त व्यंजनापूर्ण है – ''जलावगाढस्य वनद्विपस्य तीक्ष्ण विषाणाग्रमिवावशिष्टम्।''[९] वैसे ही, उदीयमान चन्द्रमा के लिए निम्न प्रसिद्ध श्लोक द्रष्टव्य है –

''उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डु
ग्रहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीपः।
तिमिरनिकरमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
स्नुतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति।।''[१०]

---

७. मृच्छ० १.३३।।

८. मृच्छ० १.३४।।

९. मृच्छ० ३.६।।

१० मृच्छ० १.५७।।

– 'कामिनियों की गण्डस्थली के समान उज्ज्वल, ग्रह-समूह से घिरा हुआ, राज-मार्ग का प्रदीपक चन्द्रमा उदय ले रहा है जिसकी किरणें चतुर्दिक व्याप्त अन्धकार में पृथ्वी पर ऐसे गिर रही है मानो जलशून्य पंक में दूध की धारा गिर रही हो।'

चन्द्रमा को 'कामिनीगण्डपाण्डु' बताने मे तथा उसकी धवल रश्मियो को दूध की धारा बताने में उदित होने वाले चन्द्रमा का अभिराम चित्र उतर गया है यद्यपि कल्पना के अलंकृत प्रदर्शन से यह चित्र एकदम विमुक्त है।

अन्य संस्कृत नाटकों की तुलना में, नगर-जीवन से सम्बन्धित होने के कारण, 'मृच्छकटिक' दिन प्रकृति के चित्रणों में दुर्बल पड़ता है क्योंकि इसमें आकाश-यात्राएँ नहीं है, पर्वत नहीं है, वन अथवा सरिताएं नहीं हैं, किन्तु अन्धकार, ज्योत्स्ना, बादल, वर्षा, उपवन तथा ग्रीष्म के उत्ताप के चित्र इसमें सन्निविष्ट हुए हैं। ये चित्र सुन्दर एवं सटीक है। ग्रीष्म के भयंकर उत्ताप का एक यथार्थवादी चित्र यहाँ दृष्टव्य है –

'छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवल निद्रायते गोकुलं
तृष्णार्त्तैश्च निपीयते वनमृगैरुष्णं पयः सारसम्।
सन्तापादतिशङ्कितैर्न नगरीमार्गो नरैः सेव्यते
तप्तां भूमिमपास्य च प्रवहणं मन्ये क्वचित् संस्थितम्।।'''[11]

अर्थात् 'गाय-बैल घास छोड़कर छाया में नींद ले रहे हैं। प्यास से व्याकुल वन्य पशु नदी का गर्म जल पी रहे हैं। ताप से भयभीत मनुष्य नगरी की सड़कों पर नहीं चल रहे है। मै समझता हूँ, तप्त भूमि को छोंड़ कर, गाड़ी कहीं छाया में ठहरी हुई हैं।'

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि मृच्छकटिक में प्रेम की ही कहानी वर्णित हुई है, तथापि इसमें रूप-सौन्दर्य के चित्रों का प्रायः अभाव है। साथ ही, प्रेम

११. मृच्छ० ८.११।।

वेदना के चित्र भी उपलब्ध नहीं है। वसन्तसेना वेश्या युवती थी, समृद्ध गणिका-परिवार से सम्बन्धित थी। अतएव, उसके रूप सौन्दर्य की मादकता के चित्रण का अवकाश तथा अवसर अनेक हो सकते थे। वैसे ही, वसन्तसेना नहीं तो चारुदत्त को तो अवश्य ही अनुराग-बाण से बिद्ध चित्रित किया जा सकता था। लेकिन, शूदक ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। पूरे नाटक में एक भी ऐसा रूप-चित्र नहीं मिलेगा जिससे वसन्तसेना की मादक यौवन लक्ष्मी की प्रत्यक्ष अनुभूति हो सके। वसन्तसेना रात को भाग रही है, तब विट ने उसे रोकते हुए, उसके रक्त कमल के समान लाल चरणों का तथा कोमल कदली के समान पतली सुकुमार शरीर यष्टि का प्रकारान्तर से कथन किया है।[१२] इसी प्रकार, उसके उन्नत उरोजो का एक चित्र चारुदत्त के निम्नोद्धृत कथन में मिल जाता है –

''वर्षोदकमुद्गिरता श्रवणान्तविलम्बिना कदम्बेन।

एकः स्तनोऽभिषिक्तो नृपसुत इव यौवराज्यस्थः।।''[१३]

अर्थात् 'कान पर लटकते हुए कदम्ब से वर्षा की बूँदें वसन्तसेना के कुचों पर गिर रही है। जल से यह स्तन वैसे ही सिचित हो गया है मानो युवराज बनाये जाने वाले राजकुमार का अभिषेक हो रहा हो।' यहाँ स्तन को सिंहासनासीन राजकुमार बताया गया है।

इस प्रकार नाट्यकला की दृष्टि से मृच्छकटिक निःसंदेह एक सुन्दर तथा सफल नाटक है। संस्कृत साहित्य मे शायद पहली बार शूद्रक ने मध्यम श्रेणी के लोगों को नाटक का पात्र बनाया है। संस्कृत का नाटककार उच्च श्रेणी के पात्रों के चित्रण में तथा तदनुकूल कथानक के गुम्फन में अपनी भारती को चरितार्थ मानता है, परन्तु शूद्रक ने इस क्षुण्ण मार्ग का सर्वथा परित्याग कर अपने लिए एक नवीन पंथ का ही आविष्कार किया है। उसके पात्र दिन-प्रतिदिन सड़कों और गलियों में घूमने वाले, रक्तमांस से निर्मित पात्र है। आख्यान तथा वातावरण की इस यथार्थवादिता और नैसर्गिकता को कारण ही मृच्छकटिक पाश्चात्य आलोचकों की विपुल प्रशंसा का भाजन बना हुआ

---

१२ मृच्छ० १.२०।।

१३ मृच्छ० ५.३८।।

है। यहाँ कथावस्तु की एकता का भंग नहीं है, यद्यपि वर्षा वर्णन व्यापार में शैथिल्य अवश्य ला देता है। शूद्रक का कविहृदय स्वयमापतित वर्षाकाल की मनोहरता से रीझ उठता है और वह कथा के सूत्र को छोड़कर उसके मनोहर वर्णन में लग जाता है। शूद्रक ने विभिन्न घटनाओं के सूत्रों का एकीकरण बड़ी सुन्दरता से किया है।

मृच्छकटिक ने पात्र किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधि न होकर स्वय 'व्यक्ति' है। वे 'टाइप' नहीं हैं, प्रत्युत 'व्यक्ति' हैं। मृच्छकटिक के अमेरिकन भाषान्तरकार डॉ० राइडर ने ठीक ही कहा है कि इस नाटक के पात्र 'सार्वभौम' है, अर्थात् इस विश्व के किसी भी देश या प्रान्त में उनके सामान पात्र आज भी चलते-फिरते नजर आते है। इसके सार्वभौम आकर्षण का यही रहस्य है। पाश्चात्य जनता के सामने इसका अभिनय इसलिए सदा सफल हो पाया कि वह इसके पात्रो से मुठभेड़ अपने ही देश में प्रतिदिन किया करती है। इनमें पौरस्त्य चाकचिक्य की झाँकी का अभाव कभी भी इन्हे दूरदेशस्थ पात्रों का आभास भी नहीं प्रदान करता। डाक्टर कीथ भले ही इन्हें पूरे 'भारतीय' होने की राय दें, परन्तु पात्रों के चरित्र में कुछ ऐसा जादू है कि वह दर्शकों के सिर पर चढ़कर बोलने लगता है। आज भी माथुरक जैसे सभिक तथा उसके सहयोगियों का दर्शन महानगर की गलियों में नहीं होता प्रत्युत लण्डन के ईस्ट एण्ड मे भी वे घूमते-घामते, धौल-धप्पड़ जमाते नजर आते हैं, जहाँ का 'जुआड़ियों का अड्डा' आज भी पुलिस की नजर बचाकर दिन दहाड़े चला करता है। वस्तुतः शूद्रक की नाट्यकला श्लाघनीय तथा स्पृहणीय है।

साम्य विश्लेषण

साम्य विश्लेषण

'दरिद्रचारुदत्तम्' तथा 'मृच्छकटिकम्' में कथा-साम्य, पद्य-साम्य, पात्र-साम्य आदि अनेकविध साम्य है। आलोचको ने 'मृच्छकटिकम्' को अपूर्ण 'चारुदत्तम्' का परिष्कृत एवं पूर्ण रूप माना है। अतएव दोनो का साम्य सहजतया कल्पनीय है। कुछ साम्य ऐसे हैं जो प्रथम दृष्ट्यैव पाठक को परिलक्षित होने लगते हैं, उनके लिए कोई आभास नहीं करना पड़ता। एतदतिरिक्त उभय नाटकों के भूयोभूयः परिशीलन से अनेक ऐसे स्थल दृष्टि में आते है जिनमें भावों का साम्य तो है, परन्तु शब्दों के परिवर्तन अथवा कतिपय अंशों के संयोजन से यत्किञ्चित् परिवर्तन भी कर दिया गया है। ऐसे अंशों को प्रयासपूर्वक ही देखा जा सकता है। अधोलिखित अंशों में इन उभयविध साम्यों का उल्लेख किया जा रहा है –

'चारुदत्तम्' और 'मृच्छकटिकम्' दोनो की प्रस्तावना में सूत्रधार भूख से व्याकुल दिखाई पड़ता है, किन्तु 'चारुदत्तम्' में इस भूख का कोई संगत कारण वर्णित नहीं है जबकि 'मृच्छकटिकम्' मे कारण उल्लिखित है, अधिक समय तक संगीत की उपासना – ''कृतञ्च संगीतकं मया। अनेन चिरसंगीतोपासनेन....'' 'चारुदत्तम्' और 'मृच्छकटिकम्' दोनो में सूत्रधार के निर्धन होने के संकेत हैं, किन्तु ऐसा मानने का कोई कारण नहीं कि 'चारुदत्तम्' का सूत्रधार गत रात्रि को भोजन नहीं पा सका है जिससे उसकी आँखें प्रत्यूष-वेला में ही भूख से चंचल हो उठीं हों – ''**किण्णु खु अज्ज पद्यूस एव्व गेहादो णिक्खन्तस्य बुभुक्खाए पृक्खरपत्तपडिदजलबिन्दू विअ चञ्चलाअन्ति विअ में अक्खीणि।** '' मृच्छकटिकम् में ''चिरसंगीतोपासना'' का कथन कर, सूत्रधार की प्रातःकालीन बुभुक्षा का कारण निर्दिष्ट कर दिया गया है।

''अभिरूपपति'' (अनुरूप पति पाने में सहायक) उपवास का कथन

'चारुरुदत्तम्' तथा 'मृच्छकटिकम्' दोनों रचनाओं में समान ढंग से हुआ है। किन्तु 'चारुदत्तम्' में इस व्रत के उपदेष्टा चूर्णगोष्ठक (वा चूर्णवृद्ध) के निर्देश पर सूत्रधार चूर्णगोष्ठक को साधुवाद देता है जबकि 'मृच्छकटिकम्' में सूत्रधार क्रोधाभिभूत होकर, बौखला उठता है – ''अधम-पुत्र चूर्णवृद्ध! वह दिन कब आएगा जब क्रुद्ध राजा पालक के द्वारा, नववधू के सुगंधित केश-पाश के समान, विदीर्ण होता हुआ मैं तुम्हें देखूँगा?'' इसके पूर्व, सूत्रधार के इस प्रश्न पर कि अनुरूप पति प्राप्त करने की बात इस जन्म के लिए है या दूसरे जन्म के लिए, जब नटी कहती है कि दूसरे जन्म वा परलोक के लिए, तब भी 'मृच्छकटिकम्' का सूत्रधार क्रुद्ध हो गया है और आर्यमिश्रो से इन अनर्थ का साक्षी होने के लिए अनुरोध किया है कि ''हे सभ्यजनो! आप देखें, मेरे अन्न को खर्च कर, दूसरे लोक के लिए अनुकूल पति खोजा जा रहा है!'' दरिद्रचारुदत्तम् मे सूत्रधार यह जान कर कि अन्य जन्म मे भी अनुरूप पति की एषणा की जा रही है, एक-दम शान्त हो जाता है और स्थिर भाव से कहता है – ''अच्छा, यह सब रहने दो। इस समय भार्या के उपवास का उपदेशक कौन है?''

अतएव, यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अभिरुपपति' नामक व्रत की व्यवस्था से 'मृच्छकटिकम्' में सूत्रधार के अमर्ष का जो क्षणिक चित्र उपनिबद्ध हो गया है, उसके सन्दर्भ में चारुदत्तम् का यह स्थल फीका एवं नीरस बन गया है। अतएव, 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना 'चारुदत्तम्' की स्थापना की तुलना में नाटकीयता की दृष्टि से श्रेष्ठ ठहरती है।

प्रस्तावना (स्थापना) की समाप्ति के अनंतर, दोनो नाटकों में विदूषक सूत्रधार के भोजन-विषयक निमंत्रण को अस्वीकृत करता हुआ तथा चारुदत्त के घर में सुमधुर पदार्थों के भक्षण से सुख एवं स्वास्थ्य के दिन व्यतीत करने के तथ्य का कथन करता हुआ प्रदर्शित किया गया है। 'दरिद्रचारुदत्तम्' में विदूषक का यह कथन मृच्छकटिकम्

की तुलना में विपुल हुआ है। इसी संदर्भ में 'दरिद्रचारुदत्तम्' में चारुदत्त आता दिखाई पड़ता है जबकि 'मृच्छकटिकम्' में चारुदत्त के साथ रदनिका भी आई है। 'दरिद्रचारुदत्तम्' में विदूषक का कथन है कि षष्ठी तिथि पर देव-कार्य सम्पादित करने वाले मान्य चारुदत्त के निमित्त वह पुष्प एवं परिधेय वस्तु लाया है जबकि 'मृच्छकटिम्' मे मैत्रेय कहता है कि चारुदत्तम् के प्रिय वयस्य चूर्णवृद्ध ने चमेली के फूलों से सौरभित उत्तरीय को देव-कार्य सम्पादित करने वाले चारुदत्त के पास ले जाकर देने का निर्देश किया है। इसके बाद, चारुदत्त और मैत्रेय (विदूषक) परस्पर वार्तालाप करते दोनो नाटकों में दिखाये गए है जिसमें चारुदत्त के सम्पद्-विनाश तथा उससे परिणमित उसके मानसिक अवसाद का वर्णन हुआ है।

गणिका वसन्तसेना के अनुगम्यमान होने का दृश्य दोनो नाटकों में समान है, इस अन्तर के साथ कि 'चारुदत्तम्' में वह विट तथा शकार से पीछा की जा रही है जबकि 'मृच्छकटिकम्' में विट, चेट तथा शकार से। ' मृच्छकटिक' में शकार तथा विट के कथन, 'चारुदत्तम्' की अपेक्षा, कुछ अधिक पल्लवित हैं तथा विस्तार कलात्मक दृष्टि से उत्तम ही समझा जाएगा। शकार के कथनो से उसकी कामान्धता, मूर्खता तथा क्रूरता-दुष्टता, 'दरिद्रचारुदत्तम्' की तुलना में, अधिक उभार में आ गई है। विट ने वेश्या की सर्व-जन-सुलभता का जिन तर्कनाओं से प्रतिपादन किया हैं, वे 'दरिद्रचारुदत्तम' की अपेक्षा अधिक पुष्ट एव विश्वसनीय है। 'दरिद्रचारुदत्तम्' में विट की तर्कना इस प्रकार है —

> ''तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो
>
> विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।
>
> वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं
>
> सममुपचर भद्रे! सुप्रियं चाप्रियं च।।'' चारु० १.१७

अर्थात् वेश्यालय तरुणजनों के सहायक हैं, ऐसा तुम्हें सोचना चाहिए। तुम वेश्या हो और मार्ग में पड़ी हुई लता की भाँति सर्वसाधारण के उपयोग की वस्तु हो। तुम पण्यभूत एवं धन के द्वारा एक-मात्र हरण करने योग्य शरीर धारण करती हो। अतएव, हे भद्रे! प्रिय (रसिक) और अप्रिय (अरसिक) दोनो को समान भाव से स्वीकार करो।'

किन्तु, 'मृच्छकटिकम्' में विट की तर्कनाएँ यों पल्लवित हुई है –

''तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो

विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।

वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं

सममुपचर भद्रे! सुप्रियं चाप्रियञ्च।।'' मृच्छ० १.३१

अपि च –

वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः

फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।

ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तथैवेतरे

त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज।।''

मृच्छ० १.३२

(प्रथम श्लोक 'दरिद्रचारुदत्तम्' से अक्षरशः मिलता है।) बावड़ी मे विद्वान् ब्राह्मण भी स्नान करता है और नीच वर्ण का मूर्ख भी। फूलों से लदी जिस लता को मोर झुकाता है, उसी को कौवा भी झुकाता है। जिस नाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य नदी पार करते हैं, उसी नाव से शूद्र भी। तुम वेश्या हो और उसी बावड़ी,

लता एवं नौका के समान हो। अतएव, तुम्हें सबका एक-भाव से आदर करना चाहिए।'

मातृ-देवियों को बलि चढ़ाने के लिए चारुदत्त-द्वारा रात में मैत्रेय का भेजा जाना, मैत्रेय के साथ रदनिका का भी जाना, वसंतसेना का दीपक बुझा देना और रदनिका के विट अथवा शकार-द्वारा पकड़ा जाना – ये सभी बातें दोनो नाटको में समान रूप से वर्णित है। किन्तु, 'दरिद्रचारुदत्तम्' की तुलना में 'मृच्छकटिकम्' में जो थोड़ा विस्तार किया गया है, वह शिथिल एवं बहुत-कुछ अनावश्यक प्रतीत होता है।

द्वितीय अङ्क में वसन्तसेना के चारुदत्त-विषयक अनुराग की झलके, जुआरी संवाहक को वसन्तसेना द्वारा दी जाने वाली सहायता तथा उसका संन्यास-ग्रहण और वसंतसेना के भृत्य कर्णपूरक द्वारा वसन्तसेना के दुष्ट हाथी के घातक आक्रमण से उस बौद्ध संन्यासी की रक्षा – ये तथ्य दोनों नाटकों में समान भाव से सन्निविष्ट हुए हैं। इसी प्रकार तृतीय अंक में दोनो नाटकों की समानता है। सन्धिविच्छेद वाला प्रसंग दोनो का एक ही है।

'दरिद्रचारुदत्तम्' एवं 'मृच्छकटिकम्' के पद्यों में साम्य मिलता है। जिनमें से कुछ पद्य निम्नवत् है –

१. यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां

हंसैश्च सारसारगणैश्च विभक्तपुष्पः।

तास्वेव पूर्वबलिरुढयावाङ्कुरासु

बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः।।

– चारु० १.२

यासां बलिः सपदि मद्गृहदेहलीना

हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः।

तास्वेव सम्प्रति विरुढ़तृणाङ्कुरासु

बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः।।

— मृच्छ १.६

सुख हि दुःखान्यनुभूय शोभते

यधान्धकारादिव दीपदर्शनम्।

सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां

स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति।।

— चार० १.३

सुखं हि दुःखान्यभूय शोभते

घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।

सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां

धृतः शरीरेण मृतः स जीवति।।

— मृच्छ० १.१०

३. दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते

सत्त्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।

निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः

पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते।।

— चारु० १.६

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते,

सुस्निग्धा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फारीभवन्त्यापदः।

सत्त्व ह्रासमुपैति, शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते

पाप कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते।।

— मृच्छ० १.३६

४. सत्यं न मे धनविनाशगता विचिन्ता

भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति।

एतत्तु मां दहति नष्टधनश्रियो में

यत् सौहृदानि सुजने शिथिलीभवन्ति।।

— चारु० १.५

सत्यं न मे विभवनाशकृताऽस्ति चिन्ता

भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।

एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य

यत् सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।।

– मृच्छ० १.१३

५. किं याशि धावशि पधावशि पक्खलन्ती

शाहुप्पशीद ण मलीअसि चिट्ठ दाव

कामेण शम्पदि हि उज्झइ मे शलीलं

अड्डालमज्छपडिदे विअ चम्मखण्डे।।

– चारु० १.८

किं याशि, धावशि, पलाअशि, पक्खलन्ती

वाशू! पशीद ण मलिश्शशि, चिट्ठ दाव।

कामेण दज्झदि हु मे हलके तवश्शी

अंगाललाशिपडिदे विअ मंशखण्डे।।

– मृच्छ० १.१८

६. किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या

नृत्तोपदेशविशदौ चरणौ क्षिपन्ती।

उद्विग्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टि –

र्व्याघ्रानुसारचकिता हरिणीव यासि।।

– चारु० १.६

किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या

नृत्यप्रयोगविशदौ चरणौ क्षिपन्ती।

उद्विग्न-चञ्चल-कटाक्ष-विसृष्टदृष्टि –

र्व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि।।

– मृच्छ० १.१७

७. किं त्वं पदात् पदशतानि निवेशयन्ती

नागीव यासि पतगेन्द्रभयाभिभूता।

वेगादहं प्रचलितः पवनोपमेयः

किं त्वां ग्रहीतुमथवा न हि मेऽस्ति शक्तिः।।

– चारु०–१.११

किं त्वं पदैर्मम पदानि विशेषयन्ती

व्यालीव यासि पतगेन्द्रभयाभिभूता।

वेगादहं प्रविसृतः पवनं निरुन्ध्यां

त्वन्निग्रहे तु वरगात्रि! न मे प्रयत्नः।।

— मृच्छ० १.२२

८. तरुणजनसहायश्चिन्त्यता वेशवासो

विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।

वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं

सममुपचर भद्रे! सुप्रियं चाप्रियं च।।

— चारु० १.१७

तरुणजनसहायनिश्चन्त्यन्तां वेशवासो

विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लते व।

वहसि हि धनहार्य पण्यभूतं शरीरं

सममुपचर भद्रे! सुप्रियं वा प्रियं वा।।

— मृच्छ० १.३१

९. लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।

असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता।।

— चारु० १.१६

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः

असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता।।

— मृच्छ० १.३४

१०. आलोकविशाला में सहसा तिमिरप्रवेशसञ्छन्ना।

उन्मीलितापि दृष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण।।

— चारु० १.२१

आलोकविशाला मे सहसा तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना।

उन्मीलितापि दृष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण।।

— मृच्छ० १. ३३

११. एषा रङ्गप्रवेशेन कलानां चैव शिक्षया।

स्वरान्तरेण दक्षा हि व्याहर्तु तन्न मुच्यताम्।।

— चारु० १.२४

इयं रङ्गप्रवेशेन कलानां चोपशिक्षया।

वञ्चनापण्डिततत्वेन स्वरनैपुण्यमाश्रिता।।

– मृच्छ० १.४२

१२. यत्र मे पतितः कामः क्षीणे विभवसञ्चये।

रोषः कुपुरुषस्येव स्वाङ्गेष्वेवावसीदति।।

– चारु० १. २८

यया मे जनितः कामः क्षीणे विभवविस्तरे।

क्रोधः कुपुरुषस्येव स्वगात्रेष्वेव सीदति।।

– मृच्छ० १.५५

१३. उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु –

र्युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः।

तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा

हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति।।

– चारु० १.२६

उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डु –

र्ग्रहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीपः।

तिमिरनिकरमध्ये रश्मयो यस्य गौराः

स्नुतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति।।

– मृच्छ० १.५७

१४. इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।

अदृश्यमाना चपला जरेव या मनुष्यवीर्यं परिभूय वर्धते।।

– चारु० ३.४

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।

अदृश्यरूपा चपला जरेव या मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्द्धते।।

– मृच्छ० ३.८

१५. अयं तव शरीस्य प्रमाणादिव निर्मितः।

अप्रकाश्यो ह्यलङ्कारो मत्स्नेहाद् धार्यतामिति।।

– चारु० ४.२

अयं तव शरीरस्य प्रमाणादिव निर्मितः।

अप्रकाश्यं ह्यलङ्कारः मत्स्नेहाद्धार्य्यतामिति।।

– मृच्छ० ४.७

'दरिद्रचारुदत्तम्' एवं 'मृच्छकटिकम्' दोनो नाटकों के पात्र सूत्रधार, चारुदत्त, मैत्रेय, शकार, विट, चेट, संवाहक, नटी, वसन्तसेना एवं रदनिका प्रायः वे ही है। इन पात्रों के अतिरिक्त मृच्छकटिकम् में कुछ पात्रों की संख्या भी बढ़ी है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 'दरिद्रचारुदत्तम्' एवं 'मृच्छकटिकम्' दोनो नाटकों में कथा साम्य, पद्य साम्य एवं पात्र साम्य आदि अनेक विध जो साम्य हैं, वे सहजतया कल्पनीय हैं।

विरुद्धांश परिशीलन

विरुद्धांश परिशीलन

यद्यपि 'मृच्छकटिकम्' तथा 'चारुदत्तम्' मे कथावस्तु, पात्र तथा संवाद आदि अनेकविध साम्य देखा जा सकता है तथापि दोनो में पर्याप्त अन्तर भी है। आपाततः 'चारुदत्तम्' सम्प्रति चार अंकों में उपलब्ध हैं, यह अपूर्ण माना जाता है। जबकि 'मृच्छकटिकम्' दस अंको में निबद्ध है तथा पूर्ण है। शर्विलक माथुर, बन्धुल, शोधनक, धूता प्रभृति पात्रों का मृच्छकटिकम् में अलग से संयोजन हुआ है। यही नहीं कहीं-कहीं ' चारुदत्तम्' के संवाद अथवा पदावली भावाभिव्यक्ति में आधिक समर्थ है तो यत्र-तत्र उसकी न्यूनताओं को शूद्रक ने तर्क संगत ढंग से दूर किया है। अधोलिखित अंशों में इन विरुद्धांशों का उल्लेख किया जा रहा है —

'दरिद्रचारुदत्तम्' में नान्दी पाठ उपलब्ध नही है : नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः।'' केवल नान्दी शब्द का उल्लेख है। इसी प्रकार प्ररोचना वाला, अंश भी इसमें वर्तमान नहीं है। जबकि 'मृच्छकटिकम्' में नान्दी पाठ दिया हुआ है जिसके दो श्लोकों मे यह कामना व्यक्त की गयी है कि भगवान शंकर की प्रलयोन्मुख निर्विकल्पक समाधि तथा उनका गौरीभुजलता - भ्रजित श्यामलकण्ठ सामाजिक वृन्द की रक्षा करे। तदनन्दर सूत्रधार सभ्यजनो को प्रणाम कर विज्ञापित करता है कि हम लोग 'मृच्छकटिक' नामक प्रकरण का अभिनय करने जा रहे हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में पाँच श्लोकों में मृच्छकटिकम् के कर्ता शूद्रक की परिशंसना की गई है तथा प्रकरण की प्रतिपाद्य वस्तु का उल्लेख किया गया है –

''अवन्तिपुर्य्यां द्विजसार्थवाहोः युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना।।
तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं नयप्रचारं व्यवहारदुष्टताम्।
खलस्वभावं भविव्यतां तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः।।''

प्ररोचना वाला सम्पूर्ण अंश मूल रचयिता का नहीं है, अपितु यह बाद में किसी अन्यप्रशंसक द्वारा मूल कृति में जोड़ा गया है।

प्ररोचना विषयक श्लोकों के बाद 'मृच्छकटिकम्' मे सूत्रधार ने संस्कृत गद्य में जो कथन मिला है, उसी को वह थोड़ी देर बाद प्राकृत गद्य में दुहराता है और प्राकृत-प्रयोग को प्रयोजन-सापेक्ष बतलाता है – **''कार्यवशात् प्रयोगवशाद्य प्राकृतभाषी संवृत्तः।''** 'चारुदत्तम्' में सूत्रधार सर्वदैव प्राकृत बोलता है, प्राकृत से आरम्भ ही हुआ है 'चारुदत्तम्' का नाटकीय व्यापार 'मृच्छकटिकम्' का यह संस्कृत गद्यांश की प्ररोचना वाले श्लोकांश की भाँति प्रक्षिप्त हो सकता है। अन्यथा प्राकृत गद्य में किए गए कथन के आरम्भिक अश को पहले संस्कृत गद्य में कथित करने के पीछे कोई संगत कारण नहीं दिखाई पड़ता ''प्रयोगवशात्'' से यह ध्वनि निकलती है कि कदाचित नटी संस्कृत कथन का अर्थ नहीं समझ सकती थी, किन्तु तब, सूत्रधार को आरम्भ से ही प्राकृत का प्रयोग अपनाना चाहिए था जैसा कि 'दरिद्रचारुदत्तम्' में हुआ है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण अन्तर उभय ग्रन्थों में चारुदत्त के चरित्र चित्रण में दिखायी पड़ता है। मृच्छकटिकम् में चारुदत्त अत्यन्त दीन, विषण्ण तथा निर्वेद-ग्रस्त वन गया है। दरिद्रता के सम्भावित परिणामो का उसने तनिक विशद एवं कारुणिक वर्णन किया है। मित्रादि के आचार-परिवर्तन का उल्लेख तो 'मृच्छकटिकम्' मे भी 'चारुदत्तम्' के समान ही है, लेकिन दरिद्रता-जन्य मानसिक अवसाद का चित्रण 'मृच्छकटिकम्' में अत्यन्त गहरे रंगों से परिपूर्ण बन गया है। पुनः चारुदत्त को अपनी पत्नी द्वारा अपमानित होने की भावना भी ग्रस्त कर लेती है। जबकि 'चारुदत्तम्' में ऐसी स्थिति नहीं है। वहाँ नायक, चारुदत्त मनसा इतना श्लथ-शिथिल तथा विपन्न-विषण्ण नहीं है, वह कहता है – **'न खल्वहं नष्टां श्रियमनुशोचामि। गुणरसज्ञस्य तु पुरुषस्य व्यसनं दारुणतरं मां प्रतिभाति।'** अर्थात्, विनष्ट होने वाली सम्पदा की चिन्ता उसे नहीं सताती, अपितु गुणज्ञ एवं रसज्ञ सहृदय सु-पुरुष की विपत्ति उसे असह्य प्रतीत होती है। चारुदत्त स्वतः गुणज्ञ

तथा रस-मर्मज्ञ है और धन के अभाव में वह अपनी इस निसर्ग-सिद्ध विभूति का उन्मुक्त अभ्यास नहीं कर सकता। उसकी सम्पत्ति प्रणयिजनों के इष्टार्थों की पूर्ति में ही नष्ट हुई है; उसने कभी किसी याचक को अवमानित नहीं किया; 'दान देना उत्तम है', इस विश्वास से उसने सम्पूर्ण ऐश्वर्य लुटा दिया और उसका सत्त्वशाली मन कभी क्षय-ग्रस्त नहीं हुआ –

''क्षीणा ममार्थाः प्रणयिक्रियासु विमानितं नैव परं स्मरामि।

एतत्तु में प्रत्ययदत्तमूल्य सत्त्वं सखे न क्षयमभ्युपैति।। चारु० १.४

चारुदत्त यह अवश्य स्वीकार करता है कि दरिद्रता के कारण, पुरुष का बंधु-वर्ग उसके कथन में विश्वास नहीं करता, मनस्विता हास्य का आस्पद हो जाती है, शीलयुक्त पुरुष की कान्ति मलिन हो जाती है, मित्र-गण विमुख हो जाते हैं और साधारण जनो द्वारा सम्पन्न पाप-कर्म भी दरिद्र व्यक्ति के ऊपर आरोपित कर दिया जाता है, किन्तु तो भी, उसे अपनी गुण-ग्राहिणी पत्नी, सुख-दुःख में समान रहने वाले मित्र मैत्रेय तथा सत्त्वशाली मन पर अमोघ विश्वास है जिस कारण वह मनोवैज्ञानिक पराभव अथवा मानसिक विध्वंस का आखेट नहीं बन सका है –

''विभवानुवशा भार्या समुदुःखसुखो भवान्।

सत्त्वं च न परिभ्रष्टं यद् दरिद्रेषु दुर्लभम्।। चारु० १.७

इसके विपरीत 'मृच्छकटिक' के चारुदत्त में यह सत्त्व प्रायः टूट गया है। वहाँ यह भी पता नहीं चलता कि उसकी सम्पत्ति विशेषरूपेण प्रणयिजनो के मधुर व्यापारों की परिपूर्ति में ही व्यय हुई है। ''गुणरसज्ञस्य तु पुरुषस्य व्यसनं दारुणतरं मां प्रतिभाति'' से निकलने वाली ध्वनि भी इस चारुदत्त के चरित्र को मण्डित नहीं कर रही है। मृच्छकटिकम् (१.१४, १५) मे उसका कथन है कि –

दारिद्रयाद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो

निस्तेजाः परिभूयते, परिभवान्निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्।।
निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो वैरमपरं
जुगुप्सा मित्राणां स्वजनजनविद्वेषकरणम्।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात् परिभवो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च।।

अर्थात् दरिद्रता के कारण लज्जा होने लगती है, लज्जित व्यक्ति तेजहीन हो जाता है, तेजहीन व्यक्ति लोक से तिरस्कृत होता है, तिरस्कार के कारण मन विरक्त हो जाता है, वैराग्य होने पर शोक उत्पन्न होता है, शोक-ग्रस्त होने से बुद्धि क्षीण हो जाती है, और तब बुद्धि-नाश होने पर सर्वनाश की अवस्था उत्पन्न होती है।''

''दरिद्र को घर छोड़कर वन मे चले जाने की इच्छा होती है, यहॉ तक कि उसे अपनी स्त्री का भी अपमान सहना पड़ता है; गरीबी हृदय में स्थित वह शोक की आग है जो एक-ही बार जला कर नष्ट नहीं कर देती, अपितु घुला-घुला कर मारती है।''

अतएव, यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत प्रसंग 'चारुदत्तम्' में 'मृच्छकटिकम्' की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित है और चारुदत्त के शील-निरूपण में अधिक सुन्दर एवं स्वस्थ है।

इसी तरह वसन्तसेना का परिचय चारुदत्त को प्राप्त होने के सम्बन्ध में भी 'चारुदत्तम्' और मृच्छकटिकम् ' में थोड़ा अन्तर है। 'चारुदत्तम्' में यह परिचय वसन्तसेना ने स्वयं दिया है उस समय जब विदूषक राजश्याल संस्थानक की धमकियॉ

चारुदत्त को सुना रहा है। 'मृच्छकटिकम्' में विदूषक ने चारुदत्त के यह पूछने पर कि यह दूसरी स्त्री कौन है, वसन्तसेना का परिचय उसे दिया है और उसके कुछ देर बाद शकार की धमकियाँ सुनाई है। देवधर ने उस बात को लेकर भी 'मृच्छकटिकम्' की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। यहाँ भी उनकी यही टिप्पणी है कि 'चारुदत्तम्' में चारुदत्त के "**इयमिदानीं का**" प्रश्न का उत्तर न तो रदनिका द्वारा और न विदूषक द्वारा दिया गया है। वस्तुतः प्रत्येक प्रसंग में उत्तर की माँग करने में न कला की रक्षा होगी और न नाटकीयता की। चारुदत्त कहता है – "अभी यह महिला यहाँ कौन है जिसे मैने अज्ञानता-वश अपना वस्त्र दे दिया है ? इसे ओढ़ कर यह शरत्-कालीन मेघ से आच्छन्न चन्द्रमा की रेखा की नयी शोभा दे रही है–

"अविज्ञातप्रयुक्तेन घर्षिता मम वाससा।

संवृता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव शोभते।।" चारु० १.२७

"इसके बाद ही, गणिका के स्वल्प स्वगत-भाषण के बाद, विदूषक ने चारुदत्त से निवेदन किया है – 'हे चारुदत्त! राजश्याल संस्थानक वस्त्र से ढके सिर से वंदना करके आप से निवेदन करते है कि नटी-स्त्री, वेश्या-पुत्री वसंतसेना को हम लोग बलात्कार करके लाये थे। वह प्रचुर सुवर्णालंकार से युक्त होकर आपके महल में प्रवेश कर गई है। उसे कल प्रातःकाल ही अपने घर से निकाल दीजिये।" विदूषक की इस विज्ञापना से झटिति बाद, वसन्तसेना ने दो छोटे वाक्यों के स्वगत के साथ कहा है, " आर्य! शरणागत हूँ।" इस पर, चारुदत्त का कथन है – "न भेतव्यं न भेतव्यं। वसन्तसेनैषा।" (डरो मत, डरो मत। क्या यह वसंतसेना है?)

इस प्रकार वसंतसेना का प्रस्तुत परिचय अधिक नाटकीय होने के कारण, अधिक कलात्मक कहा जाएगा। 'मृच्छकटिकम्' में "इयमपरा का" प्रश्न के उत्तर में विदूषक द्वारा जो तत्काल वसंतसेना का प्रत्यक्ष परिचय बताया गया है, वह

नाटकीयता से मंडित नहीं है। पुनः 'चारुदत्तम्' में नायक के प्रश्न का प्रत्यक्ष उत्तर न देकर, विदूषक ने जो यह कहा है कि युवती वेश्या-दारिका वसंतसेना उसके भवन में प्रविष्ट हो गई है, वह चारुदत्त की जिज्ञासा का परोक्ष उत्तर ही होगा। और, उसी समय वसंतसेना का यह तत्काल कथन कि "अय्य! सरणागदिह्न।" (आर्य! शरणागत हूँ।) नितात नाटकीय हो गया है तथा उसके भयभीत मनोभाव की भी विज्ञप्ति करता है। उसके बाद नायक का आश्वासन, "डरो मत, डरो मत। क्या यह वसंतसेना है?" उसके चरित्र के दाक्षिण्य पर मधुर उन्मीलक किरणें प्रक्षिप्त करता है। 'मृच्छकटिकम्' में न तो वसंतसेना के भयभीत भाव का ही ओर न चारुदत्त की इस श्रेष्ट एवं दाक्षिण्य-पूर्ण प्रतिक्रिया का ही कोई विद्योतन हुआ है।

मृच्छकटिक में चारुदत्त के पास अलंकार रख छोड़ने के बाद, वसंतसेना चारुदत्त के द्वारा स्वय अपने घर तक पहुँचाई गई है – "भवति वसन्तसेने! इदं भवत्या गृहम्, प्रविशतु भवती।" 'चारुदत्तम् ' में यह कार्य नायक के आदेश पर विदूषक-द्वारा सम्पन्न हुआ है – "भवति। राजमार्गे निष्क्रमणः क्रियताम्। सुखम्, अनुगच्छात्र भवतीम्।" वसन्तसेना के घर तक पहुँचने का कोई पृथक् उल्लेख 'चारुदत्तम्' में उपलब्ध नहीं, सामाजिक समझ लेते हैं कि वह अपने घर उस चन्द्रिका-घोत रजनी में अवश्य पहुँच गई होगी। अतएव 'चारुदत्तम्' में अनेक छोटे-छोटे विवरण जहाँ संकेतित कर दिये गए हैं, वहाँ 'मृच्छकटिकम्' मे उनके स्पष्ट उल्लेख से भावकों की कल्पना के अभ्यास के लिए कुछ भी अवकाश नही दिया गया है। नाट्य-कला की आत्मा पूर्ण अनावरण नहीं चाहती, वह चाहती है रसिक-प्रवर बिहारी की ललितांगना का "छिप्यो छबीलो मुहू लसै नीलै अंचर-चीर" वाला शील। 'मृच्छकटिकम्' में नाट्य-कला का छबीला मुख सौन्दर्य एक-दम उघार दिया गया है जब कि 'चारुदत्तम्' में वह व्यंजना के नीले, पतले अंचल में इस प्रकार छिपाया गया है कि कल्पना-शील भावक उसे तत्काल देख लेता और मुग्ध हो जाता है।

इसी प्रकार जुआरियों के अध्यक्ष माथुर तथा दर्दुरक इत्यादि अन्य जुआरियों द्वारा जुआ खेले जाने, माथुर-द्वारा संवाहक के पीटे तथा सताये जाने और दर्दुरक की सहायता से संवाहक के भाग निकलने का नितान्त सटीक एवं जीवन्त वर्णन 'मृच्छकटिकम्' की अपनी विशेषता है जिसका 'चारुदत्तम' में एकान्त अभाव है : 'चारुदत्तम्' में संवाहक केवल मौखिक निवेदन करता है कि वह जुए में दस स्वर्ण-मुद्राएँ हार गया है और विजेता द्यूत-सेवी उससे ये मुद्राएँ माँग रहा है। संवाहक के निवेदन से हमें केवल आभास मिलता है कि वह जुआरियों के सरदार से सताया जा सकता है, लेकिन उस सताये जाने का प्रकृत चित्र 'चारुदत्तम्' में अंकित नहीं है। पुनः वसन्तसेना की चेटी वहाँ सूचना देती है कि उसने आवश्यक द्रव्य विजयी जुआरी को संवाहक की ओर से दे दिया है, किन्तु 'मृच्छकटिकम्' में यह सूच्य नहीं, वस्तुतः प्रदर्शित हुआ है।

वैसे ही, कर्णपूरक ने उस दुष्ट हाथी द्वारा आविर्भूत आतंक का सजीव वर्णन 'मृच्छकटिकम्' में किया है जब कि 'चारुदत्तम्' में हाथी के उत्पात एवं आतंक का कोई संकेत नहीं है। 'मृच्छकटिकम्' का यह वर्णन, छोटा होने पर भी, स्तुत्य एवं स्पृहणीय है।

'चारुदत्तम्' में कर्णपूरक को मिले सुरभित उत्तरीय से यह पता नहीं चलता कि वह वस्त्र उसे किसने दिया है और वसन्तसेना तथा चेटी प्रासाद से झॉक कर ही चारुदत्त को पहचानती है। 'मृच्छकटिकम्' में उत्तरीय पर चारुदत्त का नाम अंकित है जिससे वसंतसेना तथा चेटी सद्यः जान जाती है कि वह उत्तरीय चारुदत्त का, कर्णपूरक की वीरता के लिए, बौद्ध संन्यासी की प्राण रक्षा हेतु कृतज्ञता-ज्ञापन का प्रसाद है। 'मृच्छकटिकम्' में यह संन्यासी जुआरी संवाहक ही है जिसने अभी-अभी प्रव्रज्या ग्रहण कर ली है जबकि 'चारुदत्तम्' से इस बात का स्पष्ट पता नहीं चलता।

इस प्रकार सामान्यतः 'मृच्छकटिकम्' का दूसरा अंक 'चारुदत्तम्'

की तुलना में श्रेष्ठ कहा जाएगा। यहाँ पर जो विस्तार दिखाई पड़ता है, वह अनावश्यक तथा कलात्मक सौष्ठव का अपघातक नहीं है। 'चारुदत्तम्' में कम से कम जुआरियों वाले दृश्य का अभाव खटकता है।

चतुर्थ अंक में 'चारुदत्तम्' और 'मृच्छकटिकम्' में महत्व का भेद है, 'मृच्छकटिकम्' में वसन्तसेना के महल के वैभव एवं ऐश्वर्य का वर्णन जिसका केवल एक क्षीण संकेत 'चारुदत्तम्' में उपलब्ध है। ' चारुदत्तम्' का सज्जलक 'मृच्छकटिकम्' में शर्विलक है। सज्जलक ने प्रातःकाल गणिका के महल में जाकर उच्च स्वर से मदनिका को बुलाया है – "**यावच्छब्दापयामि। मदनिके!**" और मदनिका उसकी आवाज पहचान कर बाहर उसके पास गई है। 'मृच्छकटिकम्' में शर्विलक वसंतसेना के महल में प्रवेश करता है और मदनिका की चिन्ता करता है कि तत्काल मदनिका वहॉ उपस्थित हो जाती है। अतएव, 'चारुदत्तम्' का प्रस्तुत स्थल कला-दृष्टि से अनुचित प्रतीत होता है क्योंकि सज्जलक को उच्च स्वर से अपनी प्रेयसी का आह्वान करना पड़ा है। ऐसा जान पड़ता है जैसे 'चारुदत्तम्' का रचयिता सज्जलक के प्रति पूर्ण शील का निर्वाह करना नहीं चाहता था। वसंतसेना के यह निर्देश करने पर कि वह उस अलंकार को चारुदत्त को वापस दे दे। जब सज्जलक ने वहाँ जाने से इनकार कर दिया, तब वसंतसेना ने कहा "मै जानती हूँ कि आपने उनके घर में चौर्य का साहस कर इस आभूषण को प्राप्त किया है; आपको उनके गुणों के साथ सहानुभूति दिखलानी चाहिए।" 'मृच्छकटिकम्' मे शर्विलक के शील की रक्षा हुई है। वहाँ वसंतसेना ने वह अलंकार स्वीकार करने में कोई ननु नच नहीं किया है और व्यंग्य-पूर्ण विनोद की भंगिमा में कहा है: "आर्य! मेरा भी प्रति-संदेश उनके पास लेते जाइए। आप मदनिका को ग्रहण करें। आर्य चारुदत्त ने कहा है कि जो कोई इस अलंकार को लौटाएगा, उसको मदनिका समर्पण कर दी जाय। "**अह अज्ञचारुदत्तेण मणिदा' जो इमं अलङ्कारअं समप्पइस्सदि, तस्स तुए मदनिआ** दादव्वा।" (मृच्छ०)

तदतिरिक्त शर्विलक के चरित्र के एक अन्य संबद्ध पार्श्व को भी 'मृच्छकटिकम्' में सुन्दरता-पूर्वक उभारा गया है। शर्विलक के यह आश्वासन देने पर कि अलंकार की चोरी करते समय मैने न किसी को मारा है, न घायल किया है, जब मदनिका कहती है कि 'प्रिय' कार्य हुआ ('पिअं), तब शर्विलक को संदेह हो जाता है कि मदनिका केवल ऊपर से उसके लिए अनुराग प्रकट करती है, किन्तु भीतर से वह अन्य (अर्थात् चारुदत्त) पर अनुरक्त है, और तब, वह नारियों की वंचना-वृत्ति की आवेशपूर्णभर्त्सना करता है और इस तथ्य की विज्ञापना करता है कि कामदेव ने यद्यपि उसके गुणों को विनष्ट कर दिया (क्योंकि उसने वह चौर्य-कार्य मदनिका की मुक्ति के निमित्त ही किया है'' तथापि वह अपने मान की रक्षा करता है; उसे यह सह्य नहीं हो सकता कि मदनिका सामने उसे अपना वल्लभ बताए और हृदय से अन्य की अभिलाषा करे–

''त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्य

सदवृत्तपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूता।

रआमि मन्मथविपन्नगुणोऽपि मानं

मित्रञ्च मां व्यपदिशस्यपरञ्च यासि।।'' मृच्छ० ४.६

जबकि 'चारुदत्तम्' में सज्ञलक के चरित्र की इस किरण की आभा कहीं प्रस्फुटित नहीं हुई है।

'मृच्छकटिकम्' में वसंतसेना ने शर्विलक द्वारा प्रदत्त अपने आभूषण को भी तथा विदूषक द्वारा दी गयी मुक्तावली को भी ग्रहण कर लिया है। जबकि 'दरिद्रचारुदत्तम्' में गणिका ने विदूषक द्वारा आनीत मुक्तावली तो ले ली है, लेकिन सज्ञलक द्वारा आनीत अपने अलंकार मदनिका को ही उसने दिए हैं –

''गणिका – (स्वैराभरणैर्मदनिकामलङ्कृत्य) आरुहदु अय्यां अय्याए सह पवहणं।''

'चारुदत्तम्' और 'मृच्छकटिकम्' का सबसे महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि 'चारुदत्तम्' में राजनीतिक विप्लव के संकेतों का प्रायेण अभाव है जब कि 'मृच्छकटिकम्' की प्रतिपाद्य वस्तु की पीठिका यही राजनीतिक उथल-पुथल तथा जन-सामान्य में व्याप्त तात्कालिक शासनसत्ता से गहरा असन्तोष है। तथापि, राजश्यालक शकार की उपस्थिति तथा उसके लम्पटतापूर्ण कृत्यों का सन्निवेश ऐसे तथ्य हैं जो 'चारुदत्तम्' के पाठकों को यह सोचने की प्रेरणा प्रदान करते हैं कि उसके रचयिता के मानस में राजनीतिक विप्लव के विचार अवश्य वर्तमान थे। गणिका के प्रेम को अधिकृत करने के लिए दरिद्र सार्थवाह-पुत्र चारुदत्त की सशक्त प्रतिस्पर्धा राजा का अभिन्न सम्बन्धी करे, इससे यह व्यंजना तो निकलती ही है कि शासन-सत्ता का नैतिक धरातल नितान्त पतित हो गया था। शकार ने विदूषक से यह अनुरोध किया है कि वह उनकी ओर से ''दरिद्रसार्थवाहकपुत्र'' चारुदत्त से निवेदन करे कि वह (चारुदत्त) वेश्यापुत्री को कल प्रातः अपने घर से निकाल दे जिससे उन दोनों के बीच दारुण क्षोभ नहीं उत्पन्न हों: ''मा ताव तव अ मम अ दालुणो खोहो होदि त्ति।'' वसन्तसेना के चारुदत्त-विषयक अनुराग तथा शकार के प्रति घृणा के भाव को देखते हुए, यह अनुमान किया जा सकता है कि भविष्य में चारुदत्त शकार के द्वारा सताया जा सकता है।

इस प्रकार 'चारुदत्तम्' का 'मृच्छकटिकम्' से मुख्य अन्तर दो विवरणों में है : प्रथमतः 'चारुदत्तम्' की उपलब्ध प्रतियों में सामान्य नान्दी पाठ नहीं है, द्वितीयतः, स्थापना में नाटक अथवा नाटककार का कोई उल्लेख नहीं है तथा सभासदों के प्रति सामान्य सम्बोधन का भी अभाव है। इसके विपरीत 'मृच्छकटिकम्' में दो श्लोकों का नान्दी पाठ दिया गया है तथा सूत्रधार के आरम्भिक कथन में नाटक तथा नाटककार की प्रशस्ति उपनिबद्ध हुई है। 'चारुदत्तम्' नाटक की दूसरी विशेषता यह है

कि वहाँ चारुदत्तम् अपने नाम से स्थापित नहीं होकर अपनी भूमिका के अनुसार नायक शब्द से अभिहित किया गया है, वसन्तसेना भी अपने नाम से नहीं, प्रत्युत (गणिका) शब्द से विज्ञापित हुई है। विद्वानो की धारणा है कि भास के नाटकों की प्राकृत, क्लासिकल नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत की अपेक्षा सामान्यतया पुरानी है। चारुदत्तम् की प्राकृत इस प्रकार 'मृच्छकटिकम्' की प्राकृत से प्राचीन मानी गयी है। सुकथंकर ने चारुदत्तम् में प्राप्तव्य ''अध्याअं'', ''अहके'', ''आम'', ''करिअ'', ''गच्छिअ'', ''किस्स'', ''दिस्स'' एवं तुवं इत्यादि रूपों के आधार पर चारुदत्तम् की प्राकृत को प्राचीन माना है। इन विरुद्धांशों का विस्तृत विवरण डॉ० कपिलदेव द्विवेदी [1] ने इस प्रकार किया है —

चारुदत्तम्	–	मृच्छकटिकम्
१. केवल चार अंक है।		१. नाटक १० अंकों में है।
२. केवल प्रणय-कथा।		२. प्रणय-कथा के साथ राजनीति का सम्बन्ध है। पालक की कथा भी है।
३. राजनीति का अभाव		३. राजनीति का मिश्रण है।
४. पालक की कथा का अभाव		४. पालक की कथा समन्वित की है।
५. नाटक अपूर्ण है।		५. नाटक पूर्ण है।
६. प्रस्तावना में लेखक परिचय नहीं है।		६. प्रस्तावना में लेखक परिचय है।
७. नान्दी-पाठ नहीं है।		७. नान्दी पाठ है।
८. जुआरियों के दृश्य का अभाव		८. जुआरियों का दृश्य है।
६. हास्यरस का अभाव		६. हास्यरस का वर्णन है।

---

१. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास पृष्ठ ३१८, ३१६

१०. पात्रों की संख्या कम है।	१०. पात्रों की संख्या अधिक है।
११. चोर ब्राह्मण का नाम सज्जलक।	११. चोर ब्राह्मण का नाम शर्विलक है।
१२. प्रस्तावना में पालक का नाम नहीं।	१२. प्रस्तावना में पालक का नाम है।
१३. प्राकृतों का वैविध्य नहीं है।	१३. सात प्राकृतों का प्रयोग है।
१४. प्राकृतों का प्राचीन रूप है।	१४. प्राकृतों का नवीन रूप है।
१५. प्राकृतों में तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के शब्द है।	१५. प्राकृतों में देशी शब्दों की प्रधानता है।
१६. पद्य-रचना कम प्रशस्त।	१६. पद्य-रचना अधिक प्रशस्त है।
१७. समान श्लोक अपरिष्कृत है।	१७. समान श्लोकों का परिष्कार है।
१८. संस्कृत का प्राचीनतर रूप है।	१८. संस्कृत का नवीन रूप मिलता है।
१९. व्याकरण की न्यूनताएँ है।	१९. व्याकरण की न्यूनताओं का संशोधन किया गया है।
२०. कुछ असंगतियाँ है	२०. असंगतियों का निराकरण किया है।
२१. घटनाक्रम में विविधता नहीं है।	२१. घटनाक्रम में विविधता है।
२२. आर्यक का उल्लेख नही है।	२२. आर्यक के राजा होने का वर्णन है।

❖❖❖

उपसंहार

उपसंहार

विवेच्य कृतियों में पारस्परिक सम्बन्ध

'चारुदत्तम्' एवं 'मृच्छकटिकम्' के पृथक् अस्तित्व की स्वीकृति, 'चारुदत्तम्' की वर्तमान अपूर्णता एवं ' चारुदत्तम्' एवं 'मृच्छकटिकम्' में आधार आधेय सम्बन्ध का परीक्षण इन तीन भागों में प्रस्तुत प्रकरण को उक्त विवेचन की पूर्णता एवं स्पष्टता के निमित्त विभाजित किया गया है।

१. 'चारुदत्तम्' एवम् 'मृच्छकटिकम्' में अत्यन्त गहरी समानता है, इसका वर्णन ''साम्य विश्लेषण'' शीर्षक में किया जा चुका है। लेकिन, इससे यह नहीं कहा जा सकता कि दोनो कृतियों में एक ही प्रतिभा की प्रसूति है। अलंकार-शास्त्रियों ने, यद्यपि ऐसे उल्लेख बहुत अधिक नहीं हैं, दोनो नाटकों का भिन्नशः उल्लेख किया है और उनकी पारस्परिक तुलना से भी यह प्रकट होता है कि उनमें से एक दूसरे पर आधारित होगा। 'काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति' में वामन ने तीन उद्धरण दिए हैं, जैसे – **'व्यसनं हि नाम सोच्छवासं मरणम्, यासां बलिमेदगृहदेहलीनां, घूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं'** – (४.३.२३, ५.१ .३, ४.३.२३)। इनमें से द्वितीय श्लोक 'चारुदत्तम्' (१.२) और 'मृच्छकटिकम्' (१.६) दोनो में उपलब्ध है। प्रथम वाक्य 'मृच्छकटिकम्' में प्राप्त नहीं है, किन्तु चारुदत्तम् में इस प्रकार है – **'दारिद्रयं खलु नाम मनस्विनः पुरुषस्य सोच्छवासं मरणम्'** और इसी वाक्य के बाद **'यासां बलिर्भवति '** श्लोक आता है। तृतीय उद्धरण 'चारुदत्तम्' में उपलब्ध नहीं है जबकि 'मृच्छकटिकम्' के द्वितीय अङ्क में, दर्दुरक के कथन-रूप में उपलब्ध है जहाँ वह जुएँ की प्रशसा करता है।

अभिनव गुप्त ने अपनी प्रसिद्ध टीका 'नाट्यवेदविवृत्ति' में 'चारुदत्तम्' का 'रूपक' की कोटि में उल्लेख किया है, यथा – ''**दैवबहुमानव्युत्पत्तये हि पुरुषकारोऽप्यफलस्तदभावोऽपि सफलः प्रदर्शनीयः। अतएव दरिद्रचारुदत्तादिरूपकाणि ताद्विषयाणि।**'' – (१०.१३)।

मद्रास-स्थित पुस्तकालय में प्राच्य पाण्डुलिपियों के उपलब्ध 'शकुन्तलाव्याख्या' की पाण्डुलिपि के एक उल्लेख से अभिनवगुप्त का प्रस्तुत उल्लेख मिला दिया जाए तो यह जान पड़ता है कि 'चारुदत्तम्' का वैकल्पिक शीर्षक ही 'दरिद्रचारुदत्तम्' रहा होगा। रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाट्यदर्पण में 'दरिद्रचारुदत्तम्' का, अभिनव की शैली में इस प्रकार वर्णन किया है –

''**ततो दैवायत्तफले दरिद्रचारुदत्तादिरूपके पुरुषव्यापारस्य गौणत्वात् कथं प्रारम्भादयः स्युः। न तत्रापि नायकस्य फलार्थित्वात् फलस्य च प्रारम्भादि नान्तरीयकत्वात्।**''

प्रस्तुत वर्णन में भी 'दरिद्रचारुदत्त' 'चारुदत्त' की ही वैकल्पिक संज्ञा माना जा सकता है। उस उल्लेख के समानान्तर 'नाट्यदर्पण' में 'मृच्छकटिकम्' का भी पृथक् उल्लेख हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि 'चारुदत्तम्' और 'मृच्छकटिकम्' दो भिन्न-भिन्न कृतियाँ है और अलंकार शास्त्रियों ने इनकी पृथकशः अवस्थिति स्वीकार की है।

२. 'चारुदत्तम्' की उपलब्ध दो हस्तलिखित प्रतियों में से एक के अन्त में '**अवसितं चारुदत्तम्**' का लेख मिलता है जिससे आभास होता है कि नाटक चार अंकों में पूर्ण हो गया होगा। अन्तः साक्ष्यों से भी यह स्पष्ट होता है कि 'चारुदत्तम्' अपनी वर्तमान अवस्था में अपूर्ण है। विद्वानो ने इस परिप्रेक्ष्य में

बाह्य साक्ष्यों की भी खोज की है और यह प्रमाणित किया है कि नाटक अवश्य पूरा किया गया था। प्रथम साक्ष्य भोजराज के 'सरस्वतीकंठाभरण' से गृहीत किया गया है। भोजराज ने विट की विशेषताओं का वर्णन करने के लिए एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें विट शकार से कहता है कि वह किसी भी प्रकार कोई दुष्कृत्य सम्पादित नहीं करेगा –

"शकार किं प्रार्थनया प्रावारेण मिषेण वा।

अकार्यवर्ज मे ब्रूहि किमभीष्टं करोमि ते।।

– सरस्वतीकण्ठाभरण, पंचम परि०

प्रस्तुत श्लोक 'मृच्छकटिकम्' में उपलब्ध नही है, किन्तु इससे मिलती-जुलती पंक्तियाँ वहाँ अवश्य मिलती हैं –

"विटः – ततः किम्।

शकारः – मम प्रियं कुरु।

विटः – वाढं करोमि वर्जयित्वा त्वकार्यम्।"

–मृच्छ० अष्टम अङ्क

इससे स्पष्ट है कि भोज द्वारा उद्धृत उक्त श्लोक 'चारुदत्तम्' से ही लिया गया होगा और इस प्रकार 'चारुदत्तम्' में वसंतसेना की हत्या वाला प्रकरण अवश्य वर्तमान होगा।

द्वितीय साक्ष्य सागरनन्दी द्वारा 'नाटकलक्षणरत्नकोश' में उद्धृत एक श्लोक से सम्बन्धित है जिसे 'दरिद्रचारुदत्तम्' से लिया गया वताया गया है –

''शुष्कद्रुमगतो रौति आदित्याभिमुखं स्थितिः।

कथयत्यनिमित्तं मे वायसो ज्ञानपण्डितः।।

— नाटकलक्षणरत्नकोश

प्रस्तुत श्लोक में कौवे के 'काँव-काँव' के अपशकुन का उल्लेख हुआ है। 'मृच्छकटिकम्' में इससे बिल्कुल मिलता जुलता श्लोक नवम अङ्क में इस प्रकार उपलब्ध है –

''शुष्कवृक्षास्थितो ध्वाङ्क्ष आदित्याभिमुखस्तथा।

मयि चोदयेत वामं चक्षुर्घोरमशंयम्।।

—मृच्छ० ६.११

नवम् अङ्क चारुदत्त पर आरोपित हत्या के अभियोग से सम्बद्ध है। सागरनन्दी ने 'चारुदत्तम्' एवं 'मृच्छकटिकम्' दोनो नाटकों से उद्धरण लिए है। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि 'चारुदत्तम्' में अभियोग वाला प्रकरण भी सन्निविष्ट हुआ होगा।

इस प्रकार उक्त विवरण में इस धारणा को शक्ति मिलती है कि 'चारुदत्तम्' भास द्वारा पूर्ण किया गया था। तब स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'चारुदत्तम्' वर्तमान रूप में अपूर्ण क्यों है? डा० भाट ने इस प्रश्न का समाधान यह प्रस्तुत किया है कि जिन परिस्थितियों ने भास के नाटकों को प्रकाश में आने से रोक दिया उन्हें ही 'चारुदत्तम्' की वर्तमान अवस्था के लिए उत्तरदायी दुहराया जा सकता है। अतिरिक्त कारणों के रूप में भाट का कथन है कि नाटक में एक साधारण व्यक्ति के वेश्या-प्रेम का चित्रण दोनो के कारण, जन साधारण में

उसे अनादर का भाजन बनना पड़ा होगा क्योंकि उस युग में लोग पौराणिक अथवा काल्पनिक नायिकाओं और आदर्श चरित्रों के प्रणय-व्यवहार के प्रेक्षण के अभ्यस्त थे तथा सामान्यतः इस प्रकार के यथार्थवादी चित्रण के स्वागत के लिए तैयार नहीं हो सकते थे, जब तक कि वह प्रहसन की मनोभंगी में प्रस्तुत न किया गया हो। अतएव, केरल के रंगमंच पर 'चारुदत्तम्' को लोक-प्रियता प्राप्त नहीं हो सकी, और इसी कारण, उसका बहुलांश विलुप्त हो गया।

डा० बेलवलकर का भी मत है कि 'चारुदत्तम्' पूर्ण किया गया होगा और किसी न किसी दिन उसके शेष अंशों की प्राप्ति की आशा की जा सकती है। अभी उपलब्ध चार अंकों तथा उपयुक्त ''अवसितं चारुदत्तम्'' के समापन सूचक लेख के सम्बन्ध में उन्होंने यह समाधान प्रस्तुत किया है यह माना जा सकना है कि रंगमंचीय अभिनय के लिए लम्बे नाटक को दो या दो से अधिक छोटे-छोटे भागों में कदाचित् विभक्त करने की पहले प्रणाली रही होगी जो यूनानी एवं एलिजबेथन रंगमंचो पर अभिनीत होने वाले Trilogies तथा Tetralogies नामक दुःखान्तकियो की विभाजन-प्रणाली से बहुत साम्य नहीं रखती होगी, अपितु उसका स्वरूप हमारे आधुनिक रंगमंच पर व्यवहृत उस प्रणाली के अनुरूप होगा जिसमें कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तल' को दो भागों पहले से चौथा अंक तथा चौथे से सातवाँ अंक, में बाँट देते हैं। 'चारुदत्तम्' की एक प्रति में जो समापन-सूचक लेख उपलब्ध है, इस प्रकार, पूर्ण 'चारुदत्तम्' का प्रथम भाग रहा होगा, कालान्तर में शेष भाग विलुप्त हो गया अथवा हो गए और यह प्रथम भाग पूर्णतः विलुप्त होने से बच गया जो गणपति शास्त्री के अध्यवसाय से अन्ततः प्रकाश में आ गया।

नाटककार की आकस्मिक मृत्यु अथवा दुर्घटना के कारण नाटक समाप्त नहीं हो सका, ऐसा मानने में भारी कठिनाई है, विशेषतया तब जब विद्वानो

ने प्राचीन अलंकार ग्रन्थों में उद्धृत ऐसे श्लोक खोज निकाले हैं जो 'चारुदत्तम्' के बाद वाले अंकों से संबंधित प्रतीत होते हैं। लेकिन, चार ही अंक क्यों, कैसे वच गये और शेषांश क्यों विलुप्त हो गया, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका संतोषजनक समाधान अद्यापि नहीं निकल सका है। डा० भाट की मान्यता है कि "सामान्य मर्त्य-प्राणी के वेश्या-प्रेम" जैसे 'यथार्थवादी चित्रण को केरल के रंगमंच पर लोक-प्रियता प्राप्त नहीं हो सकी होगी। जिस कारण वह कालान्तर में विलुप्त हो गया होगा, सामान्यतया स्वीकार्य प्रतीत होती है। संस्कृत नाटकों के संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह ध्यातव्य है कि उनका अभिनय लोकरंजन की सामान्य आवश्यकता की परिपुष्टि के साधन-रूप में नहीं होकर, कुछ विशिष्ट सम्पन्न-संभ्रान्त वर्गों के मनोविनोद-हेतु सम्पन्न हुआ करता था, और उसके लिए कतिपय विशिष्ट अवसर ही निश्चित थे। अतएव, इन कारणों से संस्कृत नाटकों का लोक-संबंध घटता गया। प्राचीन यूनान के प्रसिद्ध नगर एथेन्स के कलानुरागी निवासियों के मध्य एक नाटक, कम-से-कम उसी रूप में, दुबारा अभिनीत नहीं होता था, और हिन्दू नाटक भी प्रायः किसी एक निश्चित अवसर के लिए रचित होते थे तथा उसी अवसर-विशेष पर उनका रंगमंचीय प्रदर्शन होता था। तदतिरिक्त सफल रचनाएँ एक से अधिक वार अभिनीत होती थी।

उपर्युक्त प्रतिबन्धों के फलस्वरूप संस्कृत नाटकों का रंगमंचीय प्रदर्शन घटता गया और उसका परिणाम यह हुआ कि ये नाटक उपेक्षा एवं अवहेलना के भाजन बने। यद्यपि इन कवियों की रचनात्मक प्रतिभा तथा प्रेरणा निरन्तर नए नाटकों का प्रणयन करती रही तथापि हमारा प्राचीन नाटक-साहित्य परिणाम में नितान्त न्यून ही बना रहा। इस प्रकार प्राचीन काल में नाटक-प्रणयन के लिए परिस्थितियाँ अधिक प्रोत्साहनपूर्ण नहीं थी, और साथ ही नाटकों के कालान्तर में अवहेलित तथा अन्ततः

विलुप्त हो जाने की संभावनाएँ अधिक परिपुष्ट थी। केवल वे ही रचनाएँ समय-प्रवाह में जीवित बच सकीं जिनमें उत्कृष्ट साहित्यक सौष्ठव अथवा अन्य प्रकार के मानवीय रस का उद्‌गिरण करने वाले सनातन महत्त्व के तत्त्व सन्निहित थे। नाटकीय प्रदर्शनो के आयोजक एवं आस्वादयिता प्रायः अभिजात वर्ग के व्यक्ति थे जो सुरुचि एवं सौन्दर्य के एक निश्चित प्रतिमान की रक्षा के लिए सचेष्ट थे।

भास के नाटकों को तत्कालीन एवं परवर्ती साहित्यिक सांस्कृतिक वातावरण में अभिजात वर्ग की उपेक्षा मिली होगी। कालिदास ने भास का स्मरण किया, अधिक संभव है, एक सुसंस्कृत नागरिक उससे भी आगे बढ़ कर, सम्भ्रान्त एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मण नागरिक के वेश्या-प्रेम की कहानी होने के कारण, 'चारुदत्तम्' लोक-सम्मान प्राप्त करने से चूक गया और उसका उत्तरार्ध जिसमें चारुदत्त तथा वसंतसेना समस्त विघ्नो के घटाटोप का भेदन कर, 'राजा-रानी' बन गये, अन्ततः विलुप्त हो गया। केरल के रंगमंच पर खेले जाने वाले संस्कृत नाटकों का उद्देश्य प्रायः हिन्दू धर्म एवं दर्शन का प्रसार एवं परिपोष होता था। ऐसी अवस्था में, जो नाटक गीर्वाणगिरा का परिधान पहने हुए भी, हिन्दूधर्म तथा हिन्दू 'मूल्यों' का उपपालन करने से चूक जाते थे वे अवश्य ही उपेक्षित होते-होते, अन्त में काल के गाल में विलीन हो गये होंगे। राज-द्रोह अथवा राज्य-क्रान्ति वाला अंश भी 'चारुदत्तम्' के अभिजातवर्गीय सामाजिकों की मूल्य-योजना की संगति में नहीं बैठता होगा। अतएव, वह भी उसके संबंद्ध अंश के विलीन में सहायक हुआ होगा। डा० बेलवलकर का यह अनुमान भी कि अभिनय की सुविधा के हेतु 'चारुदत्तम्' को दो या तीन भागों में बाँट दिया गया होगा जिनमें पहला भाग बच गया और शेष भाग विनष्ट हो गये, माना जा सकता; और विनष्ट अंशों के विलोप के लिए गणिका-प्रणय का तत्त्व उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। किन्तु सम्पूर्ण अनुमान-संदेह के बावजूद

चारुदत्तम् की अपूर्णता की पहेली कभी सुलझ सकेगी, इसमें निविड़ संदेह है। तथापि, हमें यह आशा रखनी चाहिए कि 'चारुदत्तम्' का शेषांश भी, किसी न किसी दिन, प्रकाश में आएगा क्योंकि वसंतसेना तथा चारुदत्त के प्रणय की निश्छलता तथा उनपर आई विपत्तियों की गहनता के तत्त्वों का संगुंफन – जी पूर्ण 'चारुदत्तम्' में अवश्य वर्तमान था – दाक्षिणात्यों की सहृदयता का प्रच्छन्न ममत्व अवश्य प्राप्त कर सका होगा और इसी कारण कही न कहीं, वही सम्बद्ध अंश जीवित बच गया होगा।

३. 'चारुदत्तम्' एवम् 'मृच्छकटिकम्' इन उभय ग्रन्थों में कौन रचना मूल है और कौन उसका रूपान्तर है इस विषय में विद्वानो ने अपने-अपने मत प्रतिपादित किए हैं, जिनमें दो स्पष्ट समूह बन गए हैं और उभयविध विद्वानो ने अपने-अपने पक्ष के समर्थन में तर्कों का विशाल व्यूह खड़ा कर दिया है। 'चारुदत्तम्' आकार में छोटा है और 'मृच्छकटिकम्' आकार में बड़ा है, पहले चार अङ्कों की तुलना से यह तथ्य प्रमाणित है। अतएव 'चारुदत्तम्' का परिवर्धित एव परिस्कृत संस्करण 'मृच्छकटिक' हो सकता है और साथ ही 'मृच्छकटिक' का संक्षिप्त रंगमञ्चोपयोगी रूपान्तर भी 'चारुदत्तम्' हो सकता है। भाट, सुकथंकर, बेलवलकर, देवस्थली, काले, कीथ और प्रायः सभी यूरोपीय विद्वान् 'चारुदत्तम्' की प्राग्भविता स्वीकार करते हैं। जबकि पी०वी० काणे, रेड्डी, भट्टनाथ, देवधर, करमरकर, परांजपे और जागीरदार जैसे विद्वान् 'चारुदत्तम्' को 'मृच्छकटिकम्' का संक्षिप्त रूपान्तर समझते हैं।

उभय ग्रन्थों की प्रासङ्गिकता

यद्यपि 'मृच्छकटिकम्' एक प्राचीन नाटक है फिर भी इसकी प्रासंगिकता आज भी सामाजिक स्तर पर एक नया सन्दर्भ उत्पन्न करती है। इसमें

अवन्ती के एक युवा सौदागर की कथा है, जो जाति का ब्राह्मण है तथा जिसके प्रति वसन्तसेना नाम की गणिका तन-मन से समर्पित है। प्रस्तुत रचना में नाटककार ने प्रेम और सौन्दर्य, रीति और नीति, रहन-सहन, प्रकृति-पर्यावरण, कुलीनो और कमीनों की आदतों से जुड़े अनेक प्रश्नों को बड़ी संजीदगी से सजाया है। राजा पालक का राज्य विप्लव, वसन्तसेना का गला घोंटा जाना, वसन्तसेना की हत्या के आरोप में चारुदत्त को फँसाया जाना, अदालत में उनके विरुद्ध फैसला देना और अन्त में उनकी प्राण रक्षा, शूद्रक के ये सभी प्रसंग वर्तमान परिवेश की एक व्यवस्थित व्याख्या जैसी प्रतीत होती है।

इसकी चुम्बकीय आकर्षण शक्ति पाठक या दर्शक को पहली दृष्टि में ही चमत्कृत करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे परदे पर एक के बाद एक चित्र स्वतः आता जा रहा है। बहुरंगी, बहुरूपी जीवन की एक-एक तह मानो दर्शक के सामने अपने-आप खुल रही हो। वसन्तसेना आभूषणों की पोटली चारुदत्त के पास छोंड़ जाती हैं। चारुदत्त उसे विदूषक को देता है। विदूषक उसे चोर को देता है। चोर उसे मदनिका को देता है। तत्पश्चात् मदनिका के द्वारा वह पोटली पुनः वसंतसेना के पास पहुँच जाती है। इस प्रकार यह वृत्त कितना आकर्षक है। ऐसा ही एक वस्तु है अनुश्रुति – एक ने दूसरे की बात सुनकर तीसरे को पहुँचाई, तीसरे ने चौथे को और चौथे ने पाँचवें को और ये कथोपकथन एक पूरी कहानी के रूप में अपने आप सामने आ जाते हैं। इसकी उन्मुक्तता इसकी सर्वाधिक विलक्षणता है।

इस प्रकरण में श्रृंगार की कोमल-कल्पना अपने आप में अतुलनीय है। श्रृंगार और हास्य का अद्भुत संयोग इस नाटक की विशेषता है। आधुनिक नाटक का जो सेक्स है वही मृच्छकटिकम् का श्रृंगार है जिससे इस नाटक का

प्रतिस्तर भींगा है वास्तविकता की मार्मिक अभिव्यक्ति इस नाटक की अपनी खूबी है जिसमें एक गणिका के द्वारा सच्चरित्र का निर्वाह किया गया है। प्रस्तुत परिप्रेक्ष्य मे सामान्य धारणा यह है कि गणिकाएँ या तो धन की ओर झुकती है, या फिर दरबाजे पर जो आ जाए, उसका मनोरंजन करती है। शूद्रक वह कवि है जिसने इतने वर्ष पूर्व पहली बार इन दोनो परम्पराओं को तोड़ कर वसन्तसेना को चारुदत्त से मिलाया। यह कार्य कितना चुनौतीपूर्ण रहा होगा इसकी मात्र कल्पना ही की जा सकती है।

इसकी कथा देवताओं, ऋषियों और किसी राजा के इर्द-गिर्द नहीं घूमती। संस्कृत के श्रृंङ्गार प्रधान अन्य नाटकों में कामबाण से विधा हुआ नायक, नायिका को रिझाने या जीतने की कोशिश करता है किन्तु इस नाटक में इस परम्परा के विपरीत नायिका स्वयं नायक पर रीझकर, उसे पाने का प्रयत्न करती है। इस प्रयत्न में वह अपने प्राणों को भी संकट में डाल देती है। इतना ही नहीं प्रत्युत यह नाटक आद्यन्त क्रान्तिकारी है। भरतमुनि के आदेशों की अवहेलना कर इस नाटक में रंगमंच पर निद्रा मृत्यु आदि दृश्य दिखलाए गए हैं। इसका खलनायक खलता और कमीनेपन का जीता जागता प्रतीक है तथा इसके अन्य पात्र जनसामान्य से लिए गए हैं। तरुणी वेश्या का ब्राह्मण की पत्नी बन जाना, वह भी समाज एवं राज्य की स्वीकृति से, आधुनिक सुधारवादी समाज को एक प्राचीन नाटक की अभिनव देन है। इस पवित्र प्रेम की विजय ही इस अभिनय की आत्मा है।

'मृच्छकटिकम्' में जिस गुप्तकालीन समाज का चित्रण है इसे देखने से प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज वर्जनामुक्त था। जो आधुनिक भारत के इतिहास का स्वर्णयुग था। उस समाज की वर्जनाहीनता निश्चय ही आज के समाज में सामाजिक महत्त्व रखती हैं, वर्जनामुक्ति का स्पष्ट स्वरूप है ,— मदनिका

और शर्विलक का सम्बन्ध। शर्विलक एक शातिर चोर है, जिसकी ऐसी प्रसिद्धि है कि उसकी काटी हुई सेंध देखकर लोग वाह-वाह कर उठते हैं। उसकी समाज में अपनी एक स्वतंत्र हैसियत है। वह चोर एक गणिका से प्यार करता है और उसे पेशे से निकालकर अपनी पत्नी बनाने के लिए गहनो की चोरी कर उसकी कीमत अदा करता है। उसे आजाद करा लेता है और अपनी पत्नी बनाता है। आधुनिक समाज में स्थापित वर्जनाओं की प्रस्तुत चुनौती इस नाटक की एक धरोहर है।

चतुः पुरुषार्थों में समन्वय एवं संतुलन साधने की बात यह देश सोचता रहा है। नाटककार कालिदास इसी दृष्टि के पुरस्कर्ता है। इसी समन्वयी दृष्टि का यह प्रसार था कि गुप्तकालीन भारत कला, साहित्य, दर्शन, वाणिज्य, व्यापार सभी क्षेत्रों में एक साथ उन्नतिशील हुआ। 'मृच्छकटिकम्' की जीवन दृष्टि भी इसी सौन्दर्यमूलक प्रवृत्ति का प्रतीक है। नायिका के अंग-प्रत्यंग का वर्णन इसी सौन्दर्यमूलक जीवन दृष्टि का उदात्त प्रसाद है। उतनी ही स्वाभाविकता से उन्होंने किसी नारी के स्तन और नितम्ब का भी वर्णन किया है। क्योंकि उनकी दृष्टि में यह जीवन की स्वस्थ अभिव्यक्ति है। मृच्छकटिकम् की यही अभिव्यक्ति जीवन को सजाता है, सँवारता है और अधिकतम मानवीय बनाता है।

संस्कृत नाटकों का यथार्थवाद सामान्यतः इतना ही रहा है कि किसी पौराणिक कहानी को मानवीय परिवेष प्रदान कर दिया जाय अथवा राज-महल के अन्तरंग हर्म्य का परदा यदा-कदा उठा दिया जाए, जिससे उसके भीतरी जीवन की कतिपय झाँकियाँ मिल जायँ। इन चित्रों में कलाकार की कल्पना की लालित किरणों की स्निग्ध आभा स्पष्ट चमकती रहती है। वस्तुतः रंगमंच पर विशुद्ध यथार्थ कभी प्रदर्शित ही नहीं हुआ। शूद्रक ने बड़े साहस के साथ विशुद्ध यथार्थ का अभिनिवेश किया है।

द्वितीय अंक में जुआरियों वाला दृश्य निराला बन गया है। पासे का फेंकना तथा उसकी खनखनाहट; जुआड़ी की भगदड़ एवं खोज तथा उसका दंडित होना, मन्दिर में उसका भागकर छिपना, राजपथ मे मनुष्य का विक्रय, ऑखों में धूल झोंक देना और फिर लड़ाई झगड़ा – ये सभी तथ्य जो प्रस्तुत दृश्य मे नियोजित हुए हैं, यथार्थ जीवन की वास्तविकता से प्रतिभासित होते है। तथापि 'मृच्छकटिकम्' का यथार्थवाद निम्नस्तरीय जीवन की उन सड़कों से ही समाप्त नहीं होता, वह इनके बहुत आगे तक बढ़ जाता है। उसकी विविध घटनाओं एवं दृश्यो मे तथा अनेक आकस्मिक कथनो में यह यथार्थवाद झॉंकता दिखाई देता है। उज्ञयिनी के रात्रिकालीन जीवन का चित्र जिसमें राजा के सगे-सम्बन्धी तथा प्रिय पात्र सड़कों तथा गलियों में अँधेरे में विचरण करते है और शृंङ्गार-सजित वेश्या युवती को उसी प्रकार घेरते तथा परेशान करते है जैसे एक सरल-सीधे ब्राह्मण को, एक युवक साहसी चोर का चित्र जो ईंटों तथा उनको नापने की डोरी की चर्चा करता है, दीवार तोड़कर भीतर आने-जाने के लायक बड़ा छेद खोल देता है, एक चरमराते दरवाजे को धक्का देता है, सोते हुए व्यक्तियों के चेहरों पर जलते दीपक की क्षीण रोशनी पड़ती हुई देखता है, पाँव रखने की आवाज से बचने के लिए जमीन पर पानी डाल देता है, और सोते व्यक्ति के हॉथ से अलंकार ले लेता है तथा चुपके से बाहर निकल जाता है, एक बन्दी का चित्र जो कारागार से निकलकर भागता है और जिसके पैरों में लोहे की जंजीरें अभी पड़ी हुई हैं, जनसंकुल सड़कों पर चलने वाली गाड़ियों का चित्र जिनको हॉकने वाले बैलों को चिल्ला-चिल्ला कर आगे बढ़ा रहे है, राजमार्गों पर संचरण करने वाले मौत के जुलूस का चित्र जिसमें लोगों की ठसाठस भीड़ जमकी हुई है तथा नगाड़े बजा-बजा कर चांडाल चौराहों पर घोषणा करते जा रहे, लोगों के अपने सिर झुकाकर चलने का चित्र तथा ऐसी नारियो का चित्र जो अपने धरों एवं अट्टालिकाओं के गवाक्षों से नीचे झाँकती है

और वह हृदय-विदारक दृश्य देखकर अश्रु-वारि की पुष्कल धाराएँ प्रवाहित करती हैं – ये समस्त चित्र जिनमें से कुछ वस्तुतः प्रदर्शित होते हैं तथा कुछ वर्णित होते हैं, यथार्थ की प्रकृत ध्वनि से गूँजते दिखाई पड़ते हैं।

नवम अङ्क का अभियोग वाला दृश्य भी यथार्थवादी कहा जाएगा। तदतिरिक्त अन्य चित्र भी हैं जो नाटक के यथार्थ को प्रस्फुट एवं समृद्ध बनाने में सहयोग देते है। नव्याङ्गना वर्षा में अपने प्रणयी से मिलने के लिए अभिसार करती हुई तो सोची जा सकती है, लेकिन वसन्तसेना का चारुदत्त के घर के दरवाजे पर पहुँच कर, पैर में लगे कींचड़ को धोना तथा भीतर जाकर भीगी साड़ी बदलना – यह शूद्रक जैसा नाटककार ही कर सका है।

कालिदास ने अपने सर्वदमन को खिलौने से खेलता दिखाया है, किन्तु शूद्रक ने यह प्रदर्शित कर यथार्थ का रंग अधिक गाढ़ा बना दिया है कि रोहसेन मिट्टी की गाड़ी से खेलना इनकार कर, सोने की गाड़ी से खेलने के लिए मचल रहा है क्योंकि उसने पड़ोसी के लड़के को सोने की गाड़ी से खेलते देखा है। प्रस्तुत चित्र बालमनोविज्ञान की विश्वसनीयता से सौरभित हो उठा है वैसे ही, किसी गृह के निर्माण का निर्देश किया जा सकता है, लेकिन वर्धमानक यह कहता है कि एक लड़की की शहतीर सड़क के आर-पार पड़ी हुई थी क्योंकि गृह-निर्माण का कार्य चल रहा था। और उसी अवरोध के कारण सड़क का आवागमन बाधित हो गया था, तब हमें यथार्थ का एक प्रस्फुट संस्पर्श मिलता है। जिसकी सत्यता से हम अनभिज्ञ नहीं हो सकते। अतः स्पष्ट है कि नाटक का वातावरण यथार्थवादी चित्रण से ओत-प्रोत है।

इस प्रकार 'मृच्छकटिकम्' की गणना उत्तम रूपक के अन्तर्गत प्रकरण में की जाती है, जिसका एकमात्र कारण इसकी कथावस्तु है। रूपक का

नायक अधिक आदर्शवादी है। संसार में कदाचित् कोई ऐसा व्यक्ति हो जो चोर को अपने घर से खाली हाथ चले जाने के कारण दुःखी हो फिर जब उसे यह मालूम हो जाए कि वह कुछ लेकर गया है। तब प्रसन्नता मनाए। नायक के रूप में वसन्तसेना की प्राप्ति के लिए चारुदत्त में तीव्र रूप से आतुरता प्रकट नहीं होती। वसन्तसेना एक सम्पन्न गायिका है फिर भी उस जीवन को अच्छा नहीं समझती। अतः उसका अनुराग आर्य चारुदत्त के प्रति एक स्वाभाविक प्रेम का उदाहरण है।

संस्कृत के अन्य प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल, उत्तररामचरित, मुद्राराक्षस आदि यद्यपि अपनी विशेषताओं से भरपूर है पर मृच्छकटिकम् किन्हीं कुछ बातों में उनसे भी बढ़ गया है। इसकी कथावस्तु फड़कते हुए घटनाचक्रों से ओत-प्रोत है। यही कारण है कि यह नाटक भारत में ही नहीं प्रत्युत पश्चिमीय देशों में भी बहुत लोकप्रिय हुआ है।

अन्य नाटकों की भाँति इसमें समस्त सामग्री के साथ ही यथार्थवादिता को लेते हुए सामाजिक एवं राजनीतिक चित्रण इसकी एक अपनी विशेषता है। यदि अभिज्ञानशाकुन्तल एवं उत्तररामचरित मे केवल प्रणय कथा है, मुदाराक्षस तथा रत्नावली में कोरी राजनीति है तो मृच्छकटिक में यथार्थ वादिता के आधार पर प्रेम कथा, राजनीतिक एवं सामाजिक चित्रण सभी कुछ है इसमें तत्त्कालीन भारतीय समाज का उभरा हुआ चित्र प्रस्तुत किया गया है। वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का उचित सम्मान था। शूद्र सेवाकार्य में तत्पर थे। चाण्डाल की गणना पञ्चम वर्ण में थी। कुछ श्रेष्ठ ब्राह्मण राजाश्रय में रहने से धनवान् थे। चारुदत्त ब्राह्मण होते हुए भी सार्थवाह बन गया था। मनु की धर्मव्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण मृत्युदण्ड से युक्त था उसे सबसे अधिक भयंकर दण्ड समस्त वैभव के साथ राष्ट्र से बहिष्कृत करना था। जाति व्यवस्था का उस समय कड़ाई से पालन नहीं होता

था। चमार तथा नाई राज्य में उच्च पदासीन थे। गोपालक आर्यक के राजा पद पर सम्मानित होने का कारण भी यही था। अस्पृश्यता नहीं थी। कहीं कुओं पर ब्राह्मणों के साथ निम्न वर्ण के लोग भी पानी भर सकते थे। स्त्रियों का समाज में पर्याप्त सम्मान था। यह कुलवधू और गणिका के रूप में होती थी। कुलवधू का पद सम्मानित था। गणिकाएँ भी सम्पन्न होती थीं। जुए का प्रचार खेल रूप में था। चोरियाँ भी वैज्ञानिक ढंग से की जाती थी। दास प्रथा प्रचलित थी पर उन्हें पैसा देकर छुड़ाया जा सकता था। बौद्ध धर्म व्यापक रूप से प्रचलित था पर बौद्ध भिक्षुक का दर्शन अपशकुन माना जाता था। वैदिक धर्म के अनुयायियों की भी कमी नहीं थी। राजतन्त्र के आधार पर शासन होता था। राजा सर्वशक्तिमान् शासक एवं प्रधान न्यायाधीश होता था। उसके सम्बन्धी शकार जैसे व्यक्ति अनुचित लाभ उठाने के लिए तत्पर रहते थे। राज्य कर्मचारियों के परस्पर विरोध से परिस्थितियाँ कभी इतनी विषम हो जाती थीं कि षड्यन्त्र द्वारा राजा को मारकर विद्रोही नेता राजपद संभाल लेता था।

संस्कृत में कदाचित् कोई ऐसा नाटक नहीं जिसमें समाज के उच्च और निम्न वर्ग को एक साथ संयुक्त किया गया हो और समाजनीति, धर्मनीति एवं राजनीति को एक स्थान पर प्रस्तुत किया गया हो। इस प्रकार प्रेम को फाँसी के तख्ते पर तथा सौन्दर्य को मृत्यु के मुख में ले जाना और तब उनकी दूसरी परिभाषा करना नाटककार का अभीष्ट था।

परिशिष्ट

- संकेताक्षर सूची
- सुभाषित
- अधीत ग्रन्थ सूची

संकेताक्षर सूची

अभि न०	:	अभिनवभारती
अभि० शा०	:	अभिज्ञानशाकुन्तल
अष्टा०	:	अष्टाध्यायी
काव्या०	:	काव्यानुशासन
चारु०	:	चारुदत्त
दश०	:	दशरूपक
नाट्य०	:	नाट्यशास्त्र
प्रतिज्ञा	:	प्रतिज्ञायौगन्धरायण
प्रतिमा०	:	प्रतिमानाटक
भाव०	:	भावप्रकाश
माल०	:	मालविकाग्निमित्र
मृच्छ०	:	मृच्छकटिक
महाभा०	:	महाभाष्य
महा०	:	महाभारत
मुद्रा०	:	मुद्राराक्षस
रामा०	:	रामायण
साहि०/सा०द०	:	साहित्यदर्पण
स्क०	:	स्कन्दपुराण
हर्ष	:	हर्षचरित

सुभाषित

दरिद्रचारुदत्तम्

१. सुखं हि दुःखान्युभूय शोभते

यधान्धकारादिव दीपदर्शनम्।

सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां

स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति।। १, ३।।

२. भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति।। १, ५।।

३. दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजने वाक्ये न सन्तिष्ठते

सत्त्व हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।

निर्वेरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः

पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते।। (१, ६)

४. जनयति खलु रोषं प्रश्रयो भिद्यमानः।। १, १४।।

५. असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता।। १, १६।।

६. जरा मनुष्यवीर्य परिभूय वर्धते।। ३, ४।।

७. कर्मसु कौशलं।। ३, १०।।

८. धिगस्तुखलुदारिद्रयम्।। ३, १४।।

९. निष्प्रभावा दरिद्रता।। ३, १५।।

१०. स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः।। ४, ६।।

मृच्छकटिकम्

११. शून्यमपुत्रस्य गृहं, चिरशून्य नास्ति यस्य सन्मित्रम्। (गद्य)

मूर्खस्य दिशः शून्याः सर्व शून्यं दरिद्रस्य।। (१, ८)

१२. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते, धनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।

सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रताम्, धृतः शरीरेण मृतः स जीवति।। (१,१०)

१३. अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्। (१, ११)

१४. अहो ! निधनता सर्वापदामास्पदम्।। (१, १४)

१५. गुणा खल्वनुरागस्य कारणं, न पुनर्बलात्कारः। (गद्य)

१६. चारित्रण विहीनः आढ्योऽपि च दुगती भवति।। (१, ४३)

१७. यदा तु भाग्यपक्षपीडितां दशाम् नरः कृतान्तोपहितां प्रपद्यते।

तदास्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रताम्, चिरानुरक्तोऽपिविरज्यते जनः।। (१, ५३)

१८. न युक्तं परकलत्रदर्शनम्। (गद्य)

१६. पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते, न पुनर्गेहेषु। (गद्य)

२०. दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोकेऽवचनीया भवति। (गद्य)

२१. द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम्। (गद्य)

२२. य आत्मबलं ज्ञात्वा भारं तुलितं वहति मनुष्यः। (गद्य)

२३. दुर्लभा गुणा विभवाश्च अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति। (गद्य)

२४. सुजनः खलु भृत्यानुकम्पकः स्वामी निर्धनकोऽपि शोभते।

पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितोदुष्करः खलु परिणामदारुणः।। (३, २)

२५. वीणा हि नामासमुद्रोत्थितं रत्नम्। (गद्य)

२६. यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्। (गद्य)

२७. अनतिक्रमणीया भगवती गोकास्या ब्राह्मणकाम्या च। (गद्य)

२८. शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता (३, २४)

२९. आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः।

अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सार्थतः पुमान्।। (३, २७)

३०. सखीजनचित्तानुवर्त्यबलाजनो भवति। (गद्य)

३१. स्वैर्दोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः (४, २)

३२. साहसे श्रीः प्रतिवसति। (गद्य)

३३. इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः।

निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः।। (४, १०)

३४. अयं च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः।

नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च।। (४, ११)

३५. अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे, ये स्त्रीषु च श्रीषुच विश्वसन्ति।

श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव, नार्यो, भुजंगकन्यापरिसर्पणानि।।

३६. स्त्रीषु न रागः कार्यो रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति।

रक्तैव हि रन्तव्या विरक्तभावा तु हातव्या।। (४, १३)

३७. एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-

र्विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति।

तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन,

वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः।। (४, १४)

३८. समुद्रवीचीव चलस्वभावाः, सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः।

स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति।। (४, १५)

३६. न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति।

यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुचयस्तथांगनाः।। (४,१७)

४०. स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।

पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते।। (४, १६)

४१. न चन्द्रादातपो भवति।। (गद्य)

४२. निशायां नष्टचन्द्रायां दुर्लभो मार्गदर्शकः। (४, २१)

४३. गुणेष्वेव हि कर्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा।

गुणैर्युक्तो, दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः।। (४, २२)

४४. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो, न किंचिदप्राप्यतमं गुणानाम्। (४, २३)

४५. द्वयमिदमतीव लोके प्रियं नराणां सुहृच्च वनिता च। (४, २५)

४६. कथम् हीनकुसुमादपि सहकारपादपान्मकरन्दबिन्दवो निपतन्ति ? (गद्य)

४७. अकन्दसमुत्थिता पद्मिनी, अवचको वणिक् अचौरः सुवर्णकारः, अकलहो ग्रामसभागमः, अलुब्धा गणिकेति दुष्करमेते सम्भाष्यन्ते। (गद्य)

४८. सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावाः।

भिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति।। (५, ८)

४६. कामो वामः। (गद्य)

५०. मेघा वर्षन्तु, गर्जन्तु, मुंचन्त्वशनिमेव वा।

गणयन्ति शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः।। (५, १६)

५१. न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति। (५, ३१)

५२. धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके, कि जीवितेनादित एव तावत्।

यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्, कोपप्रसादा विफलीभवन्ति।। (५, ४०)

५३. पक्षविकलश्च पक्षी, शुष्कश्च तरुः, सरश्च जलहीनम्।

सर्पोद्धृतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च।। (५, ४१)

५४. शून्यैर्गृहैः खलु समाः पुरुषा दरिद्राः

कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णै।

यद्दृष्ट-पूर्वजनसंगम-विस्मृताना-

मेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः।। (५, ४२)

५५. वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने। (६-१७)

५६. त्यजति तं किल जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च।

भवति च सदोपहास्यो यः खलु शरणागतं त्यजति।। (६, १८)

५७. भीताभयप्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य।

यदि भवति भवतु नाशस्तथापि खलु लोके गुण एव।। (६, १६)

५८. न कालमपेक्षते स्नेहः। (गद्य)

५६. स्वात्मापि विस्मर्यते ? (७, ७)

६०. विषमा इन्द्रिचौराः हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्। (८, १)

६१. पंचजना येन मारिताः स्त्रियं मारयित्वा ग्रामोरक्षितः।

अबलः क्व चाण्डालो मारितोऽवश्यमपि स नरः स्वर्ग गाहते।। (८, २)

६२. शिरो मुण्डित, तुण्डं मुण्डितं,

चित्तं न मुण्डित किमर्थ मुण्डितम् ?

यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं

साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम्।। (८, ३)

६३. विपर्यस्तमनश्चेष्टैः शिलाशकलवर्ष्मभिः।

मांसवृक्षैरियं मूर्खैर्भराक्रान्ता वसुन्धरा।। (८, ६)

६४. स्त्रीभिर्विमानितानां कापुरुषाणां विवर्धते मदनः।

सत्पुरुषस्य स एव तु भवति मृदुनैव वा भवति।। (८, ६)

६५. दुष्करं विषमौषधीकर्तुम्। (गद्य)

६६. अग्राह्या मूर्धजेष्वेताः स्त्रियो गुणसमन्विताः।

न लताः पल्लवच्छेदमर्हन्त्युपवनोद्भवाः।। (८, २१)

६७. कि कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।

भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः।। (८, २६)

६८. विविक्तविश्रम्भरसो हि कामः। (८, ३०)

६६. सुचरितचरितं विशुद्धदेहं,

न हि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति।। (८, ३२)

७०. यत्नेन सेवितव्यः पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि।

शोभा हि पणस्त्रीणां सदृशजनसमाश्रयः कामः।। (८, ३३)

७१. धिक् प्रीति परिभवकारिकामनार्याम्। (८, ४१)

७२. हस्त संयतो मुखसंयत इन्द्रियसयतः स खलु मनुष्यः।
कि करोति राजकुलं ? तस्य परलोको हस्ते निश्चलः।। (८, ३७)

७३. नह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम्। (६, १६)

७४. यथैव पुष्पं प्रथमे विकाशे, समेत्य पातुं मधुपाः पतन्ति।
एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्थाः बहुली भवन्ति।। (६, २६)

७५. सत्येन सुखं खलु लभ्यते, सत्यालापे न भवति पातकम्।
सत्यमिति द्वे, अप्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय।। (६, ३५)

७६. ईदृशे व्यवहाराग्नौ मन्त्रिभिः परिपातिताः।
स्थाने खलु महीपाला गच्छन्ति कृपणां दशाम्।। (६, ४०)

७७. ईदृशैः श्वेतकाकीयै राज्ञः शासनदूषकैः।
अपापानां सहस्राणि हन्यन्ते च हतानि च।। (६, ४१)

७८. मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम् ? (गद्य)

७६. नृणां लोकान्तरस्थानां देहप्रतिकृतिः सुतः। (६, ४२)

८०. सर्वः खलु भवति लोके लोकः सुखसंस्थितानां चिन्तायुक्ताः।
विनिपतितानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति।। (१०, १५)

८१. अभ्युदयेऽवसाने तथैव रात्रिदिवमहतमार्गा।
उद्दामेव किशोरी नियतिः खलु प्रत्येषितुं याति।। (१०, १६)

८२. राहुगृहीतोऽपि चन्द्रो न वन्दनीयो जनपदस्य ? (गद्य)

८३. येऽभिभवन्ति साधु ते पापास्ते च चाण्डालाः। (गद्य)

८४. इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः।

अचन्दनमौशीरं हृदयस्थानुलेपनम्।। (१०, २३)

८५. हन्त। ईदृशो दासभावः, यत्सत्यं कमपि न प्रत्याययति। (गद्य)

८६. आर्यचारुदत्त। गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिं लभेते,

किम्पुनर्मरणभीरुका मानवा वा ? लोके कोऽप्युत्थितः पतति। कोऽपि पतितोऽप्युपतिष्ठते। (गद्य)

८७. अहो। प्रभावो प्रियसंगमस्य,

मृतोऽपि को नाम पुनर्धियेत ? (१०, ४३)

८८. सर्वत्रार्जवं शोभते। (गद्य)

८९. शत्रुः कृतापराधः शरणमुपेत्य पादयोः पतितः।

शस्त्रेण न हन्तव्यः, उपकारहतस्तु कर्त्तव्यः।

९०. समीहितसिद्ध्यै प्रवृत्तेन ब्राह्मणोऽग्रे कर्तव्यः। (गद्य)

९१. अम्भोजिनी लोचनमुद्रणं किं भानावनस्तंगमिते करोति ? (१०, ५८)

९२. कांश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा कांश्चिन्नयत्युन्नतिम्

कांश्चित्पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयत्याकुलान्।

अन्योन्यप्रतिपक्षसंहतिमिमा लोकस्थितिं बोधयन्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः।। (१०, ६०)

अधीत ग्रन्थ सूची

क्रमाङ्क	ग्रन्थ-नाम	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक
१.	अभिनव नाट्यशास्त्र	पं० सीताराम चतुर्वेदी (खण्ड - १), १९६४
२.	काव्यप्रकाश	आचार्यमम्मट, व्याख्याकार स्व० आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, १९६०।
३.	चारुदत्त	श्री कपिलदेव गिरि, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १९८८
४.	दशरूपक	श्री धनंजय, अनु० भोलाशंकर व्यास, १९६७
५.	दशरूपक	श्री धनंजय व्याख्याकार डा० गोविन्द त्रिगुणायत
६.	दशरूपक	श्री धनंजय व्याख्याकार हजारी प्रसाद द्विवेदी और पृथ्वीनाथ
७.	ध्वन्यालोक	श्री आनन्दवर्धनाचार्य : व्याख्याकार डा० रामसागर त्रिपाठी
८.	नाट्यशास्त्रम्	आचार्यभरत (अ) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय संस्करण। (ब) संस्कृत साहित्य अकादमी समिति।
९.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि, अभिनवगुप्ताचार्य, टीकासहित (भाग १ - ४) १९३४

१०.	नाट्यदर्पण	रामचन्द्र गुणचन्द्र ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट बड़ौदा, १६५६ ई०
११.	नाटक की परख	डा० एस०पी०खत्री, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड १६५६ ई०
१२.	नाटक लक्षण रत्नकोश	सागरनन्दिन् - आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १६३७ ई०
१३.	प्राकृत साहित्य	डा० जगदीशचन्द्र जैन का इतिहास
१४.	भासनाटकचक्रम्	टी०गणपतिशास्त्री, चौखम्बा संस्करण वाराणसी
१५.	भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, १६६३
१६.	मृच्छकटिक	निर्णयसागर प्रेस, पृथ्वीधर की टीका से संवलित १६२६ ई०
१७.	मृच्छकटिक	सम्पादित - काले, करमकर परांजपे, नेरूरकर - १६३७
१८.	मृच्छकटिक	अनु० श्रीमहाप्रभुलाल गोस्वामी एवं श्री रमाकान्त द्विवेदी, चौखम्बा, वाराणसी।
१६.	मृच्छकटिक : शूद्रक	आर०डी० करमकर, दामोदर विला, पूना-४
२०.	मृच्छकटिक एक आलोचनात्मक अध्ययन	डा० (कु०) सुषमा, इण्डो-विजन प्राइवेट लिमिटेड नेहरू नगर, गाजियाबाद, १६८५।

२१.	मृच्छकटिक	अनु० श्री पं० ब्रह्मानन्द शुक्ल, मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स, वाराणसी
२२.	मृच्छकटिक समीक्षा	पं० कान्तानाथ तैलंग शास्त्री
२३.	मृच्छकटिक शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन	डा० शालग्राम द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १६८२
२४.	मृच्छकटिक अथवा मिट्टी की गाड़ी	अनु० डा० रांगेय राघव
२५.	महाकवि भास : एक अध्ययन	आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १६८२
२६.	महाकवि शूद्रक	डा० रमाशंकर तिवारी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १६६७
२७.	मनुस्मृति	गुजरात प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई १६१३
२८.	महाकवि भास	डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १६७२
२६.	यूरोपियन नाट्यशास्त्र का विकास (लेख)	श्री राम अवध द्विवेदी (सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ)
३०.	रूपक रहस्य	डा० श्यामसुन्दर दास, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद, पचम संस्करण स० २०२४
३१.	रस सिद्धान्त : स्वरूपविश्लेषण	डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित राजकमल

		प्रकाशन, १६६० ई०
३२.	शूद्रक	श्री चन्द्रबली पाण्डेय
३३.	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामजी उपाध्याय (भाग १, २), १६७१
३४.	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० सत्यनारायण पाण्डेय, १६६६
३५.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	श्री वाचस्पति गैरोला
३६.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डा० मैकडानल, अनु० चारुचन्द्र शास्त्री, १६६२
३७.	संस्कृत-साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय, १६६८
३८.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	प्रो० हंसराज अग्रवाल, १६६५
३६.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	सेठ कन्हैलाल पोद्दार
४०.	संस्कृत साहित्य की रूपरेखा	चन्द्रशेखर पाण्डेय और नानूराम व्यास
४१.	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	डा० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद शान्ति निकेतन ज्ञानपुर (वाराणसी) तृ०सं० १६८२

४२.	संस्कृत कवि दर्शन	डा० भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १९८३ चतुर्थ संस्करण
४३.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डा० वी० वरदाचार्य। अनुवाद डा० कपिलदेव द्विवेदी, १९६२
४४.	संस्कृत नाटककार	श्री कान्तिकिशोर भरतिया, १९५६
४५.	संस्कृत नाट्य सिद्धान्त	डा० रमाकान्त त्रिपाठी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६६
४६.	संस्कृत काव्यकार	डा० हरिदत्त शास्त्री
४७.	संस्कृत नाटक	प्रो० कीथ, अनुवादक डा० उदयभान सिंह, १९६५
४८.	संस्कृत नाट्यसाहित्य	डा० जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, १९६६
४९.	साहित्य दर्पण : विश्वनाथ	पं० आशुबोध विद्याभूषण तथा पं० श्री नित्यबोध विद्यारत्न
५०.	साहित्यदर्पण	व्याख्याकार डा० सत्यव्रत सिंह एवं डा० निरूपण विद्यालंकार
५१.	संस्कृत आलोचना	आचार्य बलदेव उपाध्याय
५२.	संस्कृत के प्रमुख नाटककार (लेख)	डा० सूर्यनाथ सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ १९५५
५३.	संस्कृत नाटक समीक्षा	प्रो० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र' १९६०

५४.	संस्कृत नाट्यशास्त्र एक पुनर्विचार	जयकुमार 'जलज' १९९२
५५.	A History of Sanskrit Literature	M.Winternitz
५६.	A History of Sanskrit Literautre	A.A.Macdonell
५७.	A History of Sanskrit Literautre Classi-cal Pd. Vol. I.	S.N Das Gupta, S. K. Dey.
५८.	Bhasa - A Study	A.D.Pusalkar, 1945
५९.	Charudatta	N.S.Phadke (A Marathi Article)
६०.	Charudatta	S.R. Devdhar
६१.	Drama in Sanskrit Literature	A.V.Jagirdar
६२.	History of Sanskrit Literature	S.K.Dey, 1947
६३.	Introduction of the Study of Mrichhakatika	Dr. G.V.Devasthali
६४.	Mrichhakatika	Nirnaya Sagar edition with the commentry of Prathvidhara.
६५.	Mrichhakatika	Dr. V.G. Paranjpe.

६६.	Mrichhakatika	R.D. Karmarkar
६७.	Mrichhakatika	M.R. Kale
६८.	Preface to Mrich-hakatika	Dr. G.K. Bhat
६९.	Sanskrit Drams & Dramatists	K.P.Kulkarni
७०.	The Little Clay Cart	A.W. Ryder
७१.	The Classical Drama of India	Henry W. Wells. 1963

७२. The Sanskrit Drama A.B.Keith

७३. Bhandarkar Commemoration Volume (1917)

७४. Jounal of Royal Asiatic Society (1945)

७५. Sukthankar Memorial Edition, Vol. II Analecta.

७६. Proceedings of Second Oriental Conference (1923)

७७. Journal of the University of Bombay, Vol XVI, Part IV, Nos. 31, 32.

७८. Poona Orientalist Vol, XIV.

७९. Journal of American Oriental Society. Vol. XXVII, (1907)

८०. Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland (1923)